Gòej ØeosMe jepeeef<e&
šC[ve cegòeâ

MAGO-106

संसाधन भूगोल

MAGO-106mebmeeOeve Yetieesue

इकाई–1 संसाधन का तात्पर्य एवं परिभाषा, संसाधन की संकल्पना ।	3–9
इकाई–2 संसाधन विकास के सोपान, संसाधन एवं संस्कृति का गात्यात्मक सम्बन्ध।	10–14
इकाई–3 संसाधन भूगोल का स्वरूप एवं क्रम–विकास, संसाधन भूगोल के उपागम।	15–24
इकाई–4 संसाधन वर्गीकरणः– प्राकृतिक संसाधन तथा मानव संसाधन।	25–35
इकाई–5 पर्याप्यता का सिद्धान्त, संसाधन दुर्लभता की परिकल्पना, वृद्धि की सीमाए।	36–44
इकाई–6 संसाधन पारिस्थितिकी, संसाधन संरक्षण– संकल्पना, संरक्षण के नियम।	45–56
इकाई–7 मिट्टी संसाधन, वर्गीकरण, वितरण, मृदा अपरदन एवं संरक्षण, भारत में मिट्टी सरक्षण	57–85
इकाई–8 जीवीय संसाधन प्राकृतिक वनस्पति का वर्गीकरण, वितरण, लुग्दी तथा कागज उद्योगं	86–110
इकाई–9 खनिज संसाधन	111–153
इकाई–10 वननाशन, जैवविविधता, भारत मे वन संरक्षण	154–163
इकाई–11 जल संसाधन, विश्व स्तर पर सुलभता व जल का उपयोग	164–185
इकाई–12 समुद्री जल से मत्स्य उत्पादन, वितरण, जल संरक्षण	186–197
इकाई–13 विश्व में जनसंख्या की वृद्धि एवं वितरण तथा जनसंख्या वृद्धि के सिद्धान्त	198–212
इकाई–14 जनसंख्या एवं संसाधन अन्तर्सम्बन्ध, जनाधिक्य, अनुकूलतम जनसंख्या	213–224
इकाई–15विश्व में ऊर्जा संकट एवं वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोत	225–230
इकाई–16विश्व के संसाधन प्रदेश	231–246

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार	कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति ; (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 अभिषेक सिंह	सहा0 आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 एन.के .राना	आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी
प्रो0 ए0 आर0 सिद्दीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविालय प्रयागराज
प्रो0 अरूण कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

लेखक

डॉ0 वी0 सी0 जाट	प्राचार्य, राजकीयमहाविद्यालय, रादावास जयपुर राजस्थान

सम्पादन

प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ0 अभिषेक सिंहसहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा	उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2024

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. -978-81-19530-54-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उप्र राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन विनय कुमार, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2024।

मुद्रकःचन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा0लि0, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज– 211002

इकाई–01संसाधन का तात्पर्य एवं परिभाषा, संसाधन की संकल्पना

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संसाधन का तात्पर्य एवं परिभाषाए

1.4संसाधन की संकल्पनाएँ

1.5सारांश

1.6पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्न

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1.1.प्रस्तावना

मानव अपना श्रेष्ठजीवन व्यतीत करने के लिए आर्थिक क्रियाकलाप करता है। मानव के ये आर्थिक क्रियाकलाप संसाधनों पर निर्भर करते है। भूगोल में संसाधनों का अध्ययन आर्थिक भूगोल में होता रहा है लेकिन संसाधन भूगोल का एक पृथक शाखा के रूप में विकास हुआ है।

इस इकाई में संसाधन भूगोल में संसाधनों की उत्पति, वितरण, विशेषताएं संसाधनों का विकासक्रम के साथ संसाधन भूगोल का विकास मानव का उद्विकास एवं संसाधन आधार का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.2.उद्देश्य

इस इकाई में संसाधन का तात्पर्य एवं परिभाषा का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हैः–

(अ) संसाधन भूगोल की विषय वस्तु कोस्पष्ट करना।

(ब) शिक्षार्थी संसाधन भूगोल का तात्पर्य एवं संसाधन की संकल्पना विषय में स्पष्ट कर सकेंगे।

(स) संसाधन भूगोल को परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट करना।

(द) संसाधन भूगोल के बारें में समझाना एवं भूगोल की एक शाखा के रूप में विकास की सारगर्भिता को बढ़ाना।

1.3.संसाधन का तात्पर्य एवं परिभाषाए

संसाधन एक ऐसी प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा है, जिसका उपयोग हम अपनी आवयश्कताओं की पूर्ति में करते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय जीवन की प्रगति, विकास तथा अस्तित्व साधनों पर निर्भर करता है। प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन मानव–जीवन के लिए उपयोगी है, किन्तु उसका उपयोग उपयुक्त तकनीकी विकास द्वारा ही सम्भव है। भूमि, सूर्यातप, पवन, जल, वन एवं वन्य

प्रणाली मानव–जीवन की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान थे। इनका क्रमिक विकास तकनीकी के विकास के साथ ही हुआ। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार संसाधनों का विकास कर लिया है। स्पष्ट है पृथ्वी पर विद्यमान तत्वों को जो मानव द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य हों, संसाधन कहते हैं। **जिम्मरमैन** ने लिखा है कि, "संसाधन का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना है, यह उद्देश्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति करना है।"इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु संसाधन की श्रेणी में तभी आती है जब वह निम्नलिखित दशाओं में खरी उतरती है–

(अ) वस्तु का उपयोग सम्भव हो।

(ब) इसका रूपान्तरण अधिक मूल्यवान तथा उपयोगी वस्तु के रूप में किया जा सके।

(स) जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की क्षमता हो।

(द) इन वस्तुओं के दोहन की योग्यता रखने वाला मानव संसाधन उपलब्ध हो।

संसाधन शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Resource' शब्द का पर्याय है जो दो शब्दों Re तथा Source से मिलकर बना है जिसका आशय क्रमशः Re = **दीर्घ अवधि** या **पुनः** (Again) तथा Source = **संधान** या **उपाय** (Device) है। अर्थात् प्रकृति में उपलब्ध वे तत्व या साधन जिन पर कोई जैविक समुदाय दीर्घ अवधि तक निर्भर रह सके तथा पुनः पूर्ति या पुनर्निर्माण की क्षमता हो। उदाहरण के लिए प्रकृति में वायु तथा सूर्य का प्रकाश दीर्घ अवधि तक मिलते रहेंगे जबकि वनस्पति को पुनः उत्पादित किया जा सकता है। स्पष्ट है संसाधन प्रकृति में पाया जाने वाला ऐसा पदार्थ, गुण या तत्व होता' है जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता रखता हो। संसाधन दृश्यगत (Visible) व अदृश्य (Invisible) दोनों रूपों में पाये जाते हैं। दृश्यमान संसाधनों में जल, भूमि, खनिज, वनस्पति आदि प्रमुख है। मानव जीवन, उसका स्वास्थ्य, इच्छा, ज्ञान, सामाजिक, सामंजस्य, आर्थिक उन्नति आदि महत्वपूर्ण अदृश्य संसाधन हैं।

संसाधन को विभिन्न विद्वानों ने पारिभाषित किया है, इनमें **जिम्मरमेन, स्मिथ एवं फिलिप्स**(Smith&Philips), मैकनाल (Macnall), हैमिल्टन (Hamilton), जे. फिशर (J.S.Fisher) तथा डडले स्टेम्प (StamD.) प्रमुख हैं।

समाज विज्ञान कोष के अनुसार, "संसाधन मानवीय पर्यावरण के वे पक्ष है, जिनके द्वारा मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति में सुविधा होती है तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है।" (Resources are those aspects of man's environment which render possible or facilitate the satisfaction of human wants and the attainment of social objectives)

जिम्मरमेन के अनुसार," संसाधन पर्यावरण की वे विशेषताएँ हैं जो मनुष्य की आवश्कताओं की पूर्ति में सक्षम मानी जाती हैं। उन्हे मनुष्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं द्वारा उपयोगिता प्रदान की जाती है।" (Features of the environment which are, or are considered to be capable of serving man's needs; they are given utility by the capabilities and wants of men.)

जोहन्स्टन के अनुसार, "एक संकल्पना जो मानवीय सन्तुष्टि, संम्पन्नता तथा शाक्ति प्रदान करने वाले स्त्रोतों को निर्दिष्ट करती है। श्रम, उद्यमी, कौशल, विनिवेश, स्थिर पूँजीगत ढाँचा, तकनीकी, ज्ञान, सामाजिक स्थिरता तथा सांस्कृतिक एवं भैतिक विशेषताएँ किसी देश के संसाधन माने जा सकते हैं।"(A concept used to denote sources of human satisfaction, wealth or strength, Labour, entre-preneurial skill, investment funds, fixed capital assets, technology, knowledge, social stability and cultural and physical attributes may be referred to as the

resources of a country)

जेम्स फिशर (Fisher J.S.) **के अनुसार**, "संसाधन ऐसी कोई वस्तु है जो मानवीय आवश्यकताओं तथा इच्छाओं की पूर्ति करता है।" (Resources are anything that can be used to satisfy a need or desire.)

स्मिथ एवं फिलिप्स के मतानुसार, "मूलतः संसाधन केवल पर्यावरणीय कार्यशीलता है, जो मानवीय उपयोग में आती है।"(Fundamentally, resources are merely environment functioning in the service of man.)

डडले स्टाम्प के अनुसार, "संसाधन किसी आवश्यकता या कमी की पूर्ति करने वाला साधन होता है। यह एक संग्रह या आरक्षित राशि होती है, जिसकी कोई भी आवश्यकता होने पर दोहन किया जाता है।" (A means of some want of deficiency;stock or reserve upon which one can draw when necessary)।

संसाधनों को कुछ विद्वानों ने एक पक्षीय रूप में परिभाशित करते हुए केवल संसाधन को प्राकृतिक संसाधन के रूप में माना है। **फेलमेल** (Fellmann.J.)ने बताया कि, "संसाधन या प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक रूप में पाये जाने वाले पदार्थ हैं, जो किसी भी दशा में मानव के आर्थिक विकास या कल्याण (Well being) में प्रयुक्त रहता है। पर्यावरण में संसाधनों की उपलब्धता तथा वितरण, भौतिक प्रक्रिया का परिणाम है जिन पर मानव का कमोवेश नियन्त्रण पाया जाता है। इसी प्रकार **मैकनाल** (Macnall.P.E.) ने भी संसाधन को प्राकृतिक संसाधन बताया है। जो प्रकृति द्वारा प्रदान किया जाता है तथा मानवीय उपयोग के योग्य होता है। स्पष्ट है कि संसाधनों की प्रकृति प्राकृतिक न होकर मानवीय भी होती है। बिना मानवीय प्रयास के प्रकृति में उपलब्ध कोई तत्व, पदार्थ या दशा संसाधन का रूप नहीं ले सकती है उदाहरणार्थ भूगर्भ में स्थित खनिज उस समय तक संसाधन नहीं कहलाते है जब तक कि उनकी स्थिति दोहन के उपरान्त मानवीय उपयोग के योग्य न हो जाये तथा यह मानवीय प्रयासों से ही सम्भव है। प्रकृति में कुछ संसाधन ही ऐसे हैं जो बिना मानवीय प्रयास के स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध हो जाते हैंशेष को मानवीय प्रयासों से ही उपयोगी बनाया जाता है। इसी आधार पर जिम्मरमेन ने कहा है कि, "संसाधन होते नहीं वे बनते हैं।" इसे **यीट्स** ने स्पष्ट किया है कि संसाधनों को आप किस रूप में बनाना चाहते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। इस दृष्टि से मनुष्य का ज्ञान सबसे बड़ा संसाधन है, क्योंकि यही संसाधनों के स्वरूप को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। **मिचेल** के अनुसार, ''मनुष्य का ज्ञान सभी संसाधनों की जननी है।''**जैलिन्सकी** (W.Zelinsky) के अनुसार, ''संसाधन वे तत्त्व या गुण होते हैं जो मानव आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं और जो अपनी आर्थिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा अपनी संसाधन दोहन की क्षमता के अनुसार लोगों के उद्देश्यों, प्रतिभावों तथा प्रयत्नों के साथ– साथ स्पष्ट रूप से बढ़ते जाते हैं।'' (Resources are substances or properties which satisfy human needs and obviously they increase with the aims, talents and efforts of people on their economic and cultural attainments and on their ability to exploit resources.)मानवीय आवश्यकताओं के स्वरूप में परिवर्तन के अनुसार ही संसाधन की महत्ता बढ़ जाती है। 19वीं शताब्दी में यूरेनियम का उपयोग केवल रंगीन काँच में किया जाता था लेकिन आणविक तकनीकी का आविष्कार होते ही इसका सामरिक एवं ऊर्जा संसाधन के रूप महत्व बढ़ गया।

1.4संसाधन की संकल्पनाएँ (Concepts of Resources)

प्रकृति में विद्यमान संसाधनों के विभिन्न पक्षों को मद्देनजर रखते हुए भूगोलविदों ने संसाधनों

की कुछ संकल्पनाएँ स्पष्ट की हैं, जो निम्नलिखित हैः–

(1) संसाधन होते नहीं, बनाये जाते हैं (Resourcesare not present- They have to be made)– इस संकल्पना के अनुसार संसाधन मूलतः होते नहीं, उन्हें मानव अपनी आवश्यकतानुसार निर्मित करता है। प्रकृति में विद्यमान कोई तत्त्व वर्तमान में संसाधन नहीं है, लेकिन भविष्य में मानवीय कौशल एवं कार्यकुशलता से संसाधन बन सकता है। नदियों में प्रवाहित जल से विद्युत का उत्पादन कर उसे विभिन्न कार्यों के उपयोग में लिया जाता है। इस सन्दर्भ में ईसा बोमेन ने लिखा है कि, ''पर्यावरण के भौतिक तत्त्व सीमित मात्रा में स्थैतिक हैं। ज्यों ही मानवीय तत्त्वों से सम्पर्क होता है ये तत्त्व मानवीय विशेषताओं की तरह ही गतिशील हो जाते हैं।'' स्पष्ट है संसाधन होते नहीं बनते हैं। प्रकृति में विविध रूपों में वितरित पदार्थों को मनुष्य ने अपने कौशल एवं दक्षता से उपयोग के योग्य बना लिया है।

(2) संसाधन एक गतिशील संकल्पना है, स्थिर नहीं(Resources is a dynamic concept and not a static).इस अवधारणा के अनुसार कुछ संसाधन वर्तमान में अनेक प्रतिरोधों **(Resistances)** के कारण मानवीय उपयोग के योग्य नहीं हैं, वे ही कालान्तर में , संसाधन का रूप लेकर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। इस प्रक्रिया में मानवीय ज्ञान की प्रमुख भूमिका होती है। जिम्मरमैन ने बताया कि ''संसाधन मानवीय ज्ञान व कुशलता में वृद्धि के साथ बढ़ते हैं तथा दोष एवं गलतियों से कम होते हैं।'' एक शताब्दी पूर्व मानव अनेक खनिजों से अनभिज्ञ था एवं मानवीय कौशल एवं वृद्धि के साथ इनकी उपलब्धता बड़ी है।

(3) संसाधन एक कार्यात्मक संकल्पना है(Resource is a functional concept)– संसाधन का प्रमुख लक्षण उसकी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता है। अतः कोई भी प्राकृतिक तत्व मानवीय उपयोग के योग्य सक्रियात्मक (**Functional**) रूप में बनता है। भूगर्भ में स्थित कोयला एवं पेट्रोलियम खनन करके ही दोहन योग्य बनता है तथा संसाधन कहलाता है, भूगर्भ में नहीं। इसी प्रकार पृथ्वी तल पर विभिन्न नदियों से प्रवाहित जल भी कार्यात्मक रूप में ही उपयोगी बन पाता है। मनुष्य संसाधनों में कार्यात्मकता उत्पन्न करता है। प्राकृतिक वस्तुओं के उपलब्ध होने से मानव की कार्यात्मक क्षमता में वृद्धि हुई है जिससे नदियों, खनिजों, जंगल तथा मृदा जीवीय संसाधनों में परिवर्तन किये हैं।

(4) संसाधन प्रतिरोधों तथा तटस्थ तत्त्वों के साथ मिलते हैं(Resources exist side by with Resistance and Neutral stuff) प्रकृति में संसाधनों की उपलब्धता के साथ ही प्रतिरोध एवं तटस्थ तत्त्व भी रहते हैं। इन्हें पृथक् कर पाना कठिन है। प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये प्रतिरोधक तत्त्वों को हानिकारक तत्त्व कहते हैं। इनमें बंजर भूमि, बाढ, बीमारियाँ तथा भूकम्प एवं तूफान जैसी प्राकृतिक आपदायें प्रमुख हैं। इसी प्रकार शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक भावनायें आदि मानवीय क्षेत्र के संसाधन एवं प्रतिरोधक हैं। इनकी अनुकूलता संसाधन है तथा प्रतिकूलता प्रतिरोध है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति महत्त्वपूर्ण संसाधन है जबकि अज्ञानता एक प्रतिरोधक तत्त्व है। कुछ तत्त्व दोनों ही स्थितियों में स्वतन्त्र रहते हैं, जिन्हें मूक तत्त्व या तटस्थ कहते हैं। प्राविधिक ज्ञान में वृद्धि करके तटस्थ एवं प्रतिरोध तत्त्वों को संसाधन बनाया जा सकता है।

(5) मनुष्य के रहन–सहन का स्तर संसाधनों के उपयोग का परिणाम है(The standard of man's living is the result of the utilization of resources) मानव ने 'विभिन्न संसाधनों का उपयोग करके अपने जीवनस्तर में सुधार किया है। प्राचीन मानव जब प्रकृति में विद्यमान संसाधनों के दोहन से अनभिज्ञ था तो जंगली अवस्था में जीवन व्यतीत करता था लेकिन जैसे–जैसे संसाधनों का

उपयोग प्रारम्भ हुआ मानवीय जीवन का स्वरूप बदल गया। इस दृष्टिकोण से यदि मानव सन्तुलित रूप में संसाधनों का उपयोग करके जीवन स्तर में सुधार लाता है तो प्रकृति में सन्तुलन बना रहता है अन्यथा अविवेकपूर्ण एवं अतिदोहन से प्रकृति में अनेक संकट उत्पन्न हो जाते हैं। वर्तमान में ओजोन परत में अल्पता संसाधनों का दोहन कर जीवन स्तर में सुधार का ही परिणाम है।

(6) संसाधनों के संरक्षण की संकल्पना(Concept of resources conservation) जिस प्रकार संसाधन होते नहीं बनते हैं उसी प्रकार संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन होते है। जो ह्रास का कारण बनता है संसाधनो के संरक्षण से अभिप्राय है उनका इस सीमा तक उपयोग किया जाये कि उनकी प्रकृति में दीर्घकाल तक उपलब्धता बनी रहे। इस प्रकार संसाधनों का विवेकपूर्ण दोहन ही उनका संरक्षण है। अतः मानव जिसे संसाधनों का निर्माणकर्ता बताया है उसे प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों के लिए भी कठोर कदम उठाने चाहिए।

प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वों को मानव संसाधन का रूप देता है जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवनयापन करते हुए सांस्कृतिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के साथ ज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है। स्पष्ट है कि संसाधनों की प्रकृति भी परिवर्तनशील है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति, भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्त्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है।

1.4 संसाधन भूगोल का महत्त्व–(Significance of Resource Geography)वर्तमान युग में तीव्र गति से हो रहे आर्थिक विकास के दौर मे संसाधन भूगोल का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। इसके अध्ययन बिना आर्थिक तन्त्र को चलाना असम्भव सा प्रतीत हो रहा है। विश्व के विभिन्न देशों की आर्थिक दशा में हो रहे परिवर्तनों के बारे में जानकारी वहाँ की संसाधन की उपलब्धता अथवा कमी के अध्ययन से हो सकती है। आर्थिक समस्याओं की जानकारी के लिए संसाधनों का भू–आर्थिक दृष्टिकोण (Geo-economic Aspect) द्वारा अध्ययन किया जाना आवश्यक है। प्रत्येक देश की बदलती अर्थव्यवस्था की औद्योगिक उत्पादों तथा कृषि संसाधनों की स्थिति के अनुसार ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तय होते हैं। किसी देश में खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों के भण्डारों के होने से वह अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश अपना प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य रखता है। अनेक बार खनिज सम्पन्न क्षेत्र सामरिक दृष्टि से विवाद का केन्द्र बन जाते हैं। ग्रीनलैण्ड द्वीप में सामरिक खनिजों की अधिकता के कारण उस पर संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस उस पर आधिपत्य रखना चाहते हैं। इसी प्रकार कैस्पियन सागर के तेल क्षेत्रों पर रूस, ईरान, अजरबेजान, कजाखस्तान तथा तुर्कमेनिस्तान का अधिकार है लेकिन दक्षिणी पश्चिमी एशिया के पेट्रोलियम भण्डारों की तरह ही यहाँ भी पूँजीवादी एवं साम्यवादी शक्तियों के मध्य विवादित स्थल भूराजनीति का स्थल बनता जा रहाहै। भारत जैसे अनेक बड़े देशो को खनिज तेल की प्राप्ति के लिए कुवैत एवं बहरीन जैसे छोटे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन सभी मुद्दों का अध्ययन संसाधन भूगोल में मिलता है। संसाधन भूगोल का अध्ययन निम्नलिखित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के कारण भी महत्त्वपूर्ण है–

(i) संसाधनों की माँग एवं पूर्ति का निर्धारण आज किसी भी देश में बढ़ती जनसंख्या की माँगों के लिए विभिन्न संसाधनों की आपूर्ति किस प्रकार की जाय ताकि इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सम्भव हो सके तथा मनुष्य का जीवन स्तर ऊँचा हो सके। वर्तमान में बढ़ती हुई जनसंख्या के दौर में

संसाधनों की कमी होना स्वाभाविक है जबकि विश्व की जनसंख्या 2001 में 613.4 करोड़ तथा 2011 में 700 करोड़ हो चुकी है। इस जनसंख्या का दबाव संसाधनों पर पड़ने से वहाँ की पारिस्थितिकी तन्त्र को भी खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन सभी स्थितियों का समाधान संसाधन भूगोल युक्तिसंगत प्रस्तुत करता है।

(ii) प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन– संसाधन भूगोल का अध्ययन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि किस प्रकार हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन एवं नियोजन करें कि राष्ट्रीय दृष्टि से उनकी पोषणीयता बनी रहे तथा भावी पीढ़ियों को संसाधन संकट या पारिस्थितिकीय संकट का सामना नहीं करना पड़े। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं संरक्षण की विधियाँ मनुष्य के विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करती है। इन पर राजनीतिक नीतियों का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए संसाधन भूगोल का प्रत्येक सभ्य एवं सामाजिक नागरिक के समान ही राजनीतिज्ञों एवं नियोजन करने वाले अर्थशास्त्रियों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक तन्त्र का निर्माण करने वाले लोगों के लिए भी संसाधन भूगोल का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि आर्थिक प्रगति के लिए वे पारिस्थितिकीय तन्त्र में असन्तुलन उत्पन्न कर देते हैं।

संसाधनों के उत्पादन का वास्तविक जानकारी संसाधन भूगोल से ही मिलता है। विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिए आवश्यक कच्चे माल की जानकारी संसाधन भूगोल द्वारा ही प्राप्त होती है। विभिन्न कच्चे माल के स्रोत कहाँ हैं। उनकी औद्योगिक उपक्रम तक आने में परिवहन लागत कितनी होगी तथा उसके उत्पाद का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कितनी दूरी पर होगा। इन सभी प्रश्नों के उत्तर संसाधन भूगोल में मिलते हैं। वर्तमान संसाधन संकट के दौर में हमें विभिन्न संसाधनों के अवनयन को पर्याप्त जानकारी मिल जाती है जिस आधार पर हम उक्त संसाधन के संरक्षण की रणनीति बनाते हैं जैसे विश्व में हो रहे वनोन्मूलन, मृदा अपरदन, जैव विविधता ह्रास, ऊर्जा संकट, जल संकट, जलवायु परिवर्तन आदि की पर्याप्त जानकारी मिल रही है। जिससे सभी नागरिक अवगत होकर इनके संरक्षण एवं सन्तुलन के प्रति अपना

दृष्टिकोण बनाते हैं। इस प्रकार वर्तमान आर्थिक एवं प्रौद्योगिकी युग में संसाधन भूगोल का अध्ययन महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है

1.5 सारांश

संसाधन एक प्राकृतिक एवं मानवीय सम्पदा है जिसका प्रयोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए करते है। संसाधन की प्रकृति मे विघमानता के आधार पर अनेक संकल्पनाएं प्रस्तुत की गई है। यह इकाई संसाधन का तात्पर्य एवं संकल्पनाओं कों समझनें में सहायक होगी। संसाधनों के निर्माण की जन्मदायिनी प्रकृति को माना जाता है। प्रकृति के अनेक तत्त्व स्वयं संसाधन तथा संसाधन निर्माणकारी कारक दोनों रूपों में पाये जाते हैं। लेकिन मानवीय प्रभाव से इनकी प्रकृति बदल जाती है। इनमें वायु, जल, वनस्पति, मृदा आदि प्रमुख हैं। ये सभी तत्त्व जब तक मानव प्रभाव से अप्रभावित रहते हैं, संसाधन के रूप में उपलब्ध रहते हैं। जल एक प्राकृतिक संसाधन है तथा संसाधन निर्माणकारी कारक के रूप में इससे जल–विद्युत अर्थात् ऊर्जा संसाधन का निर्माण किया जाता है। इन तत्त्वों द्वारा संसाधन निर्माण में समय की प्रमुख भूमिका होती है। उदाहरण के लिए जल तथा पवन से ऊर्जा निर्माण अल्प समय में किया जा सकता है, लेकिन प्राकृतिक वनस्पति तथा जीवाश्मों के कायान्तरण से कोयला एवं पेट्रोलियम के निर्माण में काफी लम्बा समय (करोड़ों वर्ष) लगता है। प्रकृति एक ऐसा भौतिक आधार है जिस पर मानव अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं तकनीक दक्षता से प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग करके संसाधन निर्माण में अपनी भूमिका निभाता है मानवीय ज्ञान में वृद्धि

से प्राकृतिक तत्त्वों की कार्यदक्षता में वृद्धि होती है। सन् 1750 से पूर्व मानव जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का सही ढंग से उपयोग करना नहीं जानता था, लेकिन धीरे–धीरे मानवीय ज्ञान में वृद्धि होती गई तथा सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ–साथ मानव विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों से अवगत हुआ तथा उनके उपयोग के उन्नति के तरीके तलाशने लगा फलस्वरूप संसाधनों में वृद्धि हुई।

1.6 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1– संसाधनों की संकल्पनाओ को सविस्तार समझाइये।

प्रश्न–2– संसाधन की परिभाषा लिखो।

लधु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1– संसाधन की कार्यात्मक संकल्पना को बताइये।

प्रश्न–2– संसाधन गतिशील है सविस्तार समझाइये।

प्रश्न–3– संसाधन के महत्व की विवेचना कीजिए

प्रश्न–4– संसाधन का निर्माण कैसे जाता है बतायें

प्रश्न–5– संसाधन की प्रकृतिकी व्याख्या कीजिए

बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्रश्न–1– मानव सभ्यता के आधुनिक युग को किस नाम से जाना जाता है।

(अ) कास्य युग **(ब)** लौहयुग

(स) ताम्र युग **(द)** पाषाण युग,

प्रश्न–2– प्राथमिक व्यवसाय है?

(अ) पशु धारण, आखेट, वनकटाई **(ब)** दुग्ध, परिवहन, वन कार्य।

(स) आखेट, शिक्षा, पशुधारण **(द)** आखेट, कृषि, परिवहन।

प्रश्न–3– "संसाधन ऐसी कोई वस्तु है जो मानवीय आवश्यकताओं तथा इच्छाओ की पूर्ति करता है"

(अ) जेम्स, केशर **(ब)** डडलें स्टाम्प

(स) जिम्मरमेंन। **(द)** मैकनाल

1.7 सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. डॉ बी.सी जाट "संसाधन भूगोल" मलिक बुक कम्पनी जयपुर
2. प्रो. जगदीश सिहं "संसाधन भूगोल" ज्ञानादेय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई–2संसाधन विकास के सोपान, संसाधन एवं संस्कृतिका गत्यात्मक सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्यः

2.3संसाधन विकास के सोपान

2.4संसाधन तथा पर्यावरण के मध्य अन्तः सम्बन्धता

2.5संसाधन एवं संस्कृति गत्यातमक सम्बन्ध

2.6 सारांश

2.7 पारिभाषिक शब्दावलीः

2.8 बोध प्रश्न

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

भौगोलिक ज्ञान का प्रारंभ मानव सभ्यता के साथ ही प्रारंभ हो गया था। मानव विकास के भरण–पोषण के लिए कन्दमूल फल एवं आखेट, करना, पशुचारण, मछली पकड़ने आदि के कार्यों में ही प्रकृतिक दोहन करता था। लेकिन सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ ही कृषि एवं खनन को आधुनिक रूप दिया गया। इस प्रकार मनुष्य के धीरे–धीरे अपने पर्यावरण के संसाधनों से परिचित होने के साथ ही संसाधन का विकास क्रम प्रारंभ हुआ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई में संसाधन विकास के सोपान, संस्कृति का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हैः–

(अ) संसाधन एवं संस्कृति के गत्यात्मक सम्बन्ध को स्पष्ट करना।

(ब) विद्यार्थी संसाधन विकास के सोपान के विषय में जान सकेंगे।

(स) विद्यार्थी संसाधन के उपयोग के अनुसार मानव विकास स्पष्ट कर सकेंगे।

2.3.संसाधन विकास के सोपान/संसाधनों का निर्माण (Creation of Resources)

संसाधनों के निर्माण की जन्मदायिनी प्रकृति को माना जाता है। प्रकृति के अनेक तत्व स्वयं संसाधन तथा संसाधन निर्माणकारी कारक दोनों रूपों में पाये जाते हैं लेकिन मानवीय प्रभाव से इनकी प्रकृति बदल जाती है। इनमें वायु, जल, वनस्पति, मृदा आदि प्रमुख हैं। ये सभी तत्त्व जब तक मानव प्रभाव से अप्रभावित रहते हैं, संसाधन के रूप में उपलब्ध रहते हैं। जल एक प्राकृतिक संसाधन है तथा संसाधन निर्माणकारी कारक के रूप में इससे जल–विद्युत अर्थात् ऊर्जा संसाधन का निर्माण किया जाता है। इन तत्त्वों द्वारा संसाधन निर्माण में समय की प्रमुख भूमिका होती है। उदाहरण के

लिए जल तथा पवन से ऊर्जा निर्माण अल्प समय में किया जा सकता है, लेकिन प्राकृतिक वनस्पति तथा जीवाश्मों के कायान्तरण से कोयला एवं पेट्रोलियम के निर्माण में काफी लम्बा समय (करोड़ों वर्ष) लगता है।

प्रकृति एक ऐसा भौतिक आधार है जिस पर मानव अपनी कुशाग्रबुद्धि एवं तकनीकी दक्षता से प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग करके संसाधन निर्माण में अपनी भूमिका निभाता है। मानवीय ज्ञान में वृद्धि से प्राकृतिक तत्त्वों की कार्यदक्षता में वृद्धि होती है। सन् 1750 से पूर्व मानव जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का सही ढंग से उपयोग करना नहीं जानता था, लेकिन धीरे–धीरे मानवीय ज्ञान में वृद्धि होती गई तथा सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ–साथ मानव विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों से अवगत हुआ तथा उनके उपयोग के उन्नत तरीके तलाशने लगा फलस्वरूप संसाधनों में वृद्धि हुई।संस्कृति का निर्माता मानव स्वयं एक शक्तिशाली संसाधन है, जो प्राकृतिक तत्त्वों को अपने ज्ञान एवं कौशल के विकास के द्वारा संसाधन रूप में उपयोग करता है। वह संसाधनों का निर्माता एवं उपभोक्ता दोनों है, जो एक भौगोलिक कारक व संसाधन के रूप में सम्मिलित होकर कार्य करता है। मानव संसाधन में किसी इकाई क्षेत्र में रहने वाली मानव जनसंख्या, उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता, स्वास्थ्य, जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संगठन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी स्थिति जैसी विशेषताएँ सम्मिलित हैं। प्राकृतिक वातावरण में जब तक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है तब तक मानव संसाधान की समस्या का रूप नहीं लेता है, लेकिन इनकी संख्या बढने पर आवश्यकताओं की आपूर्ति घटने लगती है तथा स्वयं मानव संसाधन भी समस्या बन जाता है।

मानव एक सक्रिय प्राणी के रूप में पृथ्वी पर विद्यामान संसाधनों एवं प्राकृतिक परिवेश का उपभोग करते हुए उसके साथ समायोजन (Adjustment) करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वह अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार प्रकृति प्रदत्त तत्त्वों में श्रेष्ठ का चयन करता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी तल को अनेक रूपों में परिवर्तित करता है। कृषि विकास के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाता है। नदीं घाटियों पर बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का विकास करता है। एक ओर आर्थिक संवृद्धि के लिए प्राकृतिक वनस्पति का विनाश करता है, वहीं दूसरी ओर इसके संरक्षण की सोच उत्पन्न कर वृक्षारोपण करता है।

संसाधनों के उपयोग की दृष्टि से मानव केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा निरन्तर प्राकृतिक परिवेश को परिवर्तित कर उसके अनुरूप अनुकूलन करता है। प्राकृतिक घटकों के रूपान्तरण की प्रकृ ति एवं दर मनुष्य की बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर निर्भर करती है। मानव ने पृथ्वी पर अपने सांस्कृतिक अभ्युदय के साथ–साथ विभिन्न भू–भागों का उपयोग किया है। जहाँ सर्वप्रथम कृषि एवं पशुपालन का विकास किया तथा धीरे–धीरे मृदा के उपयोग, जल एवं खनिज संसाधनों के महत्त्व को पहचानकर भौगोलिक एवं आर्थिक समायोजन करके संसाधन उपयोग के तरीके सीखे। संसाधन उपयोग का प्रारंभिक स्वरूप केवल आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित था लेकिन धीरे–धीरे इसका स्वरूप आर्थिक विकास ने ले लिया तथा मानव ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की जिसके फलस्वरूप उनकी कमी महसूस होने लगी तथा मानव को संसाधन के संरक्षण की बात सोचनी पड़ी।

2.4.संसाधन तथा पर्यावरण के मध्य अन्तःसम्बन्धता(Resources and Environment Interface)

पर्यावरण के वे सभी तत्त्व जिनका मानवीय उपयोग सम्भव है संसाधन कहलाते हैं। संसाधन

प्रकृति के सम्पूर्ण जैव जगत का आधार हैं जिन पर जीवों का अस्तित्व निर्भर करता है। इन सभी तत्त्वों पर मानव समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पक्ष भी निर्भर हैं। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण के संसाधनों का उपयोग करके ही आर्थिक सांस्कृतिक भू–दृश्य विकसित करता है। मनुष्य अपने ज्ञान, कौशल (Skill), तकनीकी दक्षता तथा जीवीय श्रेष्ठता के कारण अन्य जीवों से आगे निकल गया है। मनुष्य ने पर्यावरण के प्रतिरोधों से बचने की विधियाँ भी विकसित कर ली हैं। बढ़ते मानवीय दबाव का प्रभाव सन्तुलित पर्यावरण पर पड़ा तथा संसाधनों का ह्रास प्रारम्भ हो गया। पर्यावरण में सर्वसुलभ संसाधनों (वायु तथा जल) का भी अवनयन (Degradation) होने लगा है। इन संसाधनों की बहुलता तथा नव्यकरणीय प्रकृति होने पर भी मौलिक गुणवत्ता का ह्रास हो जाने से पुनर्स्थापन (Restoration) असम्भव हो जाएगा। गंगा नदी के जल को विगत पाँच दशकों में इस स्तर तक प्रदूषित कर दिया गया है कि आगामी 21 वीं सदी में भी इसके पुनर्स्थापन में लम्बा समय लगेगा।

संसाधनों का दोहन तथा पर्यावरण सन्तुलन एक ऐसा अनूठा संयोजन है जिस पर प्राकृतिक व्यवस्था तथा जीवों का अस्तित्व निर्भर करता है। संसाधनों की उपलब्धता मानव समाज की आर्थिक समृद्धि का मूल आधार है, लेकिन इनके अविवेकपूर्ण दोहन के कारण पर्यावरण पर दूरगामी दुष्प्रभाव पड़ते हैं। औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का दोहन बढ़ा तथा हरितगृह प्रभाव बना जिसके फलस्वरूप पृथ्वी का तापमान बढ़ा व सन्तुलित जलवायु में बदलाव होने लगा। इसलिए यह आवश्यक है कि पर्यावरण तथा संसाधन उपयोग के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जाये, जिसके लिए प्रकृति में विद्यमान सभी संसाधनों के दक्षतम तथा प्रभावी उपयोग किया जाये, न्यून मात्रा में उपलब्ध तथा समाप्तप्राय संसाधनों के विकल्प तलाशने चाहिए। प्रकृति में अनेक संसाधन ऐसे हैं जिनके निर्माण एवं संचयन में दीर्घ अवधि लगती है जबकि दोहन अल्प समय में कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ कोयला एवं पेट्रोलियम के निर्माण में लाखों वर्ष लगते हैं जबकि दोहन कुछ वर्षों में कर लिया जाता है। फलस्वरूप संसाधन संकट उत्पन्न हो जाता है।

संसाधन उपयोग के गलत तरीकों से पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो रहे हैं जिन पर नियन्त्रण कर पाना आसान कार्य नहीं है। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण अम्ल वर्षा (Acid Rain), ओजोन अल्पता, तापमान में वृद्धि जैसी ज्वलन्त पर्यावरणीय समस्यायें सामने आ रही हैं। मनुष्य पर्यावरण का प्रमुख संसाधन है जो संसाधन निर्माण एवं दोहन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। मानव अपने सांस्कृतिक, आर्थिक अभ्युदय के लिए संसाधनों का निरन्तर दोहन करता आया है लेकिन विकास में संसाधन के दोहन को अनिवार्य मानने वाला मानव समुदाय पर्यावरणीय सन्तुलन बिगड़ने से आशंकित है अतः जहाँ पर्यावरण में स्थित संसाधन मानवीय समृद्धि के लिए आवश्यक हैं वहीं इनका अतिदोहन मानवीय अवनति भी कर सकता है। स्पष्ट हैं कि संसाधन एवं पर्यावरण में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के उपरान्त ही प्राकृतिक सन्तुलन सम्भव है जो अन्य जीव–जन्तुओं सहित मानवीय समृद्धि का मूल आधार है।

2.5. संसाधन एवं संस्कृति गत्यात्मक सम्बन्ध–

संसाधनों की प्रकृति – (Nature of resources)

संसाधन की प्रकृति गतिशील है, जो निरन्तर परिवर्तनशील रहते हुए नवीन स्वरूप प्राप्त करती रहती है तथा इसमें समय महत्वपूर्ण घटक है। पृथ्वी पर प्रारम्भिक रूप में जलवायु परिवर्तन से सघन वनस्पति आवरण विकसित हुआ, जिसका कालान्तर में भूगर्भिक उलट–फेर के उपरान्त कायान्तारण हुआ तथा कोयला एवपेट्रोलियमबना। स्पष्ट है पूर्व में विकसित प्राकृतिक वनस्पति जीवाश्मीय ईंधन

बन गई। इसके अतिरिक्त पर्यावरण के उपयोग द्वारा मानव ने संसाधनों की प्रकृति को बदला है। संसाधनों की बदलती हुई प्रकृति निम्नलिखित है–

प्राकृतिक वातावरण

↓

मानव द्वारा उपयोग

↓

तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास

↓

संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि

↓

संसाधनों की प्रकृति में परिवर्तन

प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वों को मानव संसाधन का रूप देता है। जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवनयापन करते हुए सांस्कृतिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के समय ज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में भी परिवर्तन होता है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्त्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है। समय के साथ संसाधनों की कमी से प्रकृति भी परिवर्तनशील रहती है। कोयला समय के साथ विभिन्न स्वरूपों, पीट, लिग्नाइट, बिटुमिनस,एन्थ्रेसाइट में बदलता है। इसी प्रकार लौह अयस्क, ताँबा, बॉक्साइट आदि खनिज संसाधन धात्विक सम्पन्नता के आधार पर भिन्न प्रकृति रखते हैं। स्थिति का भी संसाधनों की प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है। भूमध्यरेखीय प्रदेश की जैविक सम्पदा शीतोष्ण कटिबन्धीय या ध्रुवीय प्रदेशों से भिन्न प्रकृति की होती है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य जो विभिन्न वर्गों के संसाधन हैं, परिवर्तनशील रहते हुए अपनी प्रकृति भी बदलते हैं जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ ही मानवीय क्रियाकलाप भी उत्तरदायी हैं।

2.6 सारांश

संसाधनों की प्रकृति परिवर्तनशील है। समय के अनुसार संसाधन का स्वरूप बदलता है। प्रकृति से प्राप्त कच्चे पदार्थ को मानव अपने तकनीकी ज्ञान के द्वारा उसको संसाधन में बदलता है जैसे भूमि में दबे कोयला, पेट्रोल को खनन विधि द्वारा निकालकर उनको ऊर्जा के काम में लेना। ऊर्जा का उपयोग कर मानव अपना आर्थिक एवं सामाजिक विकास करता है। संसाधनों की खोज करता है एवं

उनकी उपलब्धता में वृद्धि करता है। संसाधनों की प्रकृति में निरन्तर परिवर्तन करता रहता है। इस इकाई के अध्ययन में संसाधनों के विकास एवं गत्यात्मक सम्बन्ध को समझने में सहायक होगें।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

जैविक सम्पदा – जैवमण्डल में स्थित अनेक निश्चित जीवन चक्रवाले संसाधन

पीट, लिग्नाईट, बिटुमिनस– एथ्रेसाइट– कोयले के प्रकार है।

2.8. बोध प्रश्न

2.8.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र01– संसाधन एवं संस्कृति का गत्मात्मक सम्बन्ध समझाइयें।

2.8.2.–लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र01– संसाधनों की बदलती प्रकृति के बारे में लिखिए।

2.8.3–बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्र01– जिन संसाधनों का एक से अधिक बार उपयोग किया जा सकता है, उन्हें कहते हैं–

(अ) जैविक संसाधन (ब) चक्रीय संसाधन

(स) अजैविक संसाधन (द) ऊर्जा संसाधन

प्र02–जैविक संसाधन हैं–

(अ) वन (ब) पशु–पक्षी

(स) वन्य जीव (द) उपरोक्त सभी

प्र03– संसाधन प्रदेशों के विभाजन में किस विद्वान द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक प्रदेशों का उपयोग किया जाता है?

(अ) हंटिंगटन (ब) हर्बर्टसन

(स) कैनन (द) डिमांजिया

प्र04– संसाधन होते नहीं बनते हैं, यह किसने कहा है?

(अ) मार्शल (ब) जिम्मरमैन

(स) मेकनाल (द) जोबलर

प्र05– सबसे बड़ा संसाधन है–

(अ) मानवीय बुद्धि (ब) पेट्रेलियम

(स) कोयला (द) सौर ऊर्जा

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1–डॉ बी सी जाट "संसाधन भूगोल" मलिक वुक कम्पनी जयपुर

2–प्रो. जगदीश सिंह "संसाधन भूगोल" ज्ञानोदय प्रकाशन जयपुर

3–Dr- Alaka Gautam - Resources Geography, Sharda Rustop phawan, Prayagraj

इकाई–3 संसाधन भूगोल का स्वरूप, क्रम विकास, ससांधन भूगोल के उपागम

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्यः

3.3 संसाधन भूगोल का अर्थ

3.4संसाधन भूगोल का विकास

3.5संसाधन भूगोल का विषय क्षेत्र

3.6 संसाधन भूगोल के अध्ययन के उपागम

3.7 संसाधन भूगोल का महत्त्व

3.8सारांश

3.9 पारिभाषिक शब्दावलीः

3.10. बोध प्रश्न

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना

भूगोल की विभिन्न शाखाओं की अध्ययन की विभिन्न विधियाँ (उपागम) है। संसाधन भूगोल के अध्ययन की भी विभिन्न उपागम है। संसाधन भूगोल का विकास धीरे–धीरे विस्तृत होता गया। मानव विकास भरण–पोषण के लिए कन्दमूल फल, आखेट, पशुपालन खनन आदि से प्रारम्भ करके धीरे–धीरे संसाधनो का उपयोग, कृषि, उत्खनन, विनिर्माण में करने लगा।इकाई में संसाधन भूगोल के विकास क्रम, स्वरूप एवं, संसाधन भूगोल के उपागमों के बारे में अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.2 उदेश्य

प्रस्तुत अध्ययन के बाद निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी

(अ) संसाधन भूगोल के अध्ययन के उपागम की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) शिक्षार्थी क्रमवद्ध अध्ययन व प्रादेशिक अध्ययन के विषय में पहुंच बना सकेंगे।

(स) शिक्षार्थी आकृतिक, जातीय, कार्यात्मक एवम विशिष्ट प्रदेशों के माध्यम से अध्ययन उपागमों को समझेंगे।

(द) संसाघन के विकास क्रम के माध्यम से प्राचीन समय से वर्तमान समय तक संसाधनों के उपयोग को समझाना।

3.3 संसाधन भूगोल का अर्थ (Meaning of Resource Geography)

संसाधन भूगोल भूतल पर मानव सहित सभी संसाधनों की विशेषताओं, क्षेत्रीय विभिन्न स्थानिक वितरण (Spatial Distribution) और उपयोग के प्रतिरूपों का अध्ययन है, जिसमें संसाधन उपयोग

के साथ ही मानव द्वारा किये गये प्राकृतिक संसाधनों की खोज तथा इससे सम्बन्धित जानकारी का भी अध्ययन किया जाता है। प्रकृति में किसी भी संसाधन के उपयोग के ज्ञान के बाद ही वह संसाधन की श्रेणी में आता है। जीवाश्मीय ईंधन (कोयला तथा पेट्रोलियम) करोड़ों वर्षों से भूमि के नीचे स्थित थे लेकिन 19वीं शताब्दी के उतरार्द्धमें पेट्रोलियम निकालने तथा दोहन करने की तकनीकी के विकास के बाद वर्तमान में पेट्रोलियम आर्थिक तन्त्र का प्रमुख संसाधन बन गया। इन सभी तथ्यों का व्यवस्थित अध्ययन संसाधन भूगोल में किया जाता है।

आर्थिक पर्यावरण के सन्दर्भ में संसाधन भूगोल मनुष्य की समस्त आर्थिक क्रियाओं तथा संसाधनों का अध्ययन करती है। मानवीय क्रियाओं के विभिन्न कारकों, तत्त्वों तथा अन्तर्सम्बन्धों को भिन्नता के कारण आर्थिक भूगोल को विषयवस्तु से संसाधन भूगोल को पृथक के रूप में विकसित किया गया है। वर्तमान आर्थिक क्रियाएं मुख्यतः संसाधनों पर निर्भर है। इस दृष्टि से संसाधन में पृथ्वी के समस्त संसाधनों, उनकी विशेषताओं क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूपों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार सारांशतः संसाधन भूगोल को निम्न रूप में परिभाषित किया जा सकता है, "संसाधन भूगोल पृथ्वी तल पर पाये जाने वाले समस्त ज्ञात अज्ञात प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों की खोज, उद्भव, वितरण, इसमें विद्यमान स्थानिक भिन्नता, उपयोग प्रतिरूपों तथा संरक्षण का अध्ययन करता है।'' अर्थात् वर्तमान में संसाधन भूगोल में न केवल ज्ञात संसाधनों का ही अध्ययन होता है, वरन् अज्ञात संसाधनों की खोज तथा उपलब्ध संसाधनों के उपयोग प्रतिरूप को मद्देनजर रखते हुए उनके संरक्षण एवं विकल्प तलाशने की रणनीतियों को भी महत्त्व दिया जा रहा है। प्रारम्भ में ऊर्जा संसाधनों में केवल कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस का ही दोहन होता रहा है। लेकिन 20वीं शताब्दी में अनेक गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का भी विकास किया गया है। इस दृष्टि से संसाधन भूगोल में मानव जाति के भावी जीवन के लिए संसाधन उपलब्धता बनाये रखने के लिए संसाधन संरक्षण एवं विकास को महत्व मिला है।

3.4संसाधन भूगोल का विकास (Development of Resource Geography)

भौगोलिक ज्ञान का प्रारम्भ मानव सभ्यता के उद्भव के साथ हो गया था। धीरे–धीरे भौगोलिक ज्ञान का विषय क्षेत्र विस्तृत होता गया जिनमें प्रारम्भ में खगोलीय एवं भौतिक भूगोल से सम्बन्धित तथ्यों का समावेश किया गया है। लेकिन प्रारम्भ में खोज, अन्वेषण द्वारा विभिन्न तथ्यों को संग्रहित कर मानचित्रण किया गया। मानव विकास के भरण–पोषण के लिए कन्दमूल, फल एकत्र करना, आखेट, पशुचारण, मछली पकड़ने आदि के कार्यों में ही प्रकृति का दोहन करता था लेकिन सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ ही कृषि एवं खनन को आधुनिक रूप दिया गया। इस प्रकार मनुष्य ने धीरे–धीरे अपने पर्यावरण के संसाधनों से परिचित होने के साथ ही संसाधन भूगोल का विकास क्रम प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक दौर में इस समय यह अध्ययन पृथक् शाखा के रूप में न होकर भूगोल में ही किया जाता था।

प्रारम्भिक भौगोलिक ज्ञान का एक ही विषय के रूप में अध्ययन किया जाता था। लेकिन कालान्तर में विशेषीकरण के कारण सर्वप्रथम भूगोल का विभाजनं दो शाखाओं भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल में हुआ तत्पश्चात् संसाधनों का अध्ययन मानव भूगोल में किया जाने लगा। प्रसिद्ध फ्रेंच भूगोलवेत्ता जीन ब्रूश ने मानव भूगोल के मूल सिद्धान्तों में भूमि शोषण का भूगोल (Geography of Expliotation of the Earth) को प्राथमिकता दी थी। इसके अतिरिक्त परम आवश्यकताओं के भूगोल को भी महत्त्व दिया। जिसमें भोजन, वस्त्र, आवास को सम्मिलित किया। जबकि भूमि के शोषण के भूगोल में कृषि, पशुपालन, आखेट, खनन आदि व्यवसायों को मुख्य स्थान दिया है। इसी प्रकार

अमेरिकी विद्वान एल्सवर्थ हटिंगटन ने मानव भूगोल में प्राकृतिक दशाओं जल, मृदा, खनिज, जीव जन्तु, पौधे तथा मानवीय आवश्यकताओं तथा व्यवसायों को सम्मिलित किया है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध्द में मानव भूगोल में विशेषीकरण प्रारम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप आर्थिक भूगोल का विकास हुआ। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में कार्ल सावर (Carl Sauer) रिचर्ड हार्टशोर्न (R- Hartshorne), मर्फी (Murphy RE) तथा जोन्स (Jones) आदि विद्वानों ने आर्थिक भूगोल में प्राकृतिक संसाधनों तथा उनके उपयोग, कृषि उत्खनन, विनिर्माण उद्योगों तथा संसाधन संरक्षण के अध्ययन को समाविष्ट किया। इस सम्पूर्ण विषय वस्तु के साथ जर्मनी में आर्थिक भूगोल तथा हाइट बैंक व स्मिथ ने वाणिज्य भूगोल को विकसित किया। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम दोहन पर बल दिया गया।

संसाधन भूगोल का स्वतन्त्र शाखा के रूप में उद्भव सन् 1953 में जिम्मरमेन (E-W-Zimmerman) की पुस्तक 'विश्व के संसाधन एवं उद्योग (World Resources and Industries) के प्रकाशन के साथ हुआ। इस पुस्तक में संसाधनों की पृथक् व्याख्या करके उनका उद्योगों से पारस्परिक सम्बन्धों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया था। प्रारम्भ में जिम्मरमेन का प्रभाव केवल पश्चिमी देशों तक ही सीमित रहा क्योंकि उस समय अर्थशास्त्र अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में थी जिससे भूगोल अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकी क्योंकि तत्कालीन अर्थशास्त्रियों को अपने विषय के अध्ययन में भूगोल के योगदान पर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। धीरे–धीरे मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गई तथा संसाधन भूगोल का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। इस प्रकार अन्य विज्ञानों की सहायता से संसाधन भूगोल की विषय वस्तु को निर्धारित कर मनुष्य के सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाकलापों तथा संसाधन उपयोगिता के अध्ययन को संसाधन भूगोल में सम्मिलित किया गया।

संसाधन भूगोल में पृथक् शाखा के रूप में आर्थिक क्रियाओं में आने वाली क्षेत्रीय भिन्नताओं का मूल्यांकन करके संसाधन वितरण, उपयोगिता तथा उनके संरक्षण के पक्षों का अध्ययन किया जाने लगा। मानवीय क्रियायें अपने प्राकृतिक वातावरण द्वारा नियन्त्रित होती हैं। यदि मनुष्य पर्यावरण की सहन सीमा से बाहर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता है तो संसाधन संकट उत्पन्न हो जाता है। वर्तमान समय में संसाधन भूगोल में मानवीय क्रियाओं तथा प्राकृतिक पर्यावरण के इन पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाने लगाा है। इस प्रकार संसाधन भूगोल के अध्ययन का मुख्य बिन्दु मानव संसाधन है क्योंकि वह प्रकृति में विद्यमान पदार्थो का स्वरूप बदलकर उससे विभिन्न रूपों में उपयोगिता ग्रहण करता है। अतः स्पष्ट है कि वर्तमान में संसाधन भूगोल की एक प्रमुख शाखा के रूप में स्थापित हो चुकी है जिसे विभिन्न प्राकृतिक एवं मानव विज्ञानों से अन्तर्सम्बन्धित होते हुए भी पृथक् विषय के रूप में अध्ययन किया जाता है।

3.5संसाधन भूगोल का विषय क्षेत्र(Scope of Resource Geography)

भूगोल की विभिन्न शाखाओं की तरह ही संसाधन भूगोल का भी एक निश्चित विषय क्षेत्र है, जिसमें हम पृथ्वी तल पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का मानव द्वारा उपयोग प्रमुख विषय है। प्रकृति के सम्पूर्ण संसाधनों के उद्भव, वितरण, उपयोग तथा संरक्षण सम्बन्धी विधियों का अध्ययन संसाधन भूगोल में किया जाता है। विश्व संसाधन परिदृश्य में मानव संसाधन की केन्द्रीय स्थिति है क्योंकि वह प्रकृति में विद्यमान विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की खोज कर उनका वितरण अवस्थिति का निर्धारण करके उपयोग करता है। उपयोग की मात्रा उनकी उपलब्धता के सापेक्ष में कम होने पर वह उनके विकल्पों की खोज करता है। इस प्रकार मानव सभी संसाधनों में मुख्य संसाधन है। मानव पर्यावरण सम्बन्धों के दौर में मानव की महत्ता को स्वीकार कर संसाधन भूगोल की विषय वस्तु में सम्मिलित

किया गया। वर्तमान में संसाधन भूगोल के विषय क्षेत्र को निम्नांकित चार भागों में विभक्त किया गया है–

(1) प्राकृतिक संसाधनों का उद्‌भव तथा वितरण का अध्ययन।

(2) मानव संसाधन तथा वातावरण से सम्बन्धों का अध्ययन ।

(3) संसाधनों के उपयोग का अध्ययन ।

(4) संसाधन प्रबन्धन एवं नियोजन का अध्ययन ।

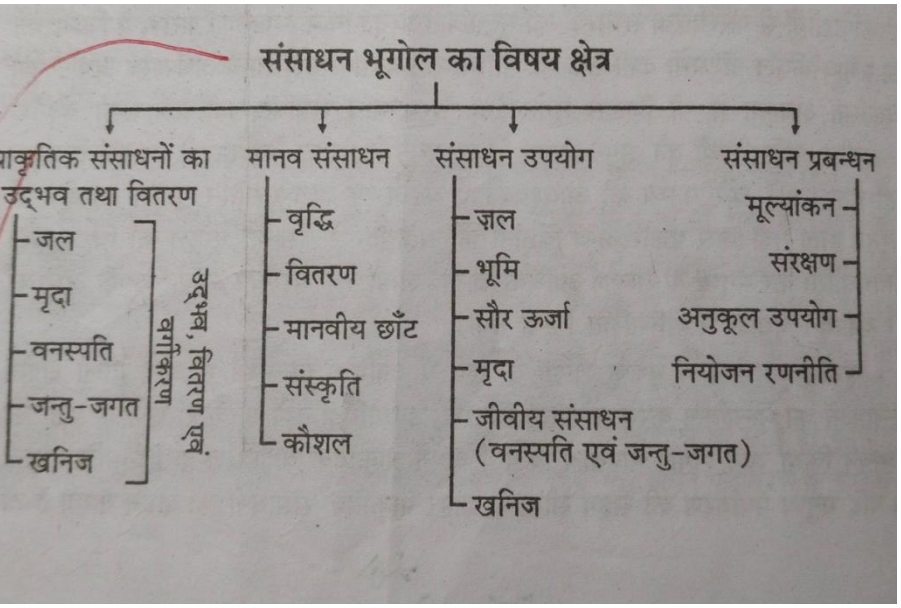

3.3.1. प्राकृतिक संसाधनों का उद्‌भव तथा वितरण

संसाधन भूगोल की प्रारम्भिक विषय वस्तु में संसाधनों की उत्पत्ति तथा वितरण को सम्मिलित किया गया था। इनकी उत्पत्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन कर मात्रा का पता लगाया जाता है जिसके आधार पर उनका उपयोग निर्धारित हो सके। संसाधन भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित प्राकृतिक संसाधन निम्नांकित हैं–

(i) जल संसाधनWater Resources जल संसाधन का वितरण पृथ्वी पर महासागरो के अतिरिक्त नदियों, झीलों, तालाबों, भूमिगत तथा हिम आवरण व हिम टोपियों **(**Ice Caps**)** के रूप में मिलता है।

(ii) भूमि एवं मृदा संसाधन (Land and Soil Resources) भूपर्पटी का ऊपरी आवरण भूमि

कहलाता है जिससे मृदा का निर्माण होता है। मृदा संसाधन एक आधारभूत संसाधन है जिस पर जैवीय संसाधनों (वनस्पति एवं जीवजगत) का अस्तित्व निर्भर करता है।

(iii) खनिज संसाधन (Mineral Resources) खनिज संसाधनों को निम्न तीन भाग में विभक्त कर सकते हैं–

- **ऊर्जा संसाधन खनिज –** कोयला, पेट्रोलियम प्राकृतिक गैस तथा आणविक खनिज (यूरेनियम, थोरियम)।
- **धात्विक खनिज–** लोहा, ताँबा, जस्ता, सीसा, मैंगनीज, चाँदी, सोना, प्लेटीनम, मॉलिब्डेनम आदि ।
- **अधात्विक खनिज–** अभ्रक, जिप्सम, गंधक, पारा आदि।

(iv) जीवीय संसाधन Biotic Resources

इनको निम्नांकित दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

- **वनस्पति संसाधन –** वन, झाड़ियाँ, घास क्षेत्र आदि ।
- **जन्तु संसाधन –** दूध व माँस देने वाले पशु, भार ढोने वाले पशु आदि एवम मछलियों को भी इसी वर्ग में रखते हैं जो लोगों के लिए एक प्रमुख खाद्य संसाधन है।

(अ) अन्य संसाधन (Other Resources) अन्य संसाधनों में पवन तथा सौर ऊर्जा को भी सम्मिलित करते हैं क्योंकि ऊर्जा संकट के इस दौर में पवन एवं सौर ऊर्जा भविष्य के प्रमुख वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में विकसित हो रहे हैं।

3.3.2. मानव संसाधन तथा वातावरण से सम्बन्ध

मानव संसाधनों में किसी प्रदेश की जनसंख्या के वितरण, संसाधनों की तुलना में उसका तथा इसके गुणात्मक पक्षों (शारीरिक शक्ति, मानसिक क्षमता तथा स्वास्थ्य आदि) का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के अनुसार ही उसका आर्थिक विकास होगा इसका संयुक्त अध्ययन प्रमुख है। मानव संस्कृति के प्रतिरूप को भी एक संसाधन माना गया है। किसी प्रदेश व राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान, फ्रांस आदि इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। संस्कृति के अतिरिक्त लोगों का सामाजिक संगठन भी महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि इसके आधार पर ही संसाधनों के उपयोग का दृष्टिकोण बनता है। समाजवाद **(Socialism),** पूंजीवाद **(Capitalism)**, साम्राज्यवाद **(Imperialism)**, उपनिवेशवाद **(Colonialism)**, साम्यवाद **(Communalism)** तथा जनतन्त्र **(Democracy)** आदि सामाजिक राजनीतिक संगठनों का प्रभाव किसी प्रदेश के संसाधन दोहन तथा आर्थिक विकास पर पड़ता है। सामाजिक दृष्टिकोण संसाधन दोहन की दिशा निर्धारित करते हुए मानव एवं पर्यावरण के सम्बन्धों को भी प्रभावित करते हैं। यूरोप में जुडो क्रिश्चियन धार्मिक परम्परा का मानना था कि मनुष्य पर्यावरण के सभी जीवों से श्रेष्ठ है **(Man is superior to nature and all other creatures)**। इस विचारधारा से मानवीय कौशल एवं क्षमता को प्रोत्साहित करके प्रकृति को अधिकतम शोषण द्वारा नियन्त्रित करने पर बल दिया गया फलस्वरूप अनेक पर्यावरणीय समस्यायें उद्‌भूत हुई। इस प्रकार मानव पर्यावरण सम्बन्धों को सांस्कृतिक, सामाजिक परम्पराएँ एवं संगठन प्रभावित करते हैं जिनका अध्ययन वर्तमान में संसाधन भूगोल में किया जा रहा है।

3.3.3. संसाधनों के उपयोग का अध्ययन

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास करके प्राकृतिक सम्पदा का उपयोग करता है तो यह संसाधनों की श्रेणी में आ जाती है। जहाँ विपुल प्राकृतिक सम्पदा उपलब्ध है लेकिन वहाँ मनुष्य किसी प्रकार की आर्थिक क्रियायें नहीं करता है तो उसे संसाधनों की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है मानव द्वारा उपयोग किये जा रहे संसाधनों का अध्ययन संसाधन भूगोल की मूल विषय वस्तु बन गई है। ये संसाधन निम्नांकित हैं–

(i)जल(Water) – जल पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीवजगत की प्राथमिक आवश्यकता है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का केवल लगभग 2 प्रतिशत जल ही मानवीय उपयोग योग्य है। शेष लवणीय जल महासागरों में पड़ा है तथा कुछ भाग स्थायी हिम के रूप में अण्टार्कटिका तथा ग्रीनलैण्ड जैसी हिमचादर के रूप में स्थित है। जल का उपयोग घरेलू कार्यों, कृषि फसलों को सिंचित करने में पशुओं के लिए, जल विद्युत उत्पादन, उद्योगों में, औद्योगिक अपशिष्टों के निस्तारण में, मत्स्य पालन तथा नौ परिवहन आदि में किया जाता है।

(ii)भूमि एवं मृदा(Land and Soil) भूमि एवं मृदा संसाधन मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। क्योंकि कृषि, पशुपालन, व्यापार तथा परिवहन आदि इन्हीं संसाधनों द्वारा सम्भव है। मानव की खाद्य आपूर्ति प्रत्यक्ष (शाकाहारी भोजन) एवं अप्रत्यक्ष (माँस प्रदान करने वाले जानवर वनस्पति पर निर्भर करते हैं) रूप से इन्हीं संसाधनों पर निर्भर करती है। मनुष्य ने भूमि संसाधन का विकास करके कृषि विविधता एवं उत्पादकता में वृद्धि की है। भूमि के उपयुक्त उपयोग हेतु मृदाओं के अनुसार फसलों का चुनाव करना, भूमि, उत्पादकता को बनाये रखने के लिए नवीन कृषि पद्धतियों का विकास, वन एवं चारण भूमि का उचित प्रबन्धन तथा मृदा संरक्षण आवश्यक तथ्य हैं।

(iii)वनस्पति(Vegetation)वनस्पति में वन (Forest), घास स्थल (Grass Land),झाड़ियाँ (Shrubs), तृण (Herbs) तथा लाइकेन (Lichen) आदि को सम्मिलित करते हैं। इनसे मानव को कन्दमूल, फल आदि भोज्य पदार्थ इमारती लकड़ी, औद्योगिक कच्चे माल आदि प्राप्त करता है। वनस्पति क्षेत्रों के रूप में पशुओं के लिए वासस्थल उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार वनस्पति मानव तथा पशुओं दोनों के लिए विविध रूपों में उपयोगी है।

(iv)जीवजन्तु (Animals)—मानव का पशुओं से प्रारम्भ से ही गहरा सम्बन्ध रहा है। मनुष्य संस्कृति विकास के प्रारम्भिक समय में पशुओं का आखेट कर अपना भरण–पोषण करता था। संस्कृति विकास के साथ मानव तथा जीव–जन्तुओं के मध्य सम्बन्धों का स्वरूप बदला जिसके अन्तर्गत मानव ने पशुओं का शिकार करने के बजाय उनको पालतू बनाने लगा. जिससे दूध, मांस आदि खाद्य पदार्थ प्राप्त होने लगे। वर्तमान में मछली उत्पादन से भी बड़ी मात्रा में खाद्य आपूर्ति हो रही है। पशुओं से खाद्य वस्तुओं के अतिरिक्त अनेक औद्योगिक माल (रेशे, खालें, सींग व हड्डियाँ) प्राप्त हो रहे हैं। कृषि कार्यों में भार सहयोग के अतिरिक्ति पशुओं का उपयोग सुरक्षा, सौन्दर्य तथा मनोरंजन में भी होता है।

(v)खनिज (Minerals)– पृथ्वी पर विद्यमान खनिज सम्पदा वर्तमान विकास का मूल आधार रही है। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में प्राचीन काल से भी इनका प्रयोग होता आया है। लेकिन आधुनिक युग में ऊर्जा खनिज संसाधनों तथा धात्विक व अधात्विक खनिज संसाधनों के उपयोग के बिना विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है।

(vi)पवन एवं सौर ऊर्जा(Wind and Solar Energy) — पवन एवं सौर ऊर्जा वर्तमान युग में ऊर्जा के महत्त्वपूर्ण एवं दीर्घकालिक उपयोग योग्य संसाधन माने गये हैं। सौर ऊर्जा द्वारा पृथ्वी तल के अन्य संसाधन जल, वनस्पति, जन्तु तथा मानव संसाधन शक्ति प्राप्त करते हैं। वायुमण्डल में विद्यमान

जलवाष्प एवं आर्द्रता पवन द्वारा ही वितरित होती है। इसी के फलस्वरूप वर्षा की सम्भावना बनती है जिसके उपरान्त पृथ्वी तल पर जीवों का अस्तित्व है। अतः ये दोनों ही बहुउपयोगी संसाधन हैं।

3.6 संसाधन भूगोल के अध्ययन के उपागम(Approaches to the Study of Resource Geography)

भूगोल की विभिन्न शाखाओं की तरह संसाधन भूगोल के अध्ययन की भी विभिन्न विधियां (उपागम) है। जो निम्नलिखित हैं–

(1)क्रमबद्ध अध्ययन(Systematic Study)–

इस विधि द्वारा संसाधनों को अलग– अलग अध्यायों में विभक्त करके अध्ययन करते हैं, उदाहरणार्थ कृषि फसलों का अध्ययन, गेहूं, चावल, मक्का आदि पृथक् अध्यायों मेंखनिज संसाधनों का लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, तांबा, सोना, चाँदी आदि अध्यायों में, शक्ति संसाधनों का अध्ययन कोयला पेट्रोलियम, परमाणु ऊर्जा, जलविद्युत आदि अध्यायों में विभक्त कर किया जाता है। विभिन्न अध्यायों या प्रकरणों में विभाजित कर अध्ययन करने के कारण इसे प्रकरणबद्ध उपागम **(Topical Approach)** भी कहते हैं। विश्व की विभिन्न राजनीतिक इकाइयों (देशों) की सीमाओं में संसाधनों के उत्पादन तथा उपयोगों का अध्ययन क्रमबद्ध व प्रादेशिक दोनों विधियों से किया जा सकता है।

(2) प्रादेशिक अध्ययन(Regional Study) प्रादेशिक उपागम द्वारा किसी प्रदेश को अध्ययन की एक इकाई मानकर उसके संसाधनों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत को संसाधन अध्ययन की इकाई मानने पर उसमें खनिज व शक्ति संसाधनों जैविक संसाधनों, कृषि, फसलों, जल एवं मृदा संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा जनसंख्या का क्रमबद्ध (प्रकरणात्मक) अध्ययन किया जायेगा।

प्रादेशिक उपागम द्वारा विश्व कृषि का अध्ययन करने पर विभिन्न फसलों को प्रकरणबद्ध करके एक–एक फसल का प्रदेशों के उत्पादन क्रमानुसार विवरण प्रस्तुत करना होगा। प्रादेशिक अध्ययन निम्नलिखित रूपों में होता है.

(i)आकृतिक प्रादेशिक अध्ययन(Fromal Regional Study)–

इस विधि में सर्वत्र समान लक्षणों वाले प्रदेश को एक इकाई माना जाता है जिसके क्षेत्रफल में प्राकृतिक लक्षणों की समरूपता मिलती है। हिमालय पर्वतीय प्रदेश, गंगा का डेल्टाई प्रदेश, स्टेपी प्रदेश आदि इसी प्रकार के प्रदेश हैं। दक्कन के पठार को एक प्रदेश मानकर उसके संसाधन भूगोल का अध्ययन कोयले के उत्पादन खनिजों में मैगनीज, बॉक्साइट, लोहा के उत्पादन व उपयोग वन संसाधन, मृदा संसाधन में कपास एवं गन्ना उत्पादन, जनसंख्या वितरण, निर्माण उद्योगों तथा परिवहन जाल आदि का संसाधन उपयोग की दृष्टि से अध्ययन विभिन्न अध्यायों के अन्तर्गत किया जाता है।

(ii)जातीय प्रादेशिक अध्ययन (Generic Regional Study)

पृथ्वी पर एक समान भौतिक समरूपता रखने वाले प्रदेशों को जातीय प्रदेश कहते हैं। जैसे मानसूनी प्रदेश, भूमध्यसागरीय प्रदेश, उष्णकटिबन्धीय वर्षा प्रचुर वन प्रदेश, शीतोष्ण घास के प्रदेश आदि। संसाधन भूगोल का इस उपागम द्वारा अध्ययन करने पर किसी एक संसाधन खनिज कृषि अथवा उद्योग का उक्त प्रदेश को समरूपता से सम्बद्धता के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता है जैसे मानसूनी प्रदेश एक ऐसा जातीय प्रदेश है जहाँ चावल की कृषि के लिए मृदा, जलवायु तथा मानव

संसाधन सर्वाधिक उपयुक्त है। जबकि भूमध्य सागरीय प्रदेश में रसदार फलों की प्रधानता है।

(iii)कार्यात्मक प्रादेशिक अध्ययन(Functional Regional Study)

इस उपागम द्वारा ऐसे क्षेत्रों को एक प्रदेश माना जाता है जिसके सम्पूर्ण क्षेत्र में एक समान संसाधन पर्यावरण (उपलब्धता एवं उपयोग) पाया जाता है। यहाँ सर्वत्र एक समान कार्य अथवा संगठन की समानता होती है जो विशिष्ट गत्यात्मक कार्य (परिवहन व यातायात) द्वारा परस्पर सम्बन्धित होती है। पशुचारण प्रदेश, कृषि प्रदेश, निर्माण उद्योग प्रदेश तथा भूमि उपयोग प्रदेश ऐसे ही कार्यात्मक प्रदेश हैं। निर्माण उद्योग प्रदेशों में चीन के दक्षिणी मंचूरिया(अशांन),उत्तरी चीन (टिएंटिसिन) यांग्टीसी घाटी (वुहान) संयुक्त राज्य अमेरिका के पिटसबर्ग, यंगस्टाऊन तथा शिकागो क्षेत्र, जापान के उत्तरी क्यूशू, ओसाका, टोकियो, योकोहामा तथा होकैडो, रूस के मास्को तूला, कुजबास फ्रांस का लॉरेन तथा जर्मनी का रूर क्षेत्र लोहा इस्पात तथा मशीनों के निर्माण के प्रदेश हैं। इसी प्रकार भूमध्यसागरीय समीपवर्ती क्षेत्र, कैलिर्फोनिया घाटी **(USA)** दक्षिणी अमेरिका में मध्य चिली, अफ्रीका के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में केप प्रान्त तथा दक्षिणी पश्चिमी आस्ट्रेलिया व उत्तरी न्यूजीलैण्ड भूमध्यसागरीय कृषि वाले प्रदेश हैं।

(iv)विशिष्ट प्रादेशिक अध्ययन (Specific Regional Study)–

इसमें ऐसे भूभागों को एक प्रदेश माना जाता है जिनके समस्त क्षेत्र में भौतिक तत्त्वों के साथ मानवीय क्रियाकलापों (आर्थिक परिवेश) में भी समरूपता होती है। ये प्रदेश अपने आकार, संरचना तथा विशिष्ट आर्थिक क्रियाओं के द्वारा निर्धारित होते हैं। भारत की दामोदर घाटी, जर्मनी की रूर बेसिन इस क्रम के प्रदेश हैं।

3.7 संसाधन भूगोल का महत्त्व (Significance of Resource Geography)

वर्तमान युग में तीव्र गति से हो रहे आर्थिक विकास के दौर में संसाधन भूगोल का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। इसके अध्ययन बिना आर्थिक तन्त्र को चलना असम्भव सा प्रतीत हो रहा है। विश्व के विभिन्न देशों की आर्थिक दशा में हो रहे परिवर्तनों के बारे में जानकारी वहाँ की संसाधन उपलब्धता अथवा कमी के अध्ययन से हो सकती है। आर्थिक समस्याओं की जानकारी के लिए संसाधनों का भू–आर्थिक दृष्टिकोण **(Geoeconomic Aspect)** द्वारा अध्ययन किया जाना आवश्यक है। प्रत्येक देश की बदलती अर्थव्यवस्था की औद्योगिक उत्पादों तथा कृषि की स्थिति के अनुसार ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तय होते हैं। कृषि पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य रखता है। कई बार खनिज सम्पन्न क्षेत्र सामरिक दृष्टि से देश में खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों के भण्डारों के होने से वह अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश मे विवाद का केन्द्र बन जाते हैं। ग्रीनलैण्ड द्वीप में सामरिक खनिजों की अधिकता के कारण उस पर संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस आधिपत्य रखना चाहते हैं। इसी प्रकार कैस्पियन सागर के तेल क्षेत्रों पर रूस, ईरान, अजरबेजान, कजाकिस्तान तथा तुर्कमेनिस्तान का अधिकार है लेकिन दक्षिणी पश्चिमी एशिया के पेट्रोलियम भण्डारों की तरह ही यहाँ भी पूँजीवादी एवं साम्यवादी शक्तियों के मध्य विवादित स्थल, भूराजनीति का स्थल बनता जा रहा हैं।' भारत जैसे अनेक बड़े देशो को खनिज तेल की प्राप्ति के लिए कुवैत एवं बहरीन जैसे छोटे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन सभी मुद्दों का अध्ययन संसाधन भूगोल में मिलता है। संसाधन भूगोल का अध्ययन निम्नलिखित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं ं।

(i)संसाधनों की माँग एवं पूर्ति का निर्धारण–

आज किसी भी देश में बढ़ती जनसंख्या की माँगों के लिए विभिन्न संसाधनों की आपूर्ति किस प्रकार की जाय ताकि इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सम्भव हो सके तथा मनुष्य का जीवन स्तर ऊँचा हो सके। वर्तमान में बढ़ती हुई जनसंख्या के दौर में संसाधनों की कमी होना स्वाभाविक है जबकि विश्व की जनसंख्य 2001 में 613.4 करोड़ तथा 2011 में 700 करोड़ हो चुकी है। इस जनसंख्या का दबाव संसाधनों पर पड़ने से वहाँ की पारिस्थितिकी तन्त्र को भी खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन सभी स्थितियों के समाधान संसाधन भूगोल युक्तिसंगत प्रस्तुत करता है।

(ii)प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन–

संसाधन भूगोल का अध्ययन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि किस प्रकार हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन एवं नियोजन करें कि राष्ट्रीय दृष्टि से उनकी पोषणीयता बनी रहे तथा भावी पीढ़ियों को संसाधन संकट या पारिस्थितिकीय संकट का सामना नहीं करना पड़े। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं संरक्षण की विधियाँ मनुष्य के विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करती है। इन पर राजनीतिक नीतियों का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए संसाधन भूगोल का प्रत्येक सभ्य एवं सामाजिक विशेषज्ञोंके समान ही राजनीतिज्ञों एवं नियोजन करने वाले अर्थशास्त्रियों के लिए भी महत्वपूर्ण है। आर्थिक तन्त्र का निर्माण करने वाले लोगों के लिए भी संसाधन भूगोल का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि आर्थिक प्रगति के लिए वे पारिस्थितिकीय तन्त्र में असन्तुलन उत्पन्न कर देते हैं।

संसाधनों का उत्पादन वास्तविक रूप मे संसाधन भूगोल से ही मिलता है। विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिए आवश्यक कच्चे माल की जानकारी संसाधन भूगोल द्वारा ही प्राप्त होती है। विभिन्न कच्चे माल के स्रोत कहाँ हैं। उनकी औद्योगिक उपक्रम तक आने में परिवहन लागत कितनी होगी तथा उसके उत्पाद का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कितनी दूरी पर होगा। इन सभी प्रश्नों के उत्तर संसाधन भूगोल में मिलते हैं। वर्तमान संसाधन संकट के दौर में हमें विभिन्न संसाधनों के अवनयन की पर्याप्त जानकारी मिल जाती है जिस आधार पर हम उक्त संसाधन की रणनीति बनाते हैं जैसे विश्व में हो रहे वनोन्मूलन, मृदा अपरदन, जैव विविधता ह्रास, ऊर्जा संकट, जल संकट, जलवायु परिवर्तन आदि की पर्याप्त जानकारी मिल रही है। जिससे सभी अवगत होकर इनके संरक्षण एवं सन्तुलन के प्रति अपना दृष्टिकोण बनाते हैं। इस प्रकार वर्तमान आर्थिक एवं प्रौद्योगिकी युग में संसाधन भूगोल का अध्ययन महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है।

3.8 सारांश

वर्तमान युग में तीव्रगति से हो रहे विकास के दौरान संसाधन भूगोल का महत्व बढ़ता जा रहा है। संसाधनों की वास्तविक जानकारी संसाधन उपागमों के माध्यम से मिलती है। प्रदेशविशेष के आधार पर संसाधनों का विभाजन कर प्रदेशों का नाम दिया जाता है।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

प्रकरणबद्ध उपागम**(Tropical Approach)** क्रमबद्ध अध्ययन को ही प्रकरणबद्ध उपागम कहते हैं,

क्योंकि विभिन्न प्रकरणों में विभाजित कर अध्ययन करते है।

3.10 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–

1– संसाधन भूगोल के उपागमों के बारे में विस्तार से बताइये।

2– संसाधन भूगोल के विषय क्षेत्र का सविस्तारवर्णन कीजिए

3 – संसाधन भूगोल के विकास की विवेचना कीजिए

लधु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1– संसाधन भूगोल के स्वरूप को समझाइये।

प्रश्न–2– संसाधन भूगोल के विकास क्रम के बारे में बताइये।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्रश्न–1 भारत की दामोदर घाटी निम्नलिखित में से कौन से प्रदेषिक अध्ययन में आती है।

(अ) कार्यात्मक प्रादेशिक अध्ययन में **(ब)** क्रमबद्ध अध्ययन

(स)विशिष्टप्रादेशिक अध्ययन **(द)**प्रादेशिक अध्ययन

प्रश्न–2 जर्मनी का रूर क्षेत्र कौन से प्रादेशिक अध्ययन में आता है?

(अ) कार्यात्मक प्रादेशिक अध्ययन **(ब)** जातीय प्रादेशिक अध्ययन

(स) आकृतिक प्रादेशिक अध्ययन **(द)**विशिष्टप्रादेशिक अध्ययन

प्रश्न–3 भूमध्य सागरीय रसदार फलों का अध्ययन किया जाएगा?

(अ) जातीय प्रादेशिक अध्ययन में **(ब)** आकृतिक प्रादेशिक

(स)विशिष्टप्रादेशिक **(द)** उपरोक्त में से कोई नहीं

सन्दर्भ ग्रच सूची–

1. डॉ बी.सी जाट "संसाधन भूगोल" मलिक बुक कम्पनी जयपुर
2. Dr. Alaka Gautam: Resourcer Geography.
3. प्रो. जगदीश सिहं "संसाधन भूगोल" ज्ञानादेय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई–4 संसाधन वर्गीकरण – प्राकृतिक संसाधन तथा मानव संसाधन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3. संसाधनों का वर्गीकरण

i. उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

ii. उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

iii. उद्देश्य आधारित वर्गीकरण

iv. अधिकार या स्वामित्व के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावलीः–

4.6. बोध प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना

संसाधन भूगोल में पृथ्वी के प्राकृतिक तथा मानव संसाधनों के भौगोलिक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है, जिनमें उनकी उत्पत्ति विवरण, विशेषताएँ तथा भविष्य में उपलब्धता आदि प्रमुख हैं। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं तत्वों से करता है, जिन्हें संसाधन नाम दिया गया हैं। इस इकाई में पृथ्वी तल पर विविध परिवेशों में मानव के आर्थिक क्रियाकलाप संसाधनों से सम्बन्धित रहे हैं का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वं ही मानव संसाधन का रूप होता है जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवनयापन करते हुए सांस्कृतिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के समय ज्ञान की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही

है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में भी परिवर्तन होता है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है।समय के साथ संसाधनों की कमी से प्रकृति भी परिवर्तनशील रहती है। कोयला समय के साथ विभिन्न स्वरूपों मे पीट, लिग्नाइट, बिटुमिन्स,एन्थ्रेसाइट में बदलता है। इसी प्रकार लौह अयस्क, ताँबा बॉक्सइट आदि खनिज संसाधन धात्विक सम्पन्नता के आधार पर भिन्न प्रकृति रखते हैं। स्थिति का भी संसाधनों की प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है। भूमध्यरेखीय प्रदेश की जैविक सम्पदा शीतोष्ण कटिबन्धीय या ध्रुवीय प्रदेशों से भिन्न प्रकृति की होती है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य जो विभिन्न वर्गों के संसाधन हैं, परिवर्तनशील रहते हुए अपनी प्रकृति भी बदलते हैं जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ ही मानवीय क्रियाकलाप भी उत्तरदायी हैं।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई मे संकल्पना एवम वर्गीकरण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। संसाधन की संकलपना, वर्गीकरण के उदेश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) संसाधनों की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) शिक्षार्थी विभिन्न संसाधनो के प्रकारो व उपयोग, संरक्षण के विषय मे पहुँच बना सकेंगे ।

(स) संसाधनों को प्राकृतिक संसाधन एवं मानव संसाधन के माध्यम से स्पष्ट करना।

(द) विद्यार्थियों को संसाधनों के वर्गीकरण के बारे मे अवगत करना।

(य) संसाधनो के उपयोग, पर्यावरण से अन्तर्सम्बन्ध. संसाधनों के संरक्षण के बारे में समझाना एवं संसाधनों की सारगर्भिता को बढाना।

4.3. संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources)

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के संसाधन पाये जाते हैं, जिनके निर्माण का मूल प्रकृति है तथा ये सभी मानवीय प्रभाव से नवीन स्वरूप में स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति मानव के लिए संसाधनों का निर्माण करती है जिनको मानव अपने प्रयासों, इच्छाओं और तकनीकी दक्षता से अपने उपयोग योग्य बनाता है लेकिन इसका वास्तविक भौतिक आधार तो प्रकृति प्रदान करती है। मनुष्य अपने वातावरण से संसाधनों का दोहन करके आर्थिक तन्त्र को मजबूत करता है। वह भौतिक वातावरण को परिवर्तित करता रहता है जो उसकी रुचि, कौशल तथा शक्तियों पर निर्भर करता है। लेकिन मानव द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन की एक सीमा होती है जिसके बाहर जाने पर संसाधनों के सृजन के स्थान पर ह्रास प्रारम्भ हो जाता है।

मानव ने संसाधनों को (प्रकृति का उपहार) इनका स्वरूप बदल कर अत्यधिक उपयोगी बनाया है। प्राकृतिक वातावरण के साथ समायोजन कर मनुष्य ने अनेक स्थानों पर प्रगति की है तथा

मानवीय उपयोग के क्षेत्र (Human use regions) विकसित किये हैं। इस क्रम में पृथ्वी पर भूमध्यरेखीय प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति का दोहन किया गया, पश्चिमी यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेन्टीना, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में पशुचारण किया गया। इसी प्रकार खनन कार्य तथा मत्स्य पालन भी विकसित किया गया। स्पष्ट है कि प्रकृति में विद्यामन विविध लक्षणों वाले प्राकृतिक परिवेशों के अनुसार विभिन्न प्रकार के संसाधनों का दोहन प्रारम्भ हुआ जिससे उनकी प्रकृति निरन्तर बदलती रही। संसाधनों की बदलती प्रकृति तथा मानवीय क्रियाओं में विविधता के कारण संसाधनों में विविधता आ गई। अतः इन्हें स्वतंन्त्र रूप में पहचानने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता महसूस की गई है।

मानव द्वारा प्रकृति में विद्यमान संसाधनों को अपने उपयोग में लेकर उद्देश्य पूर्ति को विकास का आधार माना जाता है। मनुष्य इनका दोहन प्राचीनकाल से करता रहा है। धीरे–धीरे इनके तीव्र दोहन में संधृत या पोषणीय (Sustainable) विकास की आवश्यकता महसूस की जाने लगी तथा वर्तमान समय में इनके आनुपातिक उपयोग हेतु इन्हें वर्गीकृत कर योजना बनाई जाने लगी है। संसाधन अनेक प्रकार के होते हैं जिनके वर्गीकरण के आधार भी भिन्न–भिन्न हैं। स्वामित्व की दृष्टि से संसाधन तीन प्रकार के होते हैं, जो क्रमशः व्यक्तिगत, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हैं। धरातल पर उपलब्धता की दृष्टि से चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम–सर्वत्र उपलब्ध संसाधन, जैसे–वायु, द्वितीय–सामान्य रूप से उपलब्ध संसाधन, जैसे–कृषि भूमि, मृदा चारागाह भूमि आदि, तृतीय–सीमित उपलब्धता वाले संसाधन, जैसे–यूरेनियम, सोना आदि, चतुर्थ–संकेन्द्रित संसाधन–जो संसाधन केवल कुछ ही स्थानों पर मिलते हैं, जैसे–केरल तट पर थोरियम आदि। उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि किसी भी संसाधन को किस वर्ग विशेष में रखा जाए, यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि आप उसे किस दृष्टि से देखते हैं। विभिन्न सर्वमान्य आधारों पर संसाधनों का वर्गीकरण निम्न रूपों में किया जा सकता है–

i. उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

(1) नवीनीकरण या नव्यकरणीय संसाधन (Renewable Resources)

(2) अनवीनीकरण या अनव्यकरणीय संसाधन (Non Renewable Resources)

(3) चक्रीय संसाधन (Recyclable Resources)

ii. उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

(1) जैविक संसाधन (Biotic Resources)

(2) अजैविक संसाधन (Abiotic Resources)

iii. उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

(1) ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

(2) कच्चा माल (Raw material)

(3) खाद्य पदार्थ (Food stuff)

4.3.1.उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

किसी भी संसाधन के उपयोग की एक अवधि होती है। कुछ संसाधन न्यून अवधि के अन्दर समाप्त हो जाते हैं, जबकि कुछ का सतत उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपयोग की निरन्तरता या सततता के आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1)नवीनीकरण या नव्यकरणीय संसाधन (Renewable Resources)

इस श्रेणी में वे सभी संसाधन आते हैं जिनको पुनः उत्पादित किया जा सकता है। इस हेतु भौतिक, यान्त्रिक तथा रासायनिक प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं अतः ये संसाधन असमाप्य होते हैं व इनकी जीवन धारणीय (Sustainble) पुनरावृत्ति सम्भव है। उदाहरणार्थ, वनों के क्षेत्र में काटे जाने के उपरान्त नये क्षेत्र में इन्हें पुनः उत्पादित किया जा सकता है। वन्य प्राणियों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है। इसके अन्य उदाहरण सौर ऊर्जा, पवन, जल, मृदा, कृषि उपजें तथा मानव संसाधन हैं।

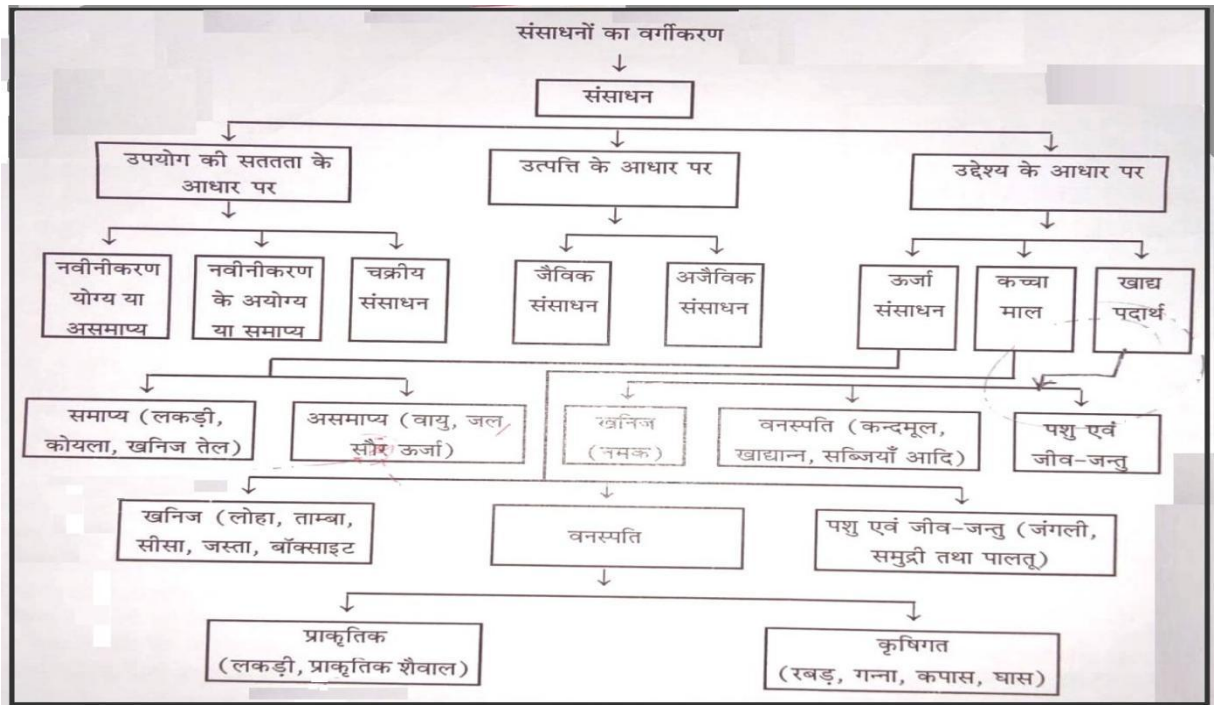

(2) अनव्यकरणीय संसाधन(Non-Renewable Resources)–

संसाधनों के सतत् उपयोग का श्रेणी में ऐसे संसाधन जिनका एक बार दोहन के उपरान्त उनकी पुनः पूर्ति (Restoration) संभव नहीं है। इनकी मात्रा सीमित रहती है तथा निर्माण अवधि भी लम्बी होती है। अतः इस श्रेणी में संसाधनों का दोहन तीव्र गति से करने पर ये समाप्त हो जाते हैं। भूगर्भ में खनिज संसाधन इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। कोयले का दोहन एक ही बार किया जा सकता है, जबकि इसके निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं। पेट्रोलियम, प्रकृतिक गैस, तांबा, बॉक्साइट, यूरेनियम, थोरियम आदि संसाधन भी अनव्यकरणीय या समाप्य हैं।

(3) चक्रीय संसाधन (Recyclable Resources)–

पृथ्वी पर कुछ ऐसे संसाधन पाये जाते हैं जिनका बार–बार प्रयोग किया जा सकता है, जल

संसाधन को विभिन्न समय में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार लोहा भी विभिन्न रूपों में उपयोग में आता है।

4.3.2. (ii) उत्पति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण

विभिन्न प्रकार के संसाधन अलग–अलग अवस्थाओं में उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है–प्रथम भौतिक या अजैविक तथा द्वितीय जैविक संसाधन। भौतिक तथा जैविक संसाधन परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं। स्वयं मानव एक जैविक संसाधन है जो पृथ्वी के स्थलीय स्वरूपों में परिवर्तन करते हुए क्रियाशील रहता है। इसी आधार पर मनुष्य ने सांस्कृतिक विकास किया है। इनके एक–दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित रहने पर भी अनेक भिन्नताएँ हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :–

(1) अजैविक संसाधन (Abiotic Resources)–

इस श्रेणी के अन्तर्गत अजैविक या अकार्बनिक संसाधन आते हैं जिनमें जीवन–क्रिया नहीं होती है तथा इनका नवीनीकरण सम्भव नहीं है। ये एक बार उपयोग में लेने के उपरान्त समाप्तप्राय हो जोते हैं। अतः इनके समाप्त संसाधनों की श्रेणी में होने के कारण पोषणीय या आनुपातिक दोहन ही अनिवार्य है। जल, जमीन तथा खनिज इसके उदाहरण हैं। अजैविक संसाधनों के वितरण में असमानता पायी जाती है। कुछ संसाधन, जैसे–लोहा, एल्युमिनियम आदि विस्तृत क्षेत्रों में वितरित हैं। जबकि सोना, चाँदी, आणविक खनिज सीमित क्षेत्रों में वितरित हैं। गिन्सबर्ग ने पृथ्वी तल पर स्थित धरातलीय स्वरूपों, शैलों, मृदाओं, खनिज सम्पदा, जल संसाधन आदि को भैतिक संसाधन माना है। ये सभी संसाधन प्रकृति प्रदत्त हैं जो पृथ्वी पर विभिन्न स्वरूपों में विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। मानवीय सभ्यता के अभ्युदय (Evolution) में इनका विभिन्न रूपों में उपयोग हुआ है। भौतिक संसाधनों को मानव ने अनेक रूपों में परिवर्तित किया है। यह परिवर्तन ऐसे स्थानों पर नहीं हों पाया है जहाँ मानव ने अनेक रूपों में परिवर्तित किया है। यह परिवर्तन ऐसे स्थानों पर नहीं हो पाया जहाँ मानव ने प्रकृति के साथ समायोजन कर लिया है। ऐसे ग्रीनलैण्ड एवं अण्टार्कटिका में हुआ है।

(2) जैविक संसाधन (Biotic Resources) –

जैव मण्डल में स्थित अनेक निश्चित जीवन–चक्र वाले संसाधन जैविक संसाधन कहलाते हैं। वन, वन्य प्रणाली, पशु, पक्षी, वनस्पति तथा अन्य छोटे तथा सूक्ष्म जीव जैव संसाधनों के उदाहरण हैं। जीवाश्मों के कायान्तरण के परिणामस्वरूप उन्पन्न होने के कारण कोयला तथा खनिजतेल को भी जैविक संसाधन ही कहते हैं। इनमें कुछ का नवीनीकरण हो सकता है, जैसे–वनस्पति वर्ग। जबकि कुछ नवीनीकरण के अयोग्य हैं, जैसे–खनिज तेल। इन संसाधनों को मानवीय क्रियाओं में प्रभावित किया है। ऐसे संसाधनों की मात्रा में वृद्धि या कमी भी की जा सकती है। पशुपालन, मत्स्यपालन, वृक्षारोपण आदि कार्यो से जैविक संसाधनों को बढ़ा सकते हैं जबकि वनोन्मूलन, संकटापन्न जीवों का शिकार करके कमी लायी जा सकती है। जैविक संसाधनो के दोहन में तकनीकी ज्ञान तथा उपयोग के ढंग का प्रभाव पड़ता है। ये चल साधन माने जाते हैं। जैविक संसाधनों के वितरण में भौगोलिक घटकों की प्रमुख भूमिका रहती है। उदाहरण के लिए उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु में सघन वनस्पति मिलती है जबकि टुण्ड्रा क्षेत्रों में इसका अभाव पाया जाता है।

जैविक संसाधनों में अजैविक संसाधनों की तुलना में अधिक विविधता मिलती है। लेकिन ये कम कठोर होते हैं। साथ ही इनका विकास शीघ्र हो सकता है जबकि भैतिक संसाधनों के विकास मे दीर्घ अवधि लगती है। भौतिक संसाधनों की मात्रा निश्चित होती है तथा इसे घटा–बढ़ा नहीं सकते, लेकिन जैविक संसाधनों की मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं। मनुष्य मृदा या जल का निर्माण नहीं कर

सकता जबकि वह वृक्षारोपण कर सकता है, जीवों की संख्या में भी वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार भौतिक एवं जैविक संसाधनों का आधार एक ही (पृथ्वी) होते हुए भी इनमें अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

4.3.3 iii.उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

प्रकृति में विभिन्न रूपों में वितरित संसाधनों का दोहन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्यों के आधार पर **वर्गीकरण** निम्नवत है।

(1)ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)–

ऊर्जा संसाधनों द्वारा शक्ति के साधनों का विकास किया जाता है। यातायात के साधनों के संचालन में, उद्योगों व अन्य यान्त्रिक कार्यों में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में ऊर्जा संसाधनों को किसी भी देश के विकास का मानक माना जाने लगा है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत 7032KG है जबकि भारत में मात्र 614 KGतथा नाइजीरिया में 721 KG है। आर्थिक विकास की दर ऊर्जा की उपलब्धता पर निर्भर करती है। ऊर्जा संसाधनों में समाप्य तथा असमाप्य दोनों ही प्रकृति के संसाधन पाये जाते हैं। समाप्य या नवीनीकरण के अयोग्य संसाधनों की श्रेणी में कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस आदि हैं। वन, जल विद्युत, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा तथा ज्वारीय ऊर्जा आदि को नवीकरणीय या असमाप्य ऊर्जा की श्रेणी में रखा गया है। ऊर्जा संसाधनों की बढ़ती महत्ता के कारण इनके जीवनधारणीय विकास की मूल भावना का विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास किया जाना अनिवार्य प्रतीत होता है।

(2)कच्चा माल(Raw material)

कच्चा माल औद्योगिक विकास का प्रमुख आधार हैं। ये निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैः–

(i)खनिज पदार्थ (Minerals)–

भूगर्भ से खोदकर निकाले गये पदार्थों को इस श्रेणी में रखते हैं। इनमें लौह अयस्क, अलौह धातुएँ, गंधक, नमक, चूना–पत्थर, चीका, बालू, इमारती पत्थर तथा अन्य मिश्रित धातुएँ समाहित हैं।

(ii) वनस्पति (Vegetation)–

प्राकृतिक वनस्पति से प्राप्त प्रमुख एवं गौण, उपजें इस श्रेणी में आते हैं। इनमें लकड़ी, रेशेदार उत्पाद, गोंद, रबर, तेल, बीज, छालें, कार्क, शैवाल तथा अनेक प्रकार के कृषि उत्पाद सम्मिलित हैं।

(iii) पशु (Animals)–

पशुओं को भी कच्चे माल की श्रेणी में रखते हैं। पशुओं से कच्चे माल के रूप में खालें, समूर, सींग, तेल, चर्बी, ऊन, बाल, रेशम तथा हड्डियाँ प्राप्त होती हैं। ये उत्पाद जंगली, सामूहिक तथा पालतू पशुओं से प्राप्त किये जाते हैं।

(iv)उत्पादित पदार्थ (Product Material)–

इसमें रेशे (कपास, सन, पटसन, हेम्स) बागानी रबर, तिलहन, बीज तथा इत्र निकलने वाले फूल आदि सम्मिलित हैं।

(3)खाद्य पदार्थ (Food stuff)–

मनुष्य प्राचीनकाल से खाद्य संग्राहक रहा है। खाद्य पदार्थ मुख्य रूप से तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त किए जाते हैंः–

(i)खनिज–

हमारे भोजन में अधिकांश चट्टानों से प्राप्त नमक समाहित है जो मुख्यतया खाद्य पदार्थों के रूप में प्रयुक्त होता है।

(ii)वनस्पति–

हम भोजन का अधिकांश भाग वनस्पति उत्पादों से प्राप्त करते हैं। वनस्पति उत्पादों में फल, कन्दमूल, पत्तियाँ एवं खुंबी (Mushroom) आदि प्रमुख हैं।

(iii)पशु एवं जीव–जन्तु–

पशुओं एवं जीव–जन्तुओं से प्रमुख तथा गौण उपजें प्राप्त करते हैं। मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मत्स्य व्यवसाय आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

4.3.4 अधिकार या स्वामित्व के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण(Classification of Resources on the basis of Possession)

इस आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में रखा गया हैः–

(1)अन्तर्राष्ट्रीय या सार्वभौमिक संसाधन (International or Global Resources)–सम्पूर्ण विश्व में मानव कल्याण के लिए उपयोगी वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। पृथ्वी का प्राकृतिक पर्यावरण इस प्रकार का विश्वव्यापी संसाधन है। पृथ्वी पर स्थित महासागर प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन है लेकिन इनका उपयोग कुछ सक्षम देश ही कर पाते हैं, जिनकी सागरीय स्थिति है। सूर्य के प्रकाश का उपयोग भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका आदि सभी देश कर सकते हैं जिनकी स्थिति सूर्य के प्रकाश की प्राप्ति में होती है। सर्वाधिक सूर्य का प्रकाश अयनवर्तीय क्षेत्रों (उष्णकटिबन्धी) में प्राप्त होता है।

2.राष्ट्रीय संसाधन (National Resources) –ग्लोब पर स्थित किसी भी देश की सीमाओं में विद्यमान सम्पदाओं को राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। लंकाशायर कोयला क्षेत्र इंग्लैण्ड का, पेन्सिलवानिया कोयला क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कालगुर्ली स्वर्ण खानें आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय संसाधन हैं।

(3)व्यक्तिगत संसाधन (Individual or Private Resources)–किसी व्यक्ति को निजी चल–अचल सम्पत्ति उसका व्यक्तिगत संसाधन कहलाते हैं। पारिवारिक सम्पत्ति, भूमि, भवन, नकद धनराशि, स्वास्थ्य, उत्तम चरित्र, ईमानदारी तथा मानसिक क्षमता एवं कौशल आदि व्यक्तिगत संसाधन है।

ओवेन द्वारा संसाधनों का वर्गीकरण(Classification of Resources by Owen)

ओवेन (Owen) महोदय ने सन् 1971 में प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण पारिस्थितिकीय सन्दर्भ में प्रस्तुत किया, जो निम्नलिखित है–

(1) **अक्षयशील या असमाप्य संसाधन** (Inexhaustible Resource)–इनमें सूर्य का प्रकाश, पवन तथा जल को सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग में दो उपवर्ग है– (1) अपरिवर्तनीय (Immutable Resources), जैसे– जल, (न) दुष्प्रयोजनीय (Misusable Resource), जैसे–जल।

(2) **क्षयशील** या समाप्त संसाधन (Exhaustible Resources)–इस वर्ग में जीवाश्म ईंधन

(Fossil Fuel) तथा खनिज पदार्थ प्रमुख हैं। इसके दो उपवर्ग है–

(i) **परिरक्षणीय** (Maintainable)–इस वर्ग में वन, वन्य जीव, मृदा को उर्वरता आदि सम्मिलित है।

(ii) अपरिक्षणीय (Non&Maintainble)– इसमें खनिजसंसाधन आते हैं।

सारिणी–4.1

ओ.एम. ओवेन के अनुसार संसाधनों का वर्गीकरण

संसाधन का प्रकार	**उदाहरण**
1. अक्षय शीलसंसाधन (Inexhaustible esources) (1) अपरिवर्तन (Immutable) (2) दुष्प्रयोजनीय (Immutable)	सूर्य, प्रकाश, वायु, जल जल जल
2. क्षयशील संसाधन (Exhaustible Resources) (1) परिरक्षणीय (maintainable) (अ) पुनर्नवीकरणीय (Renewable) (ब) अनवीकरणीय (Non&Renewable)	जीवाश्मीय ईधन, खनिज वन, वन्यजीव, मृदा की उर्वरता पादप, जन्तु मृदा की उर्वरता कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस
(ii) अपरिरक्षणीय (Non&Maintainable) (अ) पुनः प्रयोज्य (Reusable) (ब) अप्रयोज्य (Non&Reusable)	अधिकांश खनिज मूल्यवान पत्थर, हीरे–जवाहरात कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस

5.जिम्मरमैन द्वारा संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources by Zimmerman) जिम्मरमैन ने संसाधनों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया है :–

(1) नव्यकरणीयता के आधार पर (On the basis ofRenewability)

(2) प्राप्ति के आधार पर (On the basis of Availability)

(3) अन्य आधार पर (On the other basis) तत्त्वों या वस्तुओं के निर्माण में सहायक कारको के आधार पेर संसाधनों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं:–

सूर्य, प्रकाश, वायु, जल, जीवाश्मीय ईंधन, खनिज, वन, वन्यजीव, मृदा की उर्वरता, पादप, जन्तु अधिकांश खनिज मूल्यवान पत्थर, हीरे–जवाहरात कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस

(1) प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

(2) मानव संसाधन (Human Resources)

(1) प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)–

प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। नार्टन एस. जिन्नसबर्ग ने बताया कि, ''प्रकृति द्वारा स्वतन्त्र रूप से प्रदान किये गये पदार्थ जब मानवीय क्रियाओं से आवृत्त होते हैं तो उन्हें प्राकृतिक संसाधन कहते हैं।'' गाडी (Goudie A.2000) के अनुसार ''प्राकृतिक पर्यावरण के मानवीय उपयोग योग्य घटक प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं।'' भौतिक सन्दर्भ में जीवमण्डल तथा स्थलमण्डल में संसाधनों के प्राकृतिक वितरण, प्रकार तथा उनके उपयोग के प्रभावों के आधार पर इनको प्रकृति का निर्धारणकिया जाता है। इस आधार पर किसी देश की भौगोलिक स्थिति, आकार, धरातल, जलवायु, वनस्पति, मृदा, पवन, जल, पशु, खनिज, सूर्य का प्रकाश आदि तत्त्व प्राकृतिक संसाधन हैं। इनमें कुछ संसाधन संधूत या दीर्घ पोषणीय (Sustainable) हैं जो लम्बे समय तक उपलब्ध रहेंगे। जैसे–जल, पवन आदि जबकि कुछ संसाधन जैसे–कोयला, पेट्रोलियम जिनके सीमित भण्डार हैं–लम्बी अवधि तक उपलब्ध नहीं रहेंगे। प्राकृतिक संसाधनों के विषय में उनको प्रकृति एवं परिभाषा के विश्लेषण के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष स्पष्ट हुए

(i) प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक वातावरण के प्रमुख घटक हैं।

(ii) ये मनुष्य के लिए प्रकृति प्रदत्त हैं अर्थात् प्रकृति का उपहार हैं।

(iii) ये संसाधन प्रकृति में विना मानवीय अनुक्रिया के स्वयं निष्क्रिय रहते हैं लेकिन जब मनुष्य इन्हें उपयोग में लेता है तो ये सक्रिय रूप में आर्थिक विकास में सहयोग करते हैं।

(iv) इनकी प्रकृति भिन्न–भिन्न होती है, जिसमें कुछसमाप्य तथा कुछ असमाप्य या नव्यकरणीय होते हैं।

(v) प्राकृतिक संसाधनों में विविधता पायी जाती है।

(vi) ये मुख्यतः दो वर्गों जैविक तथा अजैविक रूपों में मिलते हैं।

(vii) ये सभी ज्ञात न होकर कुछ अज्ञात भी होते हैं।

प्रकृति का कोई भी तत्त्व तभी संसाधन बनता है जब वह मानवीय सेवा करता है। इस सन्दर्भ में 1933 में जिम्मरमैन ने यह तर्क दिया था कि, ''न तो पर्यावरण उसी रूप में और न ही उसके अंग संसाधन हैं, जब तक वह मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सक्षम न हो।'' प्राकृतिक संसाधनों की प्रकृति गतिशील है जो मानवीय ज्ञान एवं कौशल के विकास द्वारा परिवर्तित होते हैं तथा उनका विकसित रूप अधिक विस्तृत होकर बहुउपयोगी रूप में उपलब्ध होता है। प्राकृतिक संसाधनों के एकल तथा सामूहिक दशाओं के योग में ही जैविक समुदाय का अस्तित्व सम्भव है।

(2)मानव संसाधन (Human Resources)–

संस्कृति का निर्माता मानव स्वयं एक शक्तिशाली संसाधन है, जो प्राकृतिक तत्त्वों को अपने ज्ञान एवं कौशल के विकास के द्वारा संसाधन रूप में उपयोग करता है। यह संसाधनों का निर्माता एवं उपभोक्ता दोनोंहै, जो एक भौगोलिक कारक व संसाधन के रूप में सम्मिलित होकर कार्य करता है। मानव संसाधन में किसी इकाई क्षेत्र में रहने वाली मानव जनसंख्या, उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता, स्वास्थ्य, जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संगठन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी स्थिति जैसी विशेषताएँ सम्मिलित हैं। प्राकृतिक वातावरण में जब तक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है तब तक मानव संसाधन कोई समस्या का रूप नहीं लेता है,

लेकिन इनकी संख्या बढ़ने पर आवश्यकताओं की आपूर्ति घटने लगती है तथा स्वयं मानव संसाधन भी समस्या बन जाता है।मानव एक सक्रिय प्रणाली के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान संसाधनों एवं प्राकृतिक परिवेश का उपभोग करते हुए उसके साथ समायोजन (Adjustment) करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वह अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार प्रकृति प्रदत्त तत्त्वों में श्रेष्ठ का चयन करता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी तल को अनेक रूपों में परिवर्तित करता है। कृषि विकास के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाता है। नदी घाटियों पर बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का विकास करता है। एक ओर आर्थिक समृद्धि के लिए प्राकृतिक वनस्पति का विनाश करता है, वहीं दूसरी ओर इसके संरक्षण की सोच उत्पन्न कर वृक्षारोपण करता है।

संसाधनों के उपयोग की दृष्टि से मानव केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा निरन्तर प्राकृतिक परिवेश को परिवर्तित कर उसके अनुरूप अनुकूलन करता है। प्राकृतिक घटकों के रूपान्तरण की दर मनुष्य की बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर निर्भर करती है। मानव ने पृथ्वी पर अपने सांस्कृतिक अभ्युदय के साथ–साथ भू–भागों का उपयोग किया है। जहाँ सर्वप्रथम कृषि एवं पशुपालन का विकास किया तथा धीरे–धीरे मृदा के उपयोग, जल एवं खनिज संसाधनों के महत्त्व को पहचानकर भौगोलिक एवं आर्थिक समायोजन करके संसाधन उपयोग के तरीके सीखे। संसाधन उपयोग का प्रारम्भिक स्वरूप केवल आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित था लेकिन धीरे– धीरे इसका स्वरूप आर्थिक विकास ने ले लिया तथा मानव ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की जिसके फलस्वरूप उनकी कमी महसूस होने लगी तथा मानव को इसके संरक्षण की सोचनी पड़ी।

4.5 सारांश

मानव स्वयं संसाधन होने के साथ संसाधनों की प्रकृति बदल देता है। मानव अपने श्रम वं तकनीकी ज्ञान द्वारा किसी भी पदार्थ को मानव उपयोगी बनाकर संसाधन बना सकता है। संसाधन प्रकृति के सम्पूर्ण जैव जगत का आधार है। संसाधनों की उपलब्धता, समाज के सामाजिक आर्थिक समृद्धि का आधार है लेकिन संसाधनों के गलत उपयोग के कारण पर्यावरण संकट उत्पन्न हो रहे हैं। संसाधनों का अति दोहन मानवीय अवनति भी कर सकता है। इस इकाई का अध्ययन आपको संसाधनों की संकल्पना, संस्कृति संसाधनों के वर्गीकरण, मानव संसाधनों एवं प्राकृतिक संसाधनों को समझने में सहायक होगा।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

संकेन्द्रित संसाधन – जो संसाधन केवल कुछ ही स्थानों पर मिलते हैं जैसे– केरल तट पर थोरियम

अनव्यकरणीय संसाधनः– ऐसे संसाधन जिनकी पुनः पुर्ति संभव नहीं है।

4.7 बोध प्रश्न–

4.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न–1– संसाधनों की संकल्पनाओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–2– संसाधन का अर्थ, एवं संसाधनों के निर्माण को समझाइयें।

प्रश्न–3– संसाधनों की प्रकृति के बारे में बताइये–

4.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1– जिम्मरमैन के द्वारा संसाधनों के वर्गीकरण को समझाइये।

प्रश्न–2– उपयोग की संतत्ता के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण करो।

4.7.3 –बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न–1. जिन संसाधनों का एक से अधिक बार उपयोग किया जा सकता है उन्हें कहते हैं–

(अ) जैविक संसाधन (ब) चक्रीय संसाधन

(स) अजैविक संसाधन (द) ऊर्जा संसाधन

प्रश्न–2. जैविक संसाधन है –

(अ) वन (ब) पशु–पक्षी

(स) वन्यजीव (द) उपरोक्त सभी

प्रश्न–3. संसाधन शब्द बना है–

(अ) अंग्रेजी (ब)हिन्दी

(स) ग्रीक (द) लैटिन

प्रश्न–4. संसाधन होते नहीं बनाये जाते है" संकल्पना किसने दी–

(अ) जिम्मरमैन (ब) गाउडी

(स) एस जिन्स वर्ग (द) उपरोक्त सभी

प्रश्न–5. उत्पति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण है।

(अ) जैविक संसाधन (ब) अजैविक संसाधन

(स) समाप्य संसाधन (द) (अ) व (ब) दोनों

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1–डॉ बी.सी.जाट "संसाधन भूगोल" मलिक बुक कम्पनी जयपुर

2–प्रो. जगदीश सिंह "संसाधन भूगोल ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

3–Zimmeramn- EW- Introduction to world Resources

इकाई–5 पर्याप्तता का सिद्धान्त,संसाधन दुर्लभता कीपरिकल्पना, वृद्धि की सीमाएं

इकाई की रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2. उद्देश्यः–

5.3. संसाधन पर्याप्तता का सिद्धान्त

5.4. संसाधन दुर्लभता प्राक्कल्पना

5.5. वृद्धि की सीमाएं

5.6. जनसंख्या संसाधन प्रदेश

5.7. सारांश

5.8. पारिभाषिक शब्दावलीः

5.9. बोध प्रश्न

5.10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

संसाधन भूगोल में विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से संसाधनों की प्राप्त, दुर्लभता आदि को समझाया गया है। जनसंख्या वृद्धि को वृद्धि सीमाएँ सिद्धान्त से समझाया गया है। संसाधन की माप उसकी जनसंख्या के उपयोग के स्तर के आधार पर की जाती है। वह संसाधनों का उपयोग एवं उनकी उत्पादन शक्ति को बढ़ाता है। संसाधन दुर्लभ नहीं होते लेकिन उनका गलत दोहन या उपयोग उन्हें दुर्लभ बना सकता है। संसाधन निर्माण का एक समय होता है। जिसमें वे बनते है। कुछ संसाधन ऐसे है जिनका निर्माण तुरन्त नहीं किया जा सकता है।इस इकाई में संसाधन सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा रहे है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में संसाधन भूगोल के विभिन्न सिद्धान्तों को बताया गया है जिनके उददेश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) पर्याप्तता का सिद्धान्त, संसाधन दुर्लभता की परिकल्पना की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) शिक्षार्थीइन सिद्धान्तों के विषय में व्याख्या कर सकेंगे।

(स) शिक्षार्थियों को वृद्धि की सीमाएं के सिद्धान्त से अवगत कराना।

(द) शिक्षार्थियोंसंसाधन भूगोल के सिद्धान्तों के विषय में व्याख्या कर सकेंगे।

5.3 संसाधन पर्याप्तता का सिद्धान्त

किसी देश की संसाधन का मापदण्ड उसकी जनसंख्या के इच्छित उपभोग–स्तर **(Dsired Level of cosumption),** उत्पादन, तकनीक स्तर तथा कुल उत्पादन आदि तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट होगा। जनसंख्या और उसका जीवन संसाधनों की कुल मांग को निर्धारित करते हैं। किसी भी निश्चित स्तर की मांग पूरी हो सकती है को निर्धारित करते हैं। किसी भी निश्चित स्तर की मांग पूरी हो सकी है कि नहीं, यह तथ्य मानवीय ज्ञान एवं प्राविधिकी के अतिरिक्त बहुत कुछ वहीं प्राप्त भौतिक संसाधनों पर निर्भर करता है। साथ ही पुनः यह दुहराना आवश्यक है कि मानव 'मधुमक्खी' की तरह उगे हुए फूलों के रस को इकटठा मात्र करके नहीं रहता। वह अपने सीमित **(Scarce)** संसाधनों का वैज्ञानिक ढंग से उपभोग करता है, उनकी उत्पादन शक्ति बढाता है तथा साथ ही भौतिक संसाधनों की कमी को देखकर स्वतः अपनी संख्या कम करने की चेष्टा करता है। पिछले दशकों मे जापान के जीवन–स्तर में अपार वृद्धि दर में नियोजित कमी लाने के कारण भी हुई है। अतः प्राकृतिक संसाधनों और जनसंख्या के अन्तर्सम्बन्ध कार्य–कारण से सीधे सम्बद्ध न होकर अत्यन्त गत्यात्मक (Dynamic) होते हैं और सक्रिय मानव क्रियाओं के कारण उनका पारस्परिक सामंजस्य अत्यन्त परिवर्तनशील रहा करता है।

अतः किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या और संसाधन सम्भाव्यता का सहचरी विश्लेषण (Covariance analysis) करने पर दोनों के अर्न्तसम्बन्ध स्पष्ट हो जायें। **ऐकरमैन** ने अनेक सहचरों (Covariants) को कुछ सीमितचरों (Variants)में इकटठा करके दो प्रमुख भागों मेंसमीकरण (Equation) के रूप में प्रस्तुत किया है। संसाधन का उपयोग या मांग तथा संसाधनों का उत्पादन या पूर्ति। मांग के अन्तर्गत जनसंख्या तथा जीवन स्तर एवं पूर्ति के अन्तर्गत कुल संसाधन आधार तथा जीवन–स्तर को छोड़कर अन्य सांस्कृतिक विशेषतायें सम्मिलित की गई हैं। इस समीकरण को निम्न रूप में रखा गया–

जन0 जी0– सं0 गुण (प्रा0 प्र0 स्था0)+आ0 व्या0+संस्था– उपवि0: अथवा,

जन0 = स0 गुण (प्रा0 प्र0 स्था0) + आ0 + स्या0 + संस्था उपवि0 :

जिसमें जन0 = जनसंख्या, जी0– जीवर स्तर; सं0 = कुल संसाधन आधार; गुण = संसाधनों की प्राकृतिक भौतिक विशेषतायें एवं गुण; प्रा0 = प्राविधिकी (Physical Technology Factors); प्र0 = प्रशासनिक तकनीक आदि स्था0 = संसाधनों कि स्थायित्व गुणक (Resource **Stability Factors**); आ0 = आर्थिक उत्पादन के समुचित पैमाने को निर्धारित करने वाले तत्वों का परिणाम **(**Scale economes**);** जैसे–भूमि का आकार, **(**Size of Territory**);** अन्य शोषण कार्यों का परिणाम स्तर आदि व्या0 = व्यापार द्वारा प्राप्त संसाधन (Resource added in trade);संस्था = सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक संस्थायें एवं विशेषतायें – किसी हद तक वे आर्थिक विकास में सहयोग देती है, जैसे शिक्षा, पारस्परिक वैमनस्य, अराजकता आदि उपवि0 = संसाधनों की उपयोग–विधि–बर्बादी अथवा संरक्षण का स्तर – किस हद तक संसाधनों का सदुपयोग या दुरूपयोग होता है।

मानव सभ्यता का विकास भौतिक संसाधनों के उत्तोरत्तर अधिकाधिक दोहन एवं उपयोग पर निर्भर है। अपनी उत्तरोत्तर परिष्कृत होती प्राविधिकी से मानव जाति मिट्टी, वन, जल, खनिज, का

व्यापक एवं गहन उपयोग करता हुआ भौतिक उपयोग एवं उत्पादन एवं सुख–सुविधा में विस्तार करता गया है। प्राविधिकी मुख्यतः चार प्रकार की होती है।

(1)संसाधन निष्कर्षक–

जिसके द्वारा पृथ्वी से कच्ची सामग्री प्राप्त की जाती है। फसलोत्पादन, खनिज निष्कर्षण इसी कोटि के है। इस प्रकार की प्राविधिकी के निरन्तर परिष्कार से अब मिट्टी की उत्पादकता में कई गुना वृद्धि हुई है। भूगर्भ में अगम गहराई पर स्थित बहुमूल्य खनिज एवं पेट्रोलियम जैसी ऊर्जा भी सुलभ है।

(2) संसाधन रूपान्तरणः–

प्राविधिकी द्वारा कच्ची सामग्री को वांछित गुण–धर्म वाले पदार्थों में परिणत कर लेते हैं; जैसे पेट्रोलियम से कृत्रिम धागे, उर्वरक, विविध प्लास्टिक सामग्री।

(3) दूरी निवारक प्राविधिकीः–

जिससे किसी भी पदार्थ को परिवहन साधनों के द्वारा विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा देते हैं।

(4) क्षेत्र संघनन प्राविधिकः–

दूर संचार द्वारा अब विश्व के किसी क्षेत्र में आर्थिक क्रिया–कलाप की सघनता में अभिवृद्धि सम्भव है।

5.4 संसाधन दुर्लभता प्राक्कल्पना–सिद्धान्त

संसाधन असीम हैं क्योंकि वे होते नहीं मानव मस्तिष्क एवं संज्ञान द्वारा बनते हैं तथा प्राविधिकी प्रगति के साथ किसी वस्तु या कारक या दशा का संसाधन में महत्व बढ़ता–घटता रहता है। इस अर्थ में संसाधन कभी दुर्लभ (Scarce)नहीं हो सकते परन्तु सीमित अवधि में विभिन्न परिस्थितियाँ किसी प्रदेश या समाज विशेष के लिये किसी संसाधन विशेष (जैसे पेट्रोल) को दुर्लभ बना सकती है। इनमें निम्न प्रमुख हैं।

(1) प्राकृतिक –

अल्प अवधि में किसी खनिज या ऊर्जा स्रोत (जैसे पेट्रोलियम) के भण्डार समाप्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिये भारत में बम्बई हाई से उत्पादन घट जाने से कुल उत्पादन में विगत वर्षों में कमी आई है जबकि माँग में तीव्र गति से वृद्धि हो रही हैं। उसी प्रकार तीव्र जनसंख्या वृद्धि के सापेक्ष भूमि की फसल उत्पादन क्षमता में कमी आ सकती है। जीवीय संसाधनों (जैसे मत्स्य) काउनकी पुनर्जनन क्षमता से अधिक आहरण–दोहन तब तक अभाव की दशा उत्पन्न कर सकता है जबतक पुनः पुनर्जनन एवं आहरण–दोहन में संतुलन न स्थापित हो जाय।

(2) भू–राजनीतिक –

विभिन्न देशों के मध्य परस्पर कटुता–शत्रुता के कारण किसी पदार्थ के निर्यात–आयात पर प्रतिबन्ध लगा देने से अभाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। प्रायः खनिज पदार्थो पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिय जाते हैं। उदाहरणार्थ, बांग्लादेश भारत को प्राकृतिक गैस बेचने को तैयार नहीं है अथवा पाकिस्तान होते हुए ईरान से गैस की पाईप का प्रस्ताव अधर में लटका है। पाकिस्तान में

भारत से अनेक वस्तुओं का आयात प्रतिबन्धित है, क्योंकि पाकिस्तान विश्व व्यापार संगठन के नियमों के तहत भारत को MFNका दर्जा देने को तैयार नहीं है। राजनीतिक उथल–पुथल के कारण अनेक देशों के मध्य व्यापार सम्बन्ध विछिन्न हो सकते हैं अथवा देश विभाजन के कारण सस्ते पदार्थ–स्रोत विदेशी बन सकते है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पूर्वी जर्मनी का सस्ता कोयला पश्चिमी जर्मनी के लिये एकीकरण के पूर्व दुर्लभ हो गया। 1947 में भारत का विभाजन हो जाने के पश्चात भारत का कोयला पाकिस्तान के लिये तथा पाकिस्तान का कपास एवं जूट भारत के लिये दुर्लभ हो गये।

(3) आर्थिक –

किसी पदार्थ की मांग उसकी आपूर्ति से अधिक हो जाने पर उसकी कीमत उतनी ऊँची हो सकती है कि निर्धन देश/प्रदेश के लिए वहनीय न रहे। ऐसी दशा में वह संसाधन (वस्तु) दुर्लभ हो जायेगा। पेट्रोलियम इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 2003 की अपेक्षा 2005 में अन्तर्यष्ट्रीय बाजार में पेट्रोलियम की कीमतें तीन गुनी हो गई। इससे भारत एवं अन्य पेट्रोल विहीन विकासशील देशों के लिए वह संसाधन दुर्लभ की कोटि में आ गया है। ऐसी दशा में सम्पन्न देश ऊँची कीमत पर पदार्थ विशेष का क्रय करके विपन्न देशों की समस्या बढ़ा देते हैं। परिणामस्वरूप संसाधन उपयोग का प्रतिरूप विकृत हो जाता है।

(4) पर्यावरणीय –

प्राकृतिक संसाधनों के अतिशय दोहन से जैव–भू–रसायन चक्रों (Biogeo-chemical cycles) पर असह्य दबाव पड़ सकता है। इन चक्रों के भंग हो जाने से दीर्घावधिक संसाधन दुर्लभता की स्थिति उत्पन्न होती है। हरित गृह गैसों (GHGS) के अत्यधिक उत्सर्जन से विश्वव्यापी ताप वृद्धि की समस्या उत्पन्न हो रही है तथा मानव जीवन के संकटग्रस्त होने की आशंका है। प्रदूषण बढ़ जाने से शुद्ध पेय जल का असमान्य संकट, जैव विविधता का विलोप, आदि वृद्धिमान संसाधन दुर्लभता के लक्षण है।

5.5 वृद्धि की सीमायें

1970 के दशक में विश्वस्तर पर यह जागरूकता उत्पन्न हुई कि प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध शोषण (विशेषतया विकसित देशों की प्रतिस्पर्धात्मक पूंजीवादी अर्थ–व्यवस्था में) के चलते संसाधनों की दुर्लभता का संकट सन्निकट है। संसाधनों की दुर्लभता संचित संसाधनों के अत्याधिक दोहन तथा बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन की प्रक्रिया में पर्यावरण के प्रदूषण के साथ–साथ पारिस्थतिकी संतुलन भंग हो जाने से सतत–संसाधनों के क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण उत्पन्न हो रही हैं 1970 ई0 में बेल के सम्पादकत्व में प्रकाशित पुस्तक The Environmental Handbookमें यह जोरदार मत प्रतिपादित हुआ कि अनिवार्य कच्ची सामग्रियों (विविध खनिज, लकड़ी) कृषिगत पदार्थ तथा ईधन आपूर्ति (कोयला, पेट्रोल) के स्रोतों के क्षीण होने तथा वायु एवं जल के प्रदूषित होने के साथ बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण का संकट मनुष्य जीवन की धरती पर से समाप्ति का घण्टा बजा रहा है 1972 ई0 में क्लब ऑफ रोम से सम्बद्ध विद्वानों मिडोज एवं मिडोज ने The Limits of Growthनामक पुस्तक प्रकाशित की इन्होंने जनसंख्या एवं औद्योगिक वृद्धि दर, कृषि उपज तथा विविध संसाधनों की उपलब्धता के विषद् विश्व स्तरीय अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि 2100 ई0 के पूर्व शीघ्रतर द्विगणित होती जनसंख्या एवं औद्योगिक उत्पादन वृद्धि आकस्मिक रूक जायेगी। विद्यमान औसत जनसंख्या वृद्धि (1.5 प्रतिशत वार्षिक) तथा औसत औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर (2 प्रतिशत वार्षिक) के चलते आवश्यक प्राकृतिक संसाधन समाप्त प्राय हो जायेंगे, जिससे औद्योगिक उत्पादन ठप हो जायेगा। परिणाम स्वरूप उर्वरकों तथा कीटनाशक रसायनों की कमी से

कृषि उत्पादन बहुत कम हो जायेगा। अन्ततः भुखमरी और बीमारी का शिकार होने से जनसंख्या बहुत कम हो जायेगी। यदि औद्योगिक उत्पादन में कमी न भी हो, तब भी वायु एवं जल प्रदूषण इतना बढ़ जायेगा कि मानव को स्वच्छ जल एवं शुद्ध वायु नहीं मिल पायेगी और उसका अस्तित्व ही संदेहास्पद हो जायेगा। अतएवं इनके मतानुसार पृथ्वी को एक ऐसा अन्तरिक्ष–यान (Spaceship) मानकर चलना चाहिए। जिसमें निश्चित परिणाम में रसद–पानी (संसाधन) है। यदि इनका उपयोग विवकेपूर्ण एवं अल्प होगा तो इस अन्तरिक्ष–यान में मानव अधिक समय तक टिक सकेगा अन्यथा उसकी समाप्ति अवश्यम्भावी है। अतएव मानव समाज के समक्ष वास्तविक समस्या है–एक परिसीमित संसाधन तन्त्र के आधार पर उत्पादन वृद्धि का नियमन।

यह मॉडल डेनिस मीडोज (D.H Meadow's) के नेतृत्व में 25 देशों के वैज्ञानिकों, अध्यापकों, अर्थशास्त्रियों एवं उद्योगपतियों के 70 सदस्यीय दल ने सन् 1970 में तैयार किया था तथा 1972 में प्रकाशित हुआ, जो क्लब ऑफ रोम (Club of Rome) द्वारा प्रायोजित था। यह प्रकाशन एक प्रतिवेदन वृद्धि की सीमायें (Limits to Growth) नाम से प्रकाशित हुआ इसमें कम्प्यूटर मॉडलों से भविष्यवाणी की गई थी कि संसाधनों के हास एवं पर्यावरण अवनयन का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव पर पड़ेगा। इस जनसंख्या दल ने अप्रैल 1968 से 1972 तक लगातार शोध कर 1900 से 1970 के मध्य पाँच प्रमुख वृद्धि चरों की समीक्षा की तथा इस मॉड़ल का लक्ष्य वर्ष सन् 2008 रखा गया। अर्थात् विगत 70 वर्षो की प्रवृति को इस अनुकार मॉडल (Simulation Model) द्वारा प्रस्तुत किया है। इसमें सम्मिलित पाँच चर निम्नलिखित हैं–

(1) जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

(2) कृषि उत्पादन (Agricultural Production)

(3) प्राकृतिक संसाधनो का अवनयन (Deplation of Natural Resources)

(4) औद्योगिक उत्पादन (Industrial Production)

(5) पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution)

इन पाँच प्रमुख चरों की बीसवीं सदी के दौरान (1970 तक) समीक्षा करने से पूर्व इस मॉडल की निम्नखित मान्यताएँ रही हैं–

वस्तुतः 'क्लब ऑफ रोम' द्वारा उन्हीं विचारों को आगे बढ़ाया गया है जिसे ग्रिफिथ टेलर ने नव नियतिवाद कहा है। इसके अन्तर्गत रूको या जाओ नियतिवाद इसी तथ्य की ओर इंगित करता है कि विकास कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उसके प्रतिकूल प्रभाव की समीक्षा आवश्यक है।

जनसंख्या दबाव एवं संसाधनों का उपयोग (Population Pressure and Resources Utilization)

जनसंख्या एवं संसाधनों में परस्पराश्रित सम्बन्ध पाये जाते हैं। प्रकृति में विद्यमान विभिन्न प्रकार के संसाधनों को मानव उपयोग योग्य स्वरूप में विकसित करता है। इस प्रकार की क्षमता रखने के कारण स्वयं मानव भी एक संसाधन है। मानव रहित पृथ्वी पर संसाधनों के सृजनकर्ता के साथ ही उनका उपभोगकर्ता भी है। पीटर हैगेट ने कहा है कि, ''कोई भी प्राकृतिक पदार्थ या शक्ति तब तक संसाधन नहीं बनता जब तक कि वह मानव की आवश्यकताओं को पूर्ति न करे।''मनुष्य के प्राविधिक ज्ञान में विकास के साथ ही संसाधनों को बढ़ाने व नवीन संसाधनों का सृजन करने को क्षमता में वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध में जैलिंस्की ने कहा है कि ''मनुष्य का ज्ञान ही सबसे बड़ा संसाधन है।'जनसंख्या और संसाधन के मध्य सन्तुलन को स्थिति उस समय उद्भूत होती है जब प्रकृति में

विद्यमान संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अनुकूलतम हो। संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक होने पर उसे जनाधिक्य (Over Population) तथा कम होने पर जनाभाव (Under Population) कहते हैं। लेकिन जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य सन्तुलन की दशा बहुत कम दृश्यगत होती है। इस प्रकार किसी क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या तथा उस क्षेत्र के संसाधनों में उपयुक्त समायोजन नहीं पाया जाता है। जिस कारण अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन विसंगतियों की दशा को ही जनसंख्या दबाव कहते हैं। टायूबर (Taeuber, L-B-,1970) के अनुसार, ''जनसंख्या के अधिक दबाव के कारण जनसंख्या और संसाधनों के बिगड़ने को जनसंख्या दबाव कहते हैं। क्लॉर्क (ClarkeC-G1970) के मतानुसार, ''जनसंख्या दबाव उस समय उत्पन्न होता है जब मानव की संख्या और उसकी आवश्यकताओं तथा क्षेत्र विशेष के भौतिक ,.मानवीय संसाधनों के मध्य का सन्तुलन बिगड़ जाता है।'' बाइनिंग (Browing, H-L-,1970) ने संसाधनों की पृथक प्रवृत्ति के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि किसी समुदाय के संसाधनों तथा उसको जनसंख्या के मध्य असन्तुलन से जनसंख्या दबाव उत्पन्न होता है। इसमें जनसंख्या एवं संसाधनों को मानवीय आधिपत्य में सीमाबद्ध किया गया है। माबोगुंजे ने बताया कि जनसंख्या दबाव को भूमि संसाधन, जनसंख्या और लोगों को आकांक्षाओं के मध्य होने वालो अन्तःक्रिया के परिणाम होते हैं। इसे निम्नांकित कारकों की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं।

(1) संसाधनों की उपलब्धता और उनका गुणात्मक स्वरूप। (ii) जनसंख्या की आकांक्षाएँ, उनकी सीमा तथा स्वरूप।

माबोगुंजे ने स्पष्ट किया कि संसाधन व जनसंख्या दोनों कम हों तथा आकांक्षाएँ ऊँची हों या संसाधन तथा आकांक्षाएँ कम हों व जनसंख्या अधिक हो तो जनसंख्या दबाव उत्पन्न होता, है।

जनसंख्या दबाव के लिए उत्तरदायी कारक

(Factors Responsible for Population Pressure)

जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी पर प्रारम्भिक समय में जनसंख्या दबाव नहीं था लेकिन धीरे–धीरे जनसंख्या वृद्धि होती गई। जनसंख्या दबाव की स्थिति गहराती गई। इस मानव निर्मित दबाव के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हैं–

(1) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (Rapid Growth in Population)–पृथ्वी पर 10,000 वर्ष ईसा पूर्व मात्र 50 लाख लोग रहते थे, जो बढ़कर 1750 में बढ़कर 80 करोड़ तथा 1930 में 200 करोड़ हो गई व आज 600 करोड़ को पार गई है। तीव्रता से बढ़ती इस जनसंख्या ने पृथ्वी तल पर दबाव बना दिया है।

(2) जनसंख्या का असमान वितरण (Uneven Distribution of Population)– पृथ्वी के 30 प्रतिशत भूभाग पर 95 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। जबकि शेष 70 प्रतिशत भाग पर मात्र 5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इसमें भी इतनी विषमता है कि संसार को 50 प्रतिशत जनसंख्या केवल 5 प्रतिशत भूभाग पर ही रहती है। 70 प्रतिशत निवास के अयोग्य क्षेत्रों में शुष्क, ऊष्ण, आर्द्र तथा हिमाच्छादित क्षेत्र हैं। इनमें विशाल मरुस्थल, विषुवत् रेखीय क्षेत्र, ग्रीनलैण्ड, अण्टार्कटिका व आर्कटिक क्षेत्र तथा उच्च पर्वतीय भाग हैं। अतः विशेष क्षेत्रों में ही जनसंख्या संकेन्द्रण से जनसंख्या दबाव बढ़ता है।

(3) स्थानान्तरण पर नियंत्रण (Control on Migration)–प्राचीन काल में मनुष्य परस्पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण कर लेता था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक देशों ने अपने

संसाधनों एवं जनसंख्या के अनुपात को से अनुकूलतम बनाये रखने के लिए स्थानान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा दिये। इस दृष्टि से आस्ट्रेलिया की श्वेत नीति, दक्षिणी अफ्रीका की रंगभेद (Aparthied) नीति तथा सोवियत रूस, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिकी देशों की चयनात्मक प्रयास से भी स्थानान्तरण कम हो पाया है। फलस्वरूप प्राचीनकाल में बसे क्षेत्रों पर जनसंख्यां दबाव बना है।

(4)प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन (Over Exploitation of Natural Resources)–बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ने से भी जनाधिक्य की स्थिति बनी है, क्योंकि जनसंख्या तो बढ़ती रही, लेकिन संसाधनों की मात्रा पूर्ववत् रही जो निरन्तर घटना प्रारम्भ हुई। फलस्वरूप जनसंख्या दबाव बना है।

(5) प्राकृतिक आपदायें (Natural Disaters)–

प्राकृतिक आपदाओं के कारण जनसंख्या का स्थानान्तरण होने से सन्तुलन बिगड़ जाता है। इन आपदाओं में भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा, चक्रवात आदि प्रमुख हैं। प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त अनेक बार मानव जनित विपदायें भी जनसंख्या दबाव में वृद्धि करती हैं। युद्ध, आक्रमण, औद्योगिक उत्पादन आदि के कारण जनसंख्या का प्रवास होता है। इन सभी कारणों से पृथ्वी पर जनसंख्या कुछ विशिष्ट स्थानों पर संकेन्द्रित हो जाती है तथा उस क्षेत्र विशेष के संसाधनों पर दबाव बढ़ जाता है। संसाधन एवं जनसंख्या में एक बार सन्तुलन बिगड़ने पर संसाधनों के विवेकपूर्ण दोहन द्वारा ही आनुपातिक स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। जनसंख्या दबाव के बढ़ने से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि, जल संसाधन तथा अनेक आधारभूत सुविधाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रकृति में कुछ विशेष स्थानों पर जनसंख्या का दबाव विगत शताब्दी में तीव्र गति से बढ़ा है, जिसका मूल कारण आर्थिक प्रगति के लिए संसाधनों का दोहन रहा है। तीव्र औद्योगिक विकास द्वारा प्रकृत्ति प्रदत्त संसाधनों का आनुपातिक दर से अधिक दोहन कर संसाधन संकट उत्पन्न कर दिया। प्रारम्भिक समय में यह स्थिति सन्तुलित थी। लेकिन उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दियों में निरन्तर बढ़ती जनसंख्या ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की है फलस्वरूप न केवल अनव्यकरणीय संसाधन व नव्यकरणीय संसाधनों में भी ह्रास हुआ है। वन संसाधन जैसे नव्यकरणीय संसाधान लम्बी अवधि में अपना चक्र पूर्ण कर पाते हैं। अतः दोहन की दर बढ़ने से वनावरण में कमी आयी है, जिससे भी विश्व तापन की समस्या उत्पन्न हो गई है।

संसाधनों के दोहन में दीर्घकालीन सोच न रखने से जैविक संसाधनों में कमी आयी व जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का दोहन बढ़ा। इसमें उच्च औद्योगीकृत पश्चिमी सभ्यता वाले देश, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों में उच्च दर से संपादनों का ह्रास किया तथा विकासशील देशों में भी इनका अनुसरण किया। लेकिन उन्नत तकनीकी के अभाव में यहाँ संसाधनों का दोहन विकास का सूचक न होकर केवल भरण–पोषण का साधन बन गया

5.6.जनसंख्या संसाधन प्रदेश(Population Resource Regions)

जनसंख्या दबाव एवं संसाधनों की उपलब्धता, उपयोग तथा प्राविधिक स्तर के बारे में विश्लेषण कर विभिन्न जनसंख्याविदों (Demographers) ने संसार को जनसंख्या संसाधन प्रदेशों में विभक्त किया है। जनसंख्या संसाधन प्रदेशों का निर्धारण जनसंख्या व संसाधन व प्राविधिक उपलब्धता के स्तर के आधार पर किया जाता है। इस क्रम में एकरमेन ने 1959 विश्व के विभिन्न प्रदेशों को जनसंख्या संसाधन प्रदेशों की एक श्रेणी में विभक्त करने का प्रयास किया। इन्होंने किसी विशिष्ट समाज के तकनीकी स्तर को मद्देनजर रखा है। इस आधार पर विश्व को निम्नांकित पाँच जनसंख्या

संसाधन प्रदेशों में विभक्त किया गया है–

(1) संयुक्त राज्य प्रकार के प्रदेश (United States Type Regions)

(2) यूरोपीय प्रकार के प्रदेश (European Type Regions)

(3) मिस्र प्रकार के प्रदेश (Egyptian Type Regions)

(4) ब्राजील प्रकार के प्रदेश (Brazilian Type Regions)

(5) आर्कटिक मरुस्थल प्रकार के प्रदेश (Arctic Desert Type Regions)

(1) संयुक्त राज्य प्रकार के प्रदेश (United States Type Regions)

ये देश तकनीकी विकास के आधार पर उच्च जनसंख्या एवं संसाधन क्षमता का अनुपात रखते हैं। इस प्रकार के प्रदेशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा आंशिक रूप से रूस तथा अर्जेन्टीना हैं। इन क्षेत्रों में भौतिक संसाधनों की प्रचुरता तथा क्षेत्रीय विस्तार देखा जाता है। अतः ये क्षेत्र भविष्य में भी इसी श्रेणी में रहेंगे। दूसरी ओर तीव्र आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप कुछ हानिकारक प्रभाव भी परिलक्षित होंगे। ये अपनी उच्च क्षमता के आधार पर विश्व के अन्य क्षेत्रों के संसाधनों को भी प्राप्त करने में सफल रहेंगे। यहाँ जनसंख्या का आकार सीमित होने से लोग तकनीकी ज्ञान में निपुण तथा उच्च श्रम क्षमता रखते हैं।

(2) यूरोपियन प्रकार के प्रदेश (European Type Regions) –

अमेरीकी क्षेत्रों के सदृश्य ही यहाँ भी सीमित जनसंख्या है। अतः उच्च तकनीकी ज्ञान पाया जाता है, जिस आधार से ये प्रदेश विकसित देशों में हैं। उनकी तुलना में यहाँ क्षेत्रीय विस्तार कम पाया जाता है, जिस कारण संसाधनों की उपलब्धता कम है, जिस दृष्टि से जनाधिक्य माना गया है। यूरोपीय प्रकार के क्षेत्रों में पश्चिमी एवं दक्षिणी यूरोप के राष्ट्र आते हैं, जिनमें रूमानिया, बुल्गारिया, टर्की तथा यूगोस्लाविया को सम्मिलित नहीं किया गया है। इजराइल, जापान तथा मध्य सोवियत रूस भी इसी प्रकार के प्रदेशों में विकसित हो गये हैं। भारत, चीन, कोरिया, टर्की, पोर्टोरिको, घाना आदि देश भी इस सीमा के समीप पहुँच गये हैं।सीमित संसाधनों पर आधारित जनाधिक्य वाले इन क्षेत्रों में जीवनधारा योग्य परिस्थितियों (Sustainable Condition) के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया है जो तकनीकी विकास एवं बाहरी विश्व से व्यापार की सहायता पर निर्भर है। यहाँ विक्षिप्त (Scattered) संसाधनों का सघन क्षेत्र दोहन किया जा रहा है।

(3) मिस्र प्रकार के प्रदेश (Egyptian Type Regions) –

ये क्षेत्र जनाधिक्य की समस्या से ग्रस्त हैं, जहाँ जनसंख्या और भूमि का सन्तुलन एक समस्या बना हुआ है। इनकी जनसंख्या विकास दर भी तीव्र है, जबकि मुख्य आर्थिक क्रिया कृषि है। कृषि योग्य भूमि के अधिकांश भाग पर खाद्यान्नों का उत्पादन किया जाता है। सामाजिक विकास स्तर भी अल्प विकसित है। यहाँ के लोग पुरातन प्रवृत्ति के हैं, जिनका विकासात्मक दृष्टिकोण नकारात्मक है। अतः मानव जीवन विकास की ओर उन्मुख न होकर मात्र जीवनयापन का तरीका बन गया है।

मिस्र प्रकार के प्रदेशों में मिस्र, अल्जीरिया, ट्यूनिसिया तथा मोरक्को, दक्षिणी यूरोप में सिसली, सार्डीनिया, दक्षिणी इटली, अल्बानिया, यूनान तथा दक्षिणी यूगोस्लाविया, नई दुनिया में हैती, एल. साल्वाडोर तथा ग्वाटेमाला, एशिया में भारत, चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश, दक्षिणी कोरिया, नेपाल, श्रीलंका, अफगानिस्तान, लेबनान तथा साइप्रस आदि देश सम्मिलित हैं।

(4) ब्राजील प्रकार के प्रदेश (Brazilian Type Regions)–

इन प्रदेशों में हिन्दचीन, उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका को समाहित किया गया है। जहॉ तकनीकी विकास आवश्यक मात्रा में नहीं हो पाया है, जबकि ये जनसंख्या आकार में अग्रणी हो गये हैं। यहाँ जनसंख्या तथा संसाधन अनुपात सन्तुलित नहीं है। तकनीकी विकास के साथ यदि यहाँ सामाजिक–आर्थिक विकास होता है तो जनसंख्या की इस स्थिति में भी ये क्षेत्र इस जनसंख्या का पोषण करने में समर्थ हो सकते हैं। वर्तमान में ये क्षेत्र यूरोपीय तथा चीन प्रकार के क्षेत्रों के मध्य की स्थिति में संघर्षरत है।

(5) आर्कटिक मरुस्थल प्रकार के प्रदेश (Arctic Desert Type Regions)–

ये प्रदेश अभी भी जनसंख्या विकास की दृष्टि से अल्पविकसित हैं, क्योंकि यहाँ कहीं प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता नहीं है तथा जहाँ संसाधनों की उपलब्धता है वहाँ उनके दोहन की पर्याप्त परिस्थितियाँ नहीं हैं। यहाँ आर्थिक विकास की दृष्टि से कच्चे माल की आपूर्ति की क्षमता है। खनिज पदार्थ, खनिज तेल तथा सामुद्रिक संसाधनों की उपलब्धता है। अतः भविष्य में तकनीकी विकास के उपरान्त जनसंख्या विकास सम्भव है। इन क्षेत्रों में सम्पूर्ण अन्टार्कटिका महाद्वीप तथा ग्रीनलैण्ड आते हैं। इनके अतिरिक्त उत्तरी अमेरिका महाद्वीप का उत्तरी भाग तथा यूरेशिया का सुदूर उत्तरी भाग तथा उत्तरी ध्रुव के समीपवर्ती द्वीप समूह इसी प्रदेश में आते हैं। इसी प्रकार की परिस्थितियाँ विश्व के उष्ण मरुस्थलों में भी पायी जाती है।

5.7 सारांश

इन सिद्धान्तों के माध्यम से संसाधनों की प्राप्ति, जनसंख्या वृद्धि की सीमाएं दुर्लभता को बताया गया है। संसाधनों, अवसरों का समग्र वितरण नहीं होने पर सामाजिक, राजनीतिक तनाव उत्पन्न होता है। जनसंख्या एवं औद्योगिक वृद्धि के कारण संसाधनों का तीव्र उपयोग हुआ है।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

अनव्यकरणी संसाधन– पुनः उपयोग न होने वाले संसाधन।

सर्वत्र उपलब्ध संसाधन– वायु

5.9 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न–1– पर्याप्तता के सिद्धान्त को समझाइये।

प्रश्न–2– संसाधन दुर्लभता के सिद्धान्त को बताइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1 वृद्धि सिद्धान्त के पाँच चरणों के नाम लिखो।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्रश्न–1वृद्धि की सीमाएं सिद्धान्त किसके नेतृत्व में प्रकाषित हुआ।

(अ) डेनिस मीडोज **(ब)** लॉक्की

(स) नोटेस्टीन **(द)** विलकॉक्ज

प्रश्न–2 वृद्धि की सीमाएं सिद्धान्त में चर है।

(अ) 2 चर **(ब)** 3 चर

(स) 5 चर **(द)** 6 चर

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. डॉ बी.सी. जाट "संसाधन भूगोल" मलिक बुक कम्पनी जयपुर
2. प्रो. जगदीश सिहं "संसाधन भूगोल" ज्ञानादेय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई–6 संसाधन परिस्थितिकी, संसाधन संरक्षणसंकल्पना, संरक्षण के नियम

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संसाधन पारिस्थितिकी

6.4 संसाधन संरक्षण के नियम

6.5संसाधनों का प्रबन्धन

6.6 सारांश

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6..8 बोध प्रश्न

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 प्रस्तावना

आरम्भिक समय में मानव पर्यावरण का दोहन सन्तुलित मात्रा में करता था किन्तु बढ़ती जनसंख्या के साथ ही संसाधनों का अन्धाधुन्ध दोहन प्रारम्भ हुआ। जिससे संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। सम्पूर्ण वनस्पति एवं जीव जन्तुओं को परिस्थितिकीय संसाधन माना है। इन सभी का अध्ययन संसाधन परिस्थितिकी में किया जाता है। किन्तु वर्तमान औद्योगिक एवं तकनीकी विकास से संसाधन परिस्थितिकी सन्तुलन बिगड़ा है। अतः संसाधन संरक्षण एवं पर्यावरण प्रबन्धन की अत्यधिक आवश्यकता है।इस इकाई में संसाधन परिस्थितिकी एवं संसाधन संरक्षण की संकल्पना का अध्ययन किया जा रहा है।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में संसाधन पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जा रहा है। जिनके उदेश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) पारिस्थितिकी संसाधन की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) शिक्षार्थी पारिस्थितिकी संसाधन, संरक्षण की संकल्पना, नियम को जान सकेंगे।

(स) पारिस्थितिकी संसाधनों के प्रबन्धन का अध्ययन कर सकेंगे।

(द)शिक्षार्थीको पारिस्थितिकी संसाधन संरक्षण के नियमों एवं उन्हें पालन करने से अवगत करना।

6.3 संसाधन पारिस्थितिकी

सी. पार्क (Park, C. 1980) ने अपनी पुस्तक "Ecology and Environmental Management." में समस्त वनस्पति एवं जीव जन्तुओं को पारिस्थितिकीय संसाधन माना है। इनके अन्तर्गत वनस्पति एवं जीव जन्तुओं की संख्या, जातियों, समुदायों, आवासों तथा पारिस्थितिक तन्त्रों (Ecosystems) को समाहित किया है। विकास की दौड़ में सम्मिलित होते हुए मानव को पारिस्थितिकीय संसाधनों से दूर रखा जाता है। इन संसाधनों को प्रमुखतया दो प्रमुख वर्गो में विभाजित किया जाता है–

(1) पादप संसाधन (Plant Resources)

(2) जन्तु संसाधन (Animal Resources)

मनुष्य की संसाधन निर्माणकारी क्षमता असीमित नहीं है, यह ऊर्जा के प्रवाह तथा जैव–भू–रासायनिक चक्रों की संक्रियात्मकता पर निर्भर करती है। मोटे तौर पर भौगोलिक पर्यावरणीय तन्त्र तीन कारकों पर निर्भर करता है–

(1) ऊर्जा प्रवाह तथा पौधों एवं पशुओं के द्वारा परिवर्तन (रूपान्तरण) जो सम्पूर्ण तन्त्र का आधार है

(ii) रासायनिक तत्वोंकी संरचना एवं पुनर्रचना तथा उनका संरक्षण तथा

(iii) विभिन्न जीवों द्वारा पर्यावरणीय समायोजन। इन कारकों की क्रियाशीलता विभिन्न चक्रों की संक्रिया पर निर्भर करती है।

1. **जलीय चक्र (Hydrological cycle)** जल सभी जीवों के लिये आवश्यक है, वस्तुतः जैविक पदार्थों के शुष्क भार का 90 प्रतिशत भाग ऑक्सीजन, कार्बन तथा हाइड्रोजन से निर्मित है, जल हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का मिश्रण है। जीवित जीवों के कुल भार का अधिकांश भाग जल से निर्मित होता है। जल के तीन रूपों द्रव, ठोस एवं गैस में से तरल या द्रव रूप सर्वाधिक व्यापक है जो नदियों, झीलों, तालाबों, सागरों, महासागरों आदि के रूप में मिलता है। ठोस रूप में यह हिमचादरों तथा हिमनदी (glaciers) के रूप में दृष्टिगोचर होता है जबकि गैसीय रूप में यह वायुमण्डलीय जलवाष्प के रूप में मौजूद है। जल पौधों की जड़ों, पौधों तथा वृक्षों तथा पशुओं के शरीरों में भी उपस्थित रहता है। जल एक महान घोलक (solvent) भी है। अतएव यह पोषक तत्वों (nutrients) के चक्रण (cycling) का माध्यम भी है। यह ऊष्मा (heat) का भण्डारण करता है तथा ऊष्मा के संचार में बहुत महत्वपूर्ण है। पृथ्वी के धरातल पर इसका विषम वितरण मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि शैलों में संचित जल (भूमिगत जल) में चक्रण की प्रक्रिया नहीं होती है। पृथ्वी तल पर कुल जलराशि का 97 प्रतिशत सागरों एवं महासागरों, में 2 प्रतिशत हिमनदों तथा हिमचादरों में, 1 प्रतिशत नदियों, झीलों में तथा वायुमण्डलीय एवं मृदा नमी के रूप में अवस्थित मिलता है।

जलीय चक्र सौर्यिक ऊर्जा तथा गुरुत्व द्वारा संचालित होता है। वर्षण तथा वाष्पीकरण जलीय चक्र के दो प्रमुख प्रकम हैं। सौर्यिक ऊर्जा महासागरीय तथा धरातलीय जल का वाष्पीकरण करती है।

सामान्यतः 1,09.000 घनमील सागरीय जल वायुमण्डल में वाष्पीकृत होता है। 15,000 घन मील जल प्रतिवर्ष जलवाष्य के रूप में मिट्टियों, वनस्पति एवं अन्य जलराशियों से वायुमण्डल में पहुंचता है। इस प्रकार कुल 1,24,000 घन मील जल वायुमण्डल में जल बाष्प के रूप में पहुंचता है। फिर यह घनीभूत होकर महासागरों एवं घरातल पर वर्षण के रूप में प्राप्त होता है। हचिन्सन (Hutchinson) के अनुमान में पृथ्वी तल पर कुल बर्षण (Precipitation) की मात्रा 0.9910 ग्राम है, जबकि महासागर 3. 47 10 ग्राम जल (वर्षण) प्राप्त करते हैं। महासागरों के ऊपर वाष्पीकरण की मात्रा वर्षण की अपेक्षा अधिक है। जबकि महाद्वीपों पर इसके विपरीत वाष्पीकरण की अपेक्षा वर्षण अधिक होता है। महाद्वीपों पर वर्षा के रूप में प्राप्त जल वाही जल के रूप में नदियों द्वारा सागरों में पहुंचता है। कुल जल भूमि में रिसकर नीचे पहुँच जाता है। मिट्टियों द्वारा अवशोषित जल पौधों के विकास में प्रयुक्त होता है।जल का संचरण (circulation) सागरों से वायुमण्डल में तथा यहाँ से पृथ्वी के धरातल पर जटिल मार्गों द्वारा होता है। इस चक्र का सबसे महत्वपूर्ण भाग वायुमण्डल में होने वाले संचार के रूप में है क्योंकि यह समस्त जैव मण्डल के स्वरूप तथा विकास को नियन्त्रित करता है।

2. **आक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)** आक्सीजन सभी प्राणियों के लिये सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। इसका चक्र जैवमण्डल अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है। आणविक रूप में यह ०, के रूप में जमा जल में H_2O के रूप में विद्यमान रहती है। लौह आक्साइड (Fe2O) तथा कैल्शियम कार्बनिट (CaCO2) इसके अन्य रूप है। वायुमण्डल में यह आणविक रूप में मौजूद रहती है। जब यह कार्बन के साथ मिलती है तो यह कार्बन डाई आक्साइड CO2, बन जाती है तथा कार्बन डाई ऑक्साइड एवं हाइड्रोजन से मिलने पर यह जल H_2O बन जाती है। यह आक्साइड के रूप में भी प्राप्त होती है। सामान्यतः ऑक्सीजन का निर्माण पौधो द्वारा प्रकाश संश्लेषण (photosynthesì) की प्रक्रिया द्वारा होता है अंशतः यह खनिज ऑक्साइडों के निचय (reduction) द्वारा उत्पन्न होती है। आणविक रूप में यह लघु अवधि के लिये रहती हैं। शीघ्र ही यह अन्य तत्वों से मिलकर वायुमण्डल में पहुंच जाती है। इसका कुछ भाग वाही जल (run off) में मिल जाता है। कालान्तर में यह धरातल के अवसादी (sediment) में एकत्रित हो जाती है। इसका पुनर्चक्रण लगभग 2,000 वर्षों में पूरा होता है।

3. **कार्बन चक्र (CarbonCycle)** कार्बन डाई आक्साइड लघु मात्रा में (0.03) में ही वायुमण्डल में उपस्थित रहती है, फिर भी यह जैवमण्डल का अत्यधिक महत्वपूर्ण संघटक है। यह पृथ्वी के ऊष्मा बजट (heat budget) को प्रभावित करता है। यह जैविक पदार्थों के शुष्क भार का 50 प्रतिशत मात्र निर्माण करता है। वायुमण्डल में इसका चक्र ऊर्जा प्रवाह (energy flow) से सम्बद्ध रहता है तथा इसका स्थानान्तरण ठोस, तरल, एवं गैसीय रूपों में होता हैं। स्वपोषित (autotrophic) हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के समय वायुमण्डल से कार्बन डाई–ऑक्साइड ग्रहण करते हैं जिससे कार्बोहाइड्रेट्स उत्पन्न होते हैं। जीवधारी (organism) कुछ कार्बोहाइड्रेट श्वसन क्रिया द्वारा ऊर्जा ग्रहण करने के लिए उपयोग करते है जिससे कुछ कार्बन वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड के रूप में विमुक्त हो जाती है। कुछ कार्बोहाड्रेट्स परपोषी जीवों (heterotroph) द्वारा प्रयुक्त होती है। उनकी श्वसन क्रिया से भी कुछ कार्बन डाई आक्साइड विमुक्त होती है। कुछ कार्बन कोयले के रूप में अवसादी शैलों में भण्डारित होता है। इनके अपक्षय से जीवों तथा वायुमण्डल को कार्बन डाई ऑक्साइड प्राप्त होती है। पौधों को जलाने एवं प्राणियों से भी वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड उन्मुक्त होती है। वायुमण्डलीय कार्बन का यौगिकों (compounds) में रूपान्तरण 'कार्बन स्थिरीकरण' (fixation of carbon) कहलाता है। यौगिकों

तथा पौधों के अवयवों (organs) में उपस्थित कार्बन को स्थिर कार्बन (fixed carbon) कहा जाता है एक अनुमान के अनुसार प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) से प्रतिवर्ष 4× $1012\ ls\ 9 \times 10^{11}$ किलोग्राम कार्बन का स्थिरीकरण होता है। महासागरों के ऊपर वायुमण्डल की अपेक्षा 50 गुना अधिक कार्बन मिलता है, तथापि अकशेरूकी प्राणी (invertebrates) धरातलीय हरे पौधों की अपेक्षा बहुत कम कार्बन स्थिरीकरण करते हैं। जब कार्बन डाई ऑक्राइड (CO_2) जल में घुलती है तो यह कार्बोनेट एवं बाइकार्बोनेट पैदा करती है जो घुलनशील न होने के कारण झीलों तथा सागरों की तली में अवसादों के रूप में एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार महासागर वायुमण्डल से कार्बन के स्थानान्तरण तथा इसके पुनः प्रवेश को नियन्त्रित करते हैं इसके बावजूद, कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में वृद्धि हो रही है। रैवेल (Revelle, 1965) ने जीवाश्म ईधनों के जलने से वायुमण्डल में 17% कार्बन डाईऑक्साइड की वृद्धि होने का अनुमान किया है। चूंकि कार्बन डाई ऑक्साइड सौर ऊर्जा (ऊष्मा) को अवशोषित करती है, इससे वायुमंडलीय ताप में वृद्धि होती है। मनुष्य निश्चित रूप से बनों को काटकर तथा जलाकर और जीवाश्म ईधनों का प्रयोग करके आक्सीजन तथा कार्बन डाई–ऑक्साइड के सन्तुलन को बिगाह रहा है। इससे जैव मण्डल पर प्रतिकूल प्रभाव होना अवश्यसम्भावी है। 280 ppm से बढ़कर 320 ppm विगत 100 वर्षों में वायुमण्डल में कार्बन की मात्रा गयी है जो 21वीं सदी के अन्त तक 400 ppm पहुँच जायेगी, में 2° सेल्सियस की वृद्धि हो जायेगी जिसके अनेक दूरगामी परिणाम होंगे।

4. नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen cyele)– कुल वायुमण्डलीय गैसों में नाइट्रोजन की मात्रा 78 प्रतिशत है जो जैवमण्डल के लिये अत्यावश्यक है यद्यपि पौधों तथा प्राणी इसका प्रत्यक्षतः उपयोग नहीं करते। पौधे मिट्टियों से अमोनियम साल्ट तथा नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। जबकि प्राणी पौधों को खाकर इसे प्राप्त करते हैं। नाइट्रोजन चक्र में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन अनेक यौगिकों में रूपान्तरित होती है। ये यौगिक रासायनिक रूप से अपक्षयित (decompose) होते हैं तथा नाइट्रोजन वापिस वायुमण्डल में लौट जाती है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया चार अवस्थाओं (चरणों) में होती है– (1) वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का मिट्टियों में स्थानान्तरण, (ii) नाइट्रोजन का मिट्टियों से पौधों एवं प्राणियों में स्थानान्तरण, (iii) पौधों तथा प्राणियों से नाइट्रोजन का मिट्टियों में पुनः प्रवेश, तथा (iv) नाइट्रोजन का वायुमण्डल में लौटना। हाल ही में मनुष्य ने नाइट्रोजन चक्र में दो प्रकार से हस्तक्षेप किया है (1) बड़ी मात्रा में नाइट्रोजन का कृत्रिम उर्वरकों में रुपान्तरण, तथा (ii) नाइट्रोजन अवशोषणकारी फसलों को उगाकर। प्रथम विधि द्वारा वायुमण्डल में प्रतिवर्ष 30 मिलियन टन तक नाइट्रोजन का अवशोषण होता है जो बढ़कर 100 मिलियन टन तक हो सकता है। द्वितीय विधि द्वारा प्रतिवर्ष में 350 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। वास्तविक समस्या यह है कि सूक्ष्म जीवों द्वारा मिट्टियों से वायुमण्डल में नाइट्रोजन मुक्त होने की दर वायुमण्डल से इसकी प्राप्ति की दर के समान नहीं है।

5. फास्फोरस चक्र (Phosphorus Cycle)– फास्फोरस चक्र एक अवसादी चक्र (sedimentary cycle) है। वास्तव में फास्फोरस प्रोटोप्लाज्म का एक महत्वपूर्ण तत्व तथा जीवों के विकास एवं उपापचय (metabolism) का नियन्त्रक कारक है। यह भूगर्भिक अतीत में उत्पन्न शैलों तथा निक्षेपों में पाया जाता है। शैलों में तथा निक्षेपों के अपरदन से परितन्त्र को फास्फेट शप्त होती है। अधिकांश फास्फेट महासागरों में तथा अंशतः उथले निक्षेपों तथा सागरीय निक्षेपों (pelagic deposits) में प्राप्त होता है। फास्फेट के निक्षेप सागरीय मछलियों खुले तथा पक्षियों से भी उत्पन्न

होते हैं। पर्यावरण का आणविक संघटक इस फास्फेट को प्राप्त करता है। हचिन्सन के अनुसार जल में फास्फोरस तथा नाइट्रोजन का अनुपात 1% होता है। किन्तु अवसादन (sedimentation) जैसे अनेक भौतिक प्रक्रम तथा दाँत तथा हड्डियों का निर्माण जैसे जैविक प्रक्रमों से अधिकांश फास्फेट का क्षय हो जाता है। फास्फोरस चक्र अन्य खनिज चक्रों जैसा है। यह मृदा में पाँच भिन्न रूपों में मिलता है। जिनमें लेबाइल (labile), जैविक (P) जया पुलन (P) सन्तुलित रूप में मिलते हैं। फास्फोरस पौधों में अजैविक लेबाइल के रूप में प्रवेश करता है। फास्फोरस चक्र तब पूरा होता है जब यह उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक तथा पुनः वियोजकों तक संचारित होता है। फास्फोरस मिट्टियों में बहुत अल्प मात्रा में पाया जाता है। इसीलिये पौधों के विकास के लिये फास्फेट उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। फास्फेट का प्रयोग डिटर्जेन्ट बनाने में भी किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य फास्फोरस के क्षय की दर में वृद्धि करता है।

6. गन्धक चक्र (Sulphur cycle) गन्धक चक्र वायु, जल एवं मिट्टियों को जोड़ता है जिसमें सूक्ष्म जीवों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती। है. यह तत्व मिट्टि में सल्फेट के रूप में मौजूद रहता है। वायुमण्डल में यह गैसीय अवस्था में रहता है, जो जीवाश्म ईधनों के जलने तथा ज्यालामुखी क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। पदार्थों के वियोजन (decomposition) से सल्फाइड (H-S) उत्पत्र होते हैं। मिट्टियों में गन्धक सल्फेट, सल्फाइड तथा अर्जैविक गन्धक के रूप में मौजूद रहती है। जैविक गन्धक SO-तथा H-S(हाइड्रोजन सल्फाइड) के ऑक्सीकरण से उत्पन्न होती है। अवातनिक (anaerobic) दशाओं में लोहे की उपस्थिति में गन्धक के अवक्षेषण (precipitation) से लौह– सल्फाइडों की उत्पत्ति होती है। ये लौह–सल्फाइड क्षारीय जल में अघुलनशील होते हैं। ताँबा, कैडमियम, जस्ता, कोबाल्ट आदि से गंधक प्रतिक्रिया होने पर जटिल रासायनिक चक्र उत्पन्न होते हैं। प्रकृति में जैव–भू– रासायनिक चक्रण की प्रक्रिया लघु से लेकर दीर्घ अवधि (लाखों वर्षो) तक रहती है। उहाहरणार्थ, जीवाश्म ईधन स्थलमण्डल में दीर्घावधि तक बंधे रहते हैं। मनुष्य जीवाश्म ईधनों के प्रयोग से जैव–भू–रासायनिक चक्रण की प्रक्रिया को तीव्र कर रहा है।

इन पारिस्थितिकीय संसाधनों का प्रबन्धन अग्र तीन पक्षों के अन्तर्गत किया जाता हैः–

(1) पारिस्थितिकीय संसाधनों का सर्वेक्षण

(2) पारिस्थितिकीय संसाधनों का मूल्यांकन

(3) पारिस्थितिकीय संसाधनों का परिरक्षण एवं संरक्षण

6.5 संसाधन संरक्षण के नियम

संसाधनों का प्रबन्धन (Management of Resourcces)

संसाधन का प्रबन्धन विभिन्न उपागमों के अन्तर्गत किया जाता है। तत्पश्चात् इनका वर्गीकरण किया जाता है।

प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन के निम्न प्रमुख उद्देश्य हैंः–

(i) पर्यावरण के उत्पाद, उनके नव्यकरण व नैसर्गिक सौन्दर्य को बनाये रखने वाले वातावरणीय गुणों के परिरक्षण को सुनिश्चित करना।

(ii) उत्पाद एवं नव्यकरण के मध्य ऐसा संतुलन स्थापित करना ताकि निरन्तर उपयोगी पौधे, जन्तु व पदार्थ प्राप्त हो सकें।

वन संसाधनों को प्रबन्धित करने के लिए निम्न तकनीकें महत्वपूर्ण मानी गई हैं–

(1) वनों की नियंत्रित एवं वैज्ञानिक विधि से कटाई (Forestation by controlled and Scientific Techniques)– वन संरक्षण के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण वन क्षेत्र को साफ न करके आवश्यक वृक्षों की वैज्ञानिक विधि से कटाई की जाये। वनों का अन्धाधुन्ध दोहन को नियंत्रित करके पोषणीय आधार (Sustainable base) प्रदान का जाये। मिश्रित वनों में चयनात्मक (Selective) कटाई उपयुक्त रहती है। जिस मात्रा में वन काटे जायें उसी अनुपात में नये क्षेत्रों में वनरोपण (Afforestation) किया जाना चाहिए

(i) **वनाग्नि से सुरक्षा** (Protection of Forest Fire)– वनाग्नि से अकस्मात् वनों का एक भाग नष्ट हो जाता है। वनों में लगने वाली अग्नि तीन प्रकार की होती हैं–

(अ) शिखराग्नि (Crown Fire)– यह सर्वाधिक हानिकारक होती है।

(ब) वनों के मध्य पड़े अपशिष्ट पदार्थों, घास, सूखकर गिरे वृक्षों में आग लगती है।

(स) यह भूमिगत अग्नि होती है। यह पीट भूमि में लगती है।

(**ii**) **वनों का हानिकारक कीटों से संरक्षण** (Protection of Forest from Insects)–वनों को अनेक हानिकारक कीट जैसे दीमक, सूंडी, झींगुर, गुबरैला आदि नष्ट कर देते हैं अतः इनसे वनों का रक्षण करना चाहिए।

(**iii**) **पुनर्वनरोपण** (Reforestation)–नष्ट हुए क्षेत्रों में पुनः वनावरण विकसित किया जाना चाहिए।

(**iv**) वनों के प्रबन्धन में सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न वन सरंक्षण कार्यक्रम भी प्रभावी भूमिका निभाते हैं। इनमें सामाजिक वानिकी (Social Faretry), कृषि वानिकी (Agroforestry), बागवानी (Horticulture) विकास, चरागाह विकास आदि प्रमुख हैं।

(**v**) मानवीय उपयोग हेतु वृक्षों की कटाई करते समय यह मददेनजर रखा जाए की उसे सम्पूर्ण वृक्षों का कितना हिस्सा आवश्यक है उसी को ही काटा जाये। वन काटने एवं वन लगाने का अनुपात सन्तुलित अवस्था में रखना चाहिए।

(vi) प्रत्येक देश के 33 % वन क्षेत्र वन्य जीवों के लिए संरक्षित करना आवश्यक है अतः इस दिशा में भी प्रयास करने चाहिए तथा वनों के एक बड़े भाग को राष्ट्रीय उद्यानों जीव अभयारण्यों तथा बाघ एवं हाथी परियोजनाओं के अन्तर्गत घोषित कर देना चाहिए।

(vii) वनों के महत्त्व एवं इनके उन्मूलन से होने वाली हानियों के बारे में जनता को सचेत किया जाये

(viii) वन संरक्षण के लिए विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों को क्षेत्र राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रियता से भागीदारी निभानी चाहिए।

(2)जल संसाधन प्रबन्धन (Management of Water Resource)–विश्व में जल संकट बढ़ रहा है। नदी, नाले तथा झीलें सिमटते जा रहे हैं, वृक्षों की कटाई ने वर्षा जल का मृदा से नाता तोड़ दिया है। दुनिया में जल का प्रतिदिन विकसित देशों में औसतन उपभोग, ग्रामीण क्षेत्रों में 50 लीटर तथा नगरों में 150 लीटर तक रहता है। उद्योगों में भी जल की भारी मात्रा में आवश्यकता रहती है। एक टन निकिल के लिए 4000 मी^{3} जल का, एक टन के लोहे के प्रगलन (Smelting) में 200 मी^{3} जल की आवश्यकता होती है। सिंचाई में भी जल की मात्रा बढ़ती जा रही है। एक हैक्टेयर के खेत में

एक वर्ष में औसतन 12,000 से 14,000 मी^{3}का प्रयोग किया जा रहा है। अतः मानव की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए बढ़ती जनसंख्या के साथ जल की मांग भी बढ़ रही है। अतः इसका प्रबंधन आवश्यक है। जल संरक्षण की अग्रांकित तकनीकें कारगर सिद्ध हो सकती हैं–

(i) जल का पुनर्वितरण(Redistribution of Water)–पृथ्वी पर 97.2% महासागरों में तथा 2% बर्फ के रूप में पाया जाता है। शेष 0.80% जल नदियों, जलाशयों तथा भूजल के रूप में पाया जाता है। इस प्रकार कुछ भागों में जल की अधिक मात्रा तथा कुछ में न्यून मात्रा पायी जाती है। इस हेतु जल का पुनर्वितरण सुविधाजनक स्थानों पर किया जा सकता है। नदी जल को निम्न प्रकार से पुनर्वितरित किया जा सकता है– (अ) जलाशय (ब) नहरों द्वारा।

(अं) जलाशय (Reservoir)– नदियों के अतिरेक (surplus) जल को जलाशयोंमें संग्रहीत करके संरक्षित किया जा सकता है। इनसे जलविद्युत के अतिरिक्त जल परिवहन में भी सहयोग मिलता है। विभिन्न रूपों में जलाशयों द्वारा उद्योगों, नगरों तथा सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों को जलापूर्ति की जाती है। इनमें मत्स्य पालन भी किया जा सकता है। नदियों में बाढ़ों से स्थिति के दौरान इनमें जल संग्रह किया जाता है, जिससे नदियों का जल प्रवाह नियंत्रित होता है। एवं संग्रहीत जल ग्रीष्मकाल में उपयोग में लिया जाता है।

(ब) नहरें (Canal) – नहरों के द्वारा जल के पुनर्वितरण के साथ ही परिवहन में भी सहायता मिलती है। ये कृत्रिम नदियों के रूप में विकसित की जाती हैं।

(ii)भूजल का विवेकपूर्ण उपयोग (Rational use of Ground Water)–भूसतह से 4000 मीटर तक की गहराई पर 8350000 किमी^{3} भूजल पाया जाता है जो कुल जल संसाधन उपयोग एवं पर्यावरण प्रबन्धन का 0 .61% भाग है। अतः सीमित भूजल संसाधन का विवेकपूर्ण एवं व्यवस्थित दोहन होना चाहिए। भूजल दोहन स्तर को अग्रंकित वर्गों में रखा जा सकता है– भूजल का सन्तुलन विवेकपूर्ण दोहन एवं वर्षा की पर्याप्त उपलब्धता पर निर्भर करता है । वर्तमान समय में विभिन्न देशों में सिंचाई एवं वृहद् नगरों में जलापूर्ति हेतु भूजल का दोहन किया जा रहा है। भूजल से सिंचित भूमि के रूप में 20% एवम भारत में 66% क्षेत्र को जल प्राप्त होता है। जलीय प्रवाह को विभिन्न स्थानों पर नियंत्रित करके कृत्रिम पुनर्भरण (Artificial Recharge) व्यवस्था को भी मजबूत बनाया जाना चाहिए।

(iii)जलग्रहण विकास कार्यक्रम (Watershed development Programme)–वह भौगोलिक क्षेत्र है, जिसमें गिरने वाला जल एक नदी या एक दूसरे से जुड़ती हुई कई छोटी नदियों के माध्यम से एकत्रित होकर एक ही स्थान से होकर बहता है। जलग्रहण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अग्र रूपों में जल संरक्षण किया जाता है–

(अ) वर्षा जल का वैज्ञानिक उपयोग।

(ब) भूजल के पुनर्भरण की गति में वृद्धि करना।

(स) वर्षा जल द्वारा हो रहे अपरदन पर रोक लगाने के लिए विभिन्न रोक बांधों (Check Dams) में जल का संग्रह कर प्रवाह को नियंत्रित करना।

(द) सुविधाजनक स्थानों पर विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संरक्षणात्मक गतिविधियोंको अपनाते हुए जलाशयों (Reservoir) का निर्माण करना।

(य) वर्षापोषित (Rainfed) क्षेत्रों में नवीनतम सिंचाई पद्धतियों को अपनाना।

(र) शुष्क कृषि का विकास करना।

(iv) भूतापीय जल का उपयोग (Use of Geothermal Water)–यह जल पृथ्वी के अभ्यन्तर खुदाई के उपरान्त प्राप्त होता है। इस ऊष्ण जल द्वारा भूतापीय ऊर्जा संयन्त्रों को स्थापित करके विद्युत उत्पादन किया जा सकता है। साइबेरिया में इस जल का उपयोग तालाबों में मत्स्य प्रजनन के लिए भी किया गया है।

(v)जल का प्रदूषण से बचाव (Protection of Water from Pollution)–जल का विभिन्न प्रदूषक स्रोतों से रक्षण करना चाहिए। जल प्रदूषण के स्रोतों एवं बचाव के बारे में अध्याय 'जल प्रदूषण' में विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकार जल साधन का विभिन्न रूपों में संरक्षण किया जाना चाहिए ताकि प्राकृतिक पर्यावरण का यह महत्त्वपूर्ण घटक अपने प्राकृतिक स्वरूप में रह सकें।

(3)वन्य जीवों का प्रबन्धन (Management of Wildlife) –जैव सम्पदा और वन्य जीवों के विकास का इतिहास मनुष्य के इतिहास से पुराना है, पर आधुनिक विकास के क्रम में जैव सम्पदा का अतिदोहन किया जा रहा है, जिससे इनके अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया है जिससे निजात पाने के लिए वन्य जीवों का संरक्षण आवश्यक है। जीवन को समर्थन देने वाले तंत्रों व आवश्यक पारिस्थितिकी प्रक्रियाओं को बनाये रखने तथा विश्व के जीवों में आनुवांशिकी पदार्थ की वर्तमान श्रृंखला को बनाये रखने के लिए वन्य जीवों का संरक्षण यथासमय की जा रही है। वन्य जीवों को सुरक्षित रखने के निम्न मूल आधार हैं–

(i) प्रत्येक देश द्वारा एक निश्चित अनुपात में (कम से कम 33%) वन्य जीवों के लिए आरक्षित करके मानवीय हस्तक्षेप को प्रतिवन्धित किया जाये।

(ii) कानूनों, नियमों व प्रतिबन्धों द्वारा वन्य जीवों के अनावश्यक आखेट, वन विनाश को रोक कर प्रजननी जीवों (Breeding Stock) की संख्या में वृद्धि की जावे।

(iii) संकटापन्न जीव–जन्तुओं की प्रजातियों की रक्षा के लिए विशिष्ट उपाय किये जाने चाहिए।

(iv) वन्य जीवों वाले क्षेत्रों को विभिन्न योजनाओं के तहत राष्ट्रीय उद्यान वन्यजीव अभ्यारण्यों, बाघ परियोजना, गैंडा एवं हाथी परियोजना आदि के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

(4)प्रदूषण नियन्त्रण के लिए प्रबन्धन (Management for Pollution Control)–पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास कर रहे विभिन्न प्रकार के प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिये भी प्रयासरत् रहना चाहिए। जल, वायु, भूमि, शोर (ध्वनि), रेडियोधर्मिता प्रदूषण की प्रकृति एवं प्रभावों व उनके नियंत्रण के उपायों का विस्तृत विवेचन विभिन्न अध्यायों में दिया जा चुका है।

(5)ऊर्जा संसाधनों का प्रबन्धन (Management of Power Resource)– ऊर्जा विकास का आधार है ऊर्जा के द्वारा ही जीवमण्डलीय वृहद् पारिस्थितिक तन्त्र परिचालित होता है। ऊर्जा संसाधनों को उनके स्रोतों के आधार पर निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है– (i) कोयला, (ii) खनिज तेल, (iii) प्राकृतिक गैस, (iv) प्रवाहित जल, (V) आणविकईंधन, (vi) ज्वारभाटा, (vii) सौर्यशक्ति, (vii) पवन ऊर्जा (i) भूतापीय ऊर्जा आदि। ऊर्जा के पारम्परिक स्रोत कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक

गैस आदि निश्चित मात्रा में पाये जाते हैं। अतः एक निश्चित समयोपरान्त इनका समाप्त होना तय है। एक अनुमान के अनुसार कोयला एवं पेट्रोलियम क्रमशः आगामी 450 तथा 40 वर्षों में समाप्त हो जायेंगे। यदि नवीन खोज नहीं हुई व वर्तमान दर से दोहन हो रहा तो इस प्रकार ऊर्जा संसाधनों के प्रबन्धन का महत्त्वपूर्ण पक्ष ऊर्जा के अपरम्परागत स्रोतों का विकास करना है। इन अपरम्परागत या असीमित ऊर्जा संसाधनों में सौरऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, बायो गैस आदि महत्त्वपूर्ण है। इन साधनों को विकसित करने, प्रचारित करने और उपयोग में लेने में भी प्रबन्धन की भूमिका प्रभावी हो सकती है। सामान्यतया ऊर्जा प्रबन्धन के निम्न पक्ष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं–

(i) जीवाश्मीय ईंधनों (Fossil fuels Coal and Petroleum) के उपयोग एवं पर्यावरण प्रबन्धन

(ii) ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों का विकास करके इनके प्रचलन को बढ़ाना।

(iii) जीवाश्मीय ईंधनों के उपयोग से पर्यावरण को होने वाली हानि को प्रबन्धित करना।

(iv) इनके नये स्रोतों की खोज करना।

(v) जलविद्युत हेतु ऐसे सुविधाजनक स्थानों का चयन करना जिनका पर्यावरण पर प्रभाव न्यूनतम हो ।

(vi) परमाणु संयन्त्रों की स्थापना एवं देखरेख की उचित व्यवस्था हो ताकि चरनोबिल जैसी दुर्घटनाओं से बचा जा सके।

(vii) ऊर्जा संरक्षण के प्रति जनता को सचेत किया जाय।

(6) खनिज सम्पदा का प्रबन्धन (Management of Mineral Resources)–खनिज सम्पदा औद्योगिक विकास का आधार है, जिस कारण इनका अत्यधिक दोहन हो रहा है। अतिदोहन से कई महत्त्वपूर्ण खनिज संसाधन समाप्ति की ओर हैं। अतः खनिज सम्पदा का प्रबन्धन किया जाना चाहिए, जिसके निम्न पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं–

(i) खनिजों का राष्ट्रीय स्तर पर सर्वेक्षण करके इनके उपयोग के लिए सुनियोजित प्रारूप तैयार करना।

(ii) खनिजों के उपयोग को नियंत्रित करना।

(iii) खनिजों के खनन के परिणामस्वरूप होने वाली पर्यावरणीय हानियों को भी प्रवन्धित करना चाहिए। इनमें वनोन्मूलन एवं विभिन्न प्रकार के प्रदूषण प्रमुख हैं।

(iv) खनन कार्य अत्यधिक तकनीकी की सहायता से किया जाये ताकि मानवीय स्वास्थ्य पर न्यूनतम प्रभाव पड़े।

(v) खनिजों के विकल्पों की खोज करनी चाहिए।

संसाधन उपयोग एवं पर्यावरण प्रबन्धन Resources Utilization andEnvironmental Management

आरम्भिक समय में पर्यावरण का दोहन सन्तुलित मात्रा में होता था, किन्तु बढ़ती जनसंख्या के साथ ही संसाधनों का अन्धाधुन्ध दोहन आरंभ हुआ तथा पर्यावरण प्रवन्धन की आवश्यकता महसूस

की जाने लगी। संसाधनों के अतिदोहन का क्रम अनवरत चलता रह जिसमें पर्यावरणीय तत्त्वों का ह्रास होने लगा, परिणामस्वरूप पर्यावरण के घटक अपने प्राकृतिक स्वरूप में न रहकर स्वतंत्र क्रिया में असमर्थता प्रकट करने लगे। पर्यावरण के अत्यधिक शोषण से वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व संकट में है, जिसे पर्यावरण प्रबन्धन द्वारा पुनः स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार विकासीय कार्यों के लिए नव्यकरणीय तथा अनव्यकरणीय संसाधनों का विभिन्न रूपों में उपयोग करना दुर्लभ एवं अमूल्य संसाधनों का संरक्षण तथा स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरणीय गुणवत्ता का परिरक्षण (Preservation) करना आवश्यक है।

पर्यावरण प्रवन्धन के अन्तर्गत पर्यावरण के उपयुक्त उपयोग करके अधिकाधिक मानवोपयोगी बनाया जाता है जिसके लिए पर्यावरण के विभिन्न घटकों का सन्तुलित विकास किया जाता है। इस प्रकार यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत नियोजन पुनरावलोकन, मूल्यांकन एवं उपयुक्त निर्णय करके सीमित संसाधनों का उपयोग तथा प्राथमिकताओं में परिवर्तन आवश्यक है जिसके परिणामस्वरूप वे वास्तविक जीवन में उपयोगी हो सकें। डेनिज मीडोज (1971) के अनुसार, ''पर्यावरण प्रबन्धन की संकल्पना सामान्यतया पर्यावरण प्रतिरूपों से सम्बन्धित होती है, यह सुनिश्चित करता है कि पूँजी, वार्षिक कृषि निवेश तथा भूमि विकास में वृद्धि के साथ खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में भी वृद्धि होगी, परन्तु पर्यावरण प्रबन्धन का प्रतिरूप इन कारकों की सीमितताओं, आने वाली चुनौतियों तथा समस्याओं से निपटने के लिए नीतियों को भी सम्मिलित करता है।'

पृथ्वी पर जीवमण्डलीय पारिस्थितिकीय तन्त्र अपने प्राकृतिक सन्तुलन तथा स्थिरता को अपने वास्तविक स्वरूप में पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है, किन्तु वर्तमान औद्योगिक एवं तकनीकी विकास, परिवहन एवं संचार के साधनों में वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन सेआगे चलकर समस्याएं उत्पन्न होंगी

संसाधन उपयोग एवं पर्यावरण प्रबन्धन तथा संबंधित क्रियाओं ने इस सन्तुलन की दशा को अव्यवस्थित किया है। पर्यावरण प्रबन्धन एक जटिल प्रक्रिया है, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, एक समुदाय से दूसरे समुदाय में तथा एक भौगोलिक प्रदेश से दूसरे में विभिन्नता रखती है।

पर्यावरण प्रबन्धन के अन्तर्गत अग्र बिन्दुओं को महत्त्वपूर्ण माना गया है–

(1) प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन (Over expliotation) पर नियन्त्रण।

(2) मानव की अविवेकपूर्ण गतिविधियों पर रोक।

(3) पर्यावरण की विभिन्न प्रकार से सुरक्षा।

(4) विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय प्रदूषणों को नियन्त्रित किया जाना।

(5) जैव विविधता (Biodiversity) का संरक्षण ।

(6) पर्यावरण में पाये जाने वाले संसाधनों के आर्थिक महत्त्व में वृद्धि करना।

(7) भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को पोषणीय आधार (Sustainable base)प्रदान करना।

(8) सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाओं (NGO-s) में पर्यावरण प्रबन्धन के लिए समन्वय स्थापित करना।

(9) पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए उस पर निरन्तर निगरानी (Monitoring) व्यवस्था

करना।

(10) पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन के लिए मानवीय एवं संस्थागत साधनों को संगठित करना।

(11) पर्यावरणीय चेतना जगाने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा की व्यवस्था करना।

(12) पर्यावरण प्रबन्धन की दिशा में किये गये प्रयासों के परिणामों की निरन्तर निगरानी एवं यथासंभव सुधार करना चाहिए।

(13) पर्यावरण के बारे में निरन्तर शोधरत् रहते हुए पर्यावरण संरक्षण के उपाय खोजना।

पर्यावरण प्रबन्धन विश्व स्तर पर प्रत्येक राष्ट्र की आवश्यकता है जिसे मनुष्य के प्रकृति के साथ यथोचित समायोजन करके संभव बनाया जा सकता है। इस प्रकार पारिस्थितिकीय संतुलन एवं स्थिरता की व्यवस्थाओं के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण दोहन करना चाहिए। पर्यावरण प्रबन्धन के उपागम (Approaches of Environmental Management)–पर्यावरण प्रबन्धन के दो प्रमुख उपागम हैं–

(i) परिरक्षात्मक उपागम (Preservation Approach)

(ii) संरक्षणात्मक उपागम (Conservative Approach)

परिरक्षात्मक उपागम के अनुसार मानव को अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य (Adjustment) स्थापित करना चाहिए तथा प्रकति के साथ छेड़छाड़ की भावना नहीं रखनी चाहिए। यह उपागम व्यावहारिक नहीं है क्योंकि प्रकृति के उपयोग द्वारा ही विकास संभव है जबकि यह उपागम प्रकृति दोहन को निषेध मानता है। सामान्य रूप से मनुष्य को अपने विकास के लिए प्रकृति का विभिन्न रूपों में दोहन करना ही पड़ता है।

पर्यावरण प्रबन्धन के संरक्षणात्मक उपागम के अन्तर्गत प्रकृति के सन्तुलित दोहन को महत्त्वपूर्ण माना गया है। अर्थात् विकास को सतत् (sustainable) नीति का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना चाहिए ताकि विकास के साथ प्रकृति का सन्तुलन बरकरार रह सके। किसी भी पर्यावरण प्रबन्धन की रणनीति तैयार करते समय निम्न आधारभूत पारिस्थितिकीय नियमों एवं सिद्धान्तों को मद्देनजर रखना चाहिए–

1. जीवमण्डलीय पारिस्थितिक तन्त्र तथा अन्य उत्तरोत्तर लघु पारिस्थितिक तन्त्रों के जैविक एवं अजैविक (भौतिक) संघटक वृहद् स्तरीय जैव–भूरसायन चक्रों द्वारा एक–दूसरे से आबद्ध एवं अन्तर्सम्बन्धित हैं।
2. पृथ्वी पर पोषणीय जीवन (Sustainable life) पारिस्थितिक तन्त्र की मूल विशेषता है।
3. जब हम किसी वस्तु को फेंकते हैं, तो वास्तव में वह अदृश्य नहीं होती है।
4. सभी तन्त्र तथा समस्यायें एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप में अन्तर्सम्बन्धित हैं, अतः एकाकी समस्या का समाधान नहीं किया जाना चाहिए।
5. पृथ्वी के संसाधन सीमित हैं।

6. संसाधनों को बनाने के लिए तथा पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता के लिए प्रकृति को लाखों–करोड़ों वर्ष खर्च करना पड़ता है।

7. जब जीवीय प्रक्रमों का भौतिक घटनाओं के साथ सम्बन्ध हो जाता है तो अति प्रचण्ड प्रकोप एवं आपदायें उत्पन्न हो जाती हैं।

8. सभी जीवित जीव तथा भौतिक पर्यावरण परस्पर प्रतिक्रिया करते हैं

9. पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा प्रारूप तथा ऊर्जा प्रवाह ऊष्मा गतिकी के प्रथम एवं द्वितीय नियमों द्वारा नियंत्रित होता है।

10. पारिस्थितिक तन्त्र की उत्पादकता सौर ऊर्जा की उपलब्धता तथा पौधों की सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने की दक्षता पर निर्भर करता है।

पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न पक्षों को चार प्रमुख श्रेणियों के अन्तर्गत रखा जा सकता

(i) संसाधनों का प्रबन्धन (Management of Resources)

(ii) पर्यावरण अधिप्रभाव का मूल्यांकन (Environmental Impact Assessment)

(iii) पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण पर नियन्त्रण (Control over Environmental Degradation and Pollution),

(iv) पर्यावरणीय कार्यक्रम तथा योजनायें (Environmental Programmes and schemes)

6.6 सारांश

संसाधन पारिस्थितिकी की एवं संसाधनों के संरक्षण के लिए उत्पाद एवं नव्यकरण के मध्य ऐसा संतुलन स्थापित करना ताकि निरंतर उपयोगी संसाधन प्राप्त हो सकें। संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन के लिए विभिन्न उपायको अपनाकर संरक्षण एवं सन्तुलन किया जा सकता है। वन से संसाधनों का प्रबन्ध, जल संसाधन प्रबंधन, खनिज सम्पदा प्रबंधन, वन्यजीवों का प्रबंधन आदि के माध्यम से इस इकाई का अध्ययन संसाधन पारिस्थितिकी को समझने में सहायक होगा।

6.7पारिभाषिक शब्दावली

पुनर्वनरोपण (Reforestation). **नष्ट हुए क्षेत्रों में पुनः वनावरण करना।**

6.8.1 दीर्घ उत्तरीय प्रशोत्तर–

प्रश्न–1 संसाधन पारिस्थितिकी के बारे मे विस्तार से बताइये?

प्रश्न–2 संसाधन संरक्षण के नियम बताइये ।

6.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1 जल संरक्षण या प्रबन्धन के बारे में बताइये

प्रश्न–2ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण के बारे में बताइये।

6.8.3 विकल्पीय प्रश्न–

प्रश्न–1 Ecology and Environmental Managementपुस्तक किसकी है?

(अ) क्रिस पार्क (ब) क्लॉमन (स) फॉक्स (द) जिवोन्सकी

प्रश्न–2 पृथ्वी पर कुल जल का कितना प्रतिशत जल बर्फ के रूप में पाया जाता है–

(अ) 4% (ब) 2% (स) 5% (द) 6%

सन्दर्भ सूची ग्रन्थ–

1. डॉ बी. सी जाट "ससाधन भूगोल'' मलिक बुक कम्पनी जयपुर
2. प्रो0 जगदीश सिंह संसाधन भूगोल ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
3. Dr. Alka Gautam: Resources Geography Sharda Book Bhawan Prayagraj

इकाई–7मिट्टी संसाधन, वर्गीकरण, वितरण,मृदा अपरदन एवं संरक्षण, भारत में मिट्टी सरक्षण

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मिट्टी संसाधन

7.4 मृदा भौतिक वर्गीकरण

7.5 मृदा की विशेषताएँ

7.6 मृदा संरचना के प्रकार

7.7 मृदा परिच्छेदिका

7.8 मृदा वर्गीकरण

7.9 मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक

7.10 मृदा का वर्गीकरण एवं वितरण

7.11 वृहद मृदा वर्गीकरण तंत्र

7.12 मृदा अपरदन एवं संरक्षण

7.13 सारांश

7.14 पारिभाषिक शब्दावलीः

7.15 बोध प्रश्न

7.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना

मृदा एक प्राकृतिक संसाधन है संसाधन भूगोल मेंमृदा के प्रमुख संघटक, उत्पत्ति वितरण विशेषताएँ तथा मृदा की उपलब्धता का अध्ययन किया जाता है। धरातल पर स्थित एक पतली परत जिसमें खनिजों के कण, ह्यूमस, आर्द्रता, वायु आदि होते हैं मृदा (मिट्टी) कहलाती है। मृदा का निर्माण चट्टानों के छोटे–छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है। इस इकाई में मृदा निर्माण से मानव के उपयोग एवं मृदा संरक्षण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में मृदा संसाधन का वर्गीकरण, वितरण, मृदा संरक्षण के सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया जा रहा है। मृदा समाधन के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है–

(अ मृदा संसाधन की विषयवस्तु को स्पष्ट करना।

(ब विद्यार्थी मृदा के निर्माण, वर्गीकरण, उपयोग, वितरण, संरक्षण के विषय मे पहुँच बना सकेंगे

(स) मृदा संसाधन के विश्व वितरण एवं मृदा की विशेषताओं एवं प्रकारों को स्पष्ट करना।

(द) विद्यार्थियो को मृदा संसाधन की उपयोगिता एवं संरक्षण के बारे में अवगत करना।

7.3 मिट्टी संसाधन (Sail Resources)

मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो एक संसाधन के रूप में अन्य संसाधनों को प्रत्यक्ष रूप से आधार प्रदान करती है। धरातल पर स्थित ढीले तथा महीन कणों से निर्मित एक पतली परत जिनमें विभिन्न खनिजों के कण, ह्यूमस, आर्द्रता, वायु आदि संयुक्त होते हैं, मृदा (मिट्टी) कहलाती है। सामान्य रूप में मृदा का निर्माण मूल चट्टानों के विघटन तथा अपघटन (वियोजन) द्वारा होता है जिसे समय के साथ विभिन्न प्रकार की जलवायु प्रभावित करती है। प्रसिद्ध विद्वान रमन ने (1917) मृदा की निम्न परिभाषा दी है, ''मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी अपक्षयित (weathered) ठोस पपड़ी की परत है, जो चट्टानों के टूटने व रासायनिक परिवर्तन से बने छोटे–छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है।''

डॉ. बेनेट के शब्दों में, "धरातल पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की ऐसी परत जो मूल चट्टान व वानस्पतिक अंश के संयोग से बनती है, मिट्टी कहलाती है।'' अतः मृदा भूपृष्ठ पर व्याप्त चट्टानों के अपक्षय द्वारा निर्मित होती है, जिसका उस भूपृष्ठ पर पाये जाने वाले जीव–जन्तु, पादप, जलवायु दशाएँ आदि प्रभावित करती हैं एक निश्चित समय के अन्तराल पर मृदा निर्माण पूर्ण हो पाता है। इस प्रकार मृदा पर्यावरणीय एवं जीवीय प्रक्रमों का संयुक्त प्रतिफल होती है तथा इसका विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले वातावरण में विभिन्न तरह की वनस्पति, जन्तु, इसके नीचे स्थित शैलों, भूपृष्ठ तथा समय के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। मृदा के अध्ययन के अन्तर्गत मृदा के संघटन, इसकी विशेषताँओं, मृदा परिच्छेदिका तथा मृदा निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

कार्बनिक पदार्थ 35%

अकार्बनिक पदार्थ – 45%

जल 25%

कार्बनिक पदार्थ

मृदा संसाधनहो मृत, मिट्टी के निर्माण एवं परिवर्तन में बड़े योगदान देते हैं। ये आकार के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में मिलते हैं। बड़े आकार वाले जन्तु मिट्टियों तथा पत्तियों के ढेरों में रहते हैं। इनके शरीर की लम्बाई एक सेण्टीमीटर से अधिक होती है। ये से रीढ़दार एवं बिना रीढ़ वाले दोनों प्रकार के होते हैं।

सारिणी– 7.1 मुदा के प्रमुख संघटक

प्रमुख संघटक	संगठनका प्रतिशत
1. जीवांश पदार्थ	5 से 12
2. मृदा वायु	15 से 35
3.अजैविक पदार्थ	38 से 47
4. मृदा जल	15 से 35

इनमें छछूंदर छोटा अमडिलो खरगोश, गिलहरी, चूहा साँप आदि रीढ़दार तथा भूकीट, पौधा, शम्बुक, मकड़ा तथा किलनी बिना रीढ़दार जन्तुओं में प्रमुख हैं। मध्यम आकार के जन्तुओं के शरीर की लम्बाई एक सेन्टीमीटर से 0.2. मिलीमीटर के मध्य होती है। इसके अन्तर्गत कुटकी, मकड़ी, स्प्रिंगटेल कीट, लारवा सहस्त्रपादकोट (Millipopde), समपाद जीव (Isopods) आदि महत्त्वपूर्ण जीव हैं। लघु आकार वाले जीवों के शरीर की लम्बाई 0.2 मिलीमीटर से कम होती है। इस श्रेणी में बैक्टीरिया सदृश्य जीवों को सम्मिलित किया गया है। मृदा में निवास करने वाले जीवों के कुछ पक्ष मिट्टियों के गुणों व विशेषताओं के विकास के लिए अति महत्त्वपूर्ण होते हैं।

3.अजैविक पदार्थ(Inorganic Matter) या खनिज पदार्थ

ज्ञातव्य है कि मृदा का निर्माण मूल चट्टानों से होता है इस प्रकार खनिज पदार्थ मृदा के

निर्माण में अति महत्त्वपूर्ण घटक होते हैं, क्योंकि ये मृदा निर्माण में सहायक होते हैं। इनमें हार्नब्लेन्ड, आलविन, बायोटाइट, हाइपरस्थीन, पोटाश, ओजाइट, कैल्सिक, कैल्सिक– अलकली, प्लैजियोक्लेज, क्वार्टज, फेल्सफार, मस्कोबाइट आदि को सम्मिलित किया जाता है। मृदा मण्डल में ऊपर से नीचे

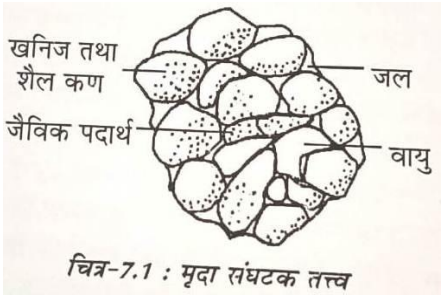

चित्र-7.1 : मृदा संघटक तत्त्व

जाने पर खनिजों का आकार बढ़ता जाता है। तथा खनिजों का निर्माण विघटन पुनः निर्माण चक्रीय रूप में होता रहता है परन्तु सदैव यह आवश्यक नहीं कि किसी क्षेत्र विशेष के खनिज पदार्थ एवं वहाँ की आधार शैली में समानता पाई जाये, क्योंकि वर्तमान समय में अधिकांश मृदाएँ आयातित है अर्थात् जब आधार शैल का अपक्षय द्वारा विघटन तथा अपघटन होता है, तो अपरदन के कारकों द्वारा यह वियोजित पदार्थ अन्यत्र जमा होता रहता है।

3.मृदा जल (Soil Water**)**

मृदा कणों के बीच रन्ध्र अवकाशों में उपस्थित जल को मृदा जल कहते हैं। प्रत्येक मृदा के रन्धावकाश अंशतः वायु और जल से भरे रहते हैं। यह विद्यमान जल की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता उसमें रहने वाले पौधों तथा जन्तुओं को प्रभावित करती है। मुदा में जल का रहना अति अनिवार्य है। यह सूक्ष्म जन्तुओं एवं वनस्पतियों को आश्रय प्रदान करता है। विलेय (Soluble) जल ऑक्सीजन को मृदा में ले जाता है। यह मृदा के तापमान को सन्तुलित अवस्था में रखता है। शीतकाल में तुषार के प्रतिकूल प्रभाव से फसलों की रक्षा करता है। जल एक सर्वव्यापी विलायक है, जो अधिकांश आवश्यक पोषक तत्वों को घोलकर पौधों के विभिन्न अंगों की आवश्यकतानुसार पूर्ति करता है मृदा में स्थित जल की मात्रा का निर्धारण जल वर्षा (Precipitation) तथा हिमद्रवित जल के मृदा में अन्तः संचरण की दर एवं मृदा की जलधारण क्षमता के आधार पर किया जाता हैं।

7.4 मृदा जल का भौतिक वर्गीकरण(Physical Classification of Soil Water)

प्रसिद्ध मृदा वैज्ञानिक ब्रिग्स (Brigg) ने मृदा जल का भौतिक ढंग से वर्गीकरण करके निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया है–

(i) आर्द्रताग्राही (Hygroscopic Water)

(ii) केशीय जल (Capillary Water)

(iii) गुरूत्व (Gravitational Water)

(i) आर्द्रताग्राही (Hygroscopic Water)–यह जल शुष्क मृदा द्वारा वायुमण्डलीय जलवाष्प को अवशोषित करके ग्रहण किया जाता है। यदि शुष्क मृदा को 15°c तापमान पर लगभग 8–12 घण्टे तक गर्म किया जाए तो जल की कुछ मात्रा मृदा से बाहर निकल आएगी एवं जल की इस न्यूनतम मात्रा को ही आर्द्रताग्राही जल कहते हैं। यह जल एक पतली झिल्ली के रूप में मृदा कणों या

जीवांश पदार्थों के चारों ओर आसंजन बल के साथ धारित होता है। यह जल तो वाष्पीकरण से नष्ट होता है एवं इसमें गति नहीं होती है। इसे व्यर्थ जल कहा जाता है क्योंकि मृदा के जैविक तत्व इसका उपयोग नहीं कर सकते हैं। मृदा के गठन, कणिकीय पदार्थ की मात्रा आर्द्रता एवम तापमान इसकी मात्रा को निर्धारित करते हैं। मृतिका में बालू की अपेक्षा आर्द्रताग्राही जल अधिक होता है। आर्द्रता बढ़ने से इसकी मात्रा बढती है तथा तापमान बढ़ने से कम भी होती है।

(ii) केशीय जल (Capillary Water)–केशीय जल (सुलभ जल) मृदा कणों के चारों और एक पतली परत के रूप में चिपका रहता है। इसे केशीय जल कहते हैं। यह जल मृदा कणों के चारों ओर छल्ले के आकार को आर्द्रता प्रभावित करती है, क्योंकि जैसे–जैसे आर्द्रता की मात्रा बढ़ती है इसका आकार भी बढ़ता जाता है। जब जल की यह परत पास वाले मृदा कणों से संयोजित होती है तो इन अधिकांश रन्ध्रावकाशों में जल भर जाता है तथा शेष में वायु विद्यमान रहती है। केशीय जल मृदा कणों के पृष्ठीय बलों द्वारा धारित रहता है एवं यह आर्द्रताग्राही जल की तरह मृदा कणों से कठोरता से नहीं चिपकता, परन्तु इतनी कठोरता अवश्य रखता है कि इसे पृथ्वी का गुरुत्वबल पृथक न कर सके। केशीय जल के अणु स्वतंत्र गतिशील एवं द्रव अवस्था में होते हैं। इसी कारण आसानी से वाष्पीकृत भी हो जाते हैं केशीय जल को सुलभ जल के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसके मृदा कणों के दृढ़ता से चिपके रहने पर भी पेड़–पौधे इसका उपयोग कर लेते हैं।

(iii) गुरुत्वीय जल (Gravitational Water)–मृदा में जल विभिन्न रूपों में पाया जाता है। जब इस जल का गुरुत्वाकर्षण द्वारा मृदा के नीचे अन्तःस्त्रवण (Percolation) होता है तो इसे गुरुत्वीय जल या स्वतन्त्र जल कहते हैं। गुरुत्वीय जल मृदा कर्णों के मध्य व्याप्त स्थानों के अन्दर गति करता है। यह जल एक निश्चित सीमा तक भर जाता है जहाँ से आगे इसका अन्तःस्त्रवण नहीं हो सकता। इस स्थान को संतृप्त मण्डल (Zone of Saturation) कहते हैं। मृदा में गुरुत्वीय जल की मात्रा अनेक स्थितियों से सम्बन्धित रहता है जिनमें वर्षा की मात्रा एवं जल संग्रह का स्थान प्रमुख है। मृदा के अन्दर गुरुत्वीय जल विभिन्न कार्य करता है। प्रथमतः यह मृदा के रंग, संरचना एवं गठन को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। जैसे ही गुरुत्वीय जल मृदा में प्रवेश कर गति करता है तो जल अवमृदा (Topsoil) के सूक्ष्मतम कणों को साथ ले लेता है। इस प्रकार ऊपरी मृदा के संघटकों का यह स्थानान्तरण अपवहन (Eluviation) कहलाता है। इसके उपरान्त यह जल उप मृदा (Sub soil) प्राप्त कणों का स्पंदन से करता हुआ अपने साथ ले जा कर जमा करता है मृदा की इस प्रक्रिया को संपोहन या विनिक्षेपण (Illuviation) कहते है।इस प्रकार गुरूत्वीय जल मृदा कणों को एक परत से दूसरी परत में परिवहन व मिश्रित करने वाला अभिकारक भी है। इसका प्रभाव यह होता है कि उपरी मृदा मोटे कणों वाली बन जाती है क्योंकि महीन (Finer) कण तो घुलकर इसके साथ निचली मृदा में चले जाते हैं। इस प्रकार निचली मृदा संघन एवं अच्छे गठन वाली बन जाती है।

3.मृदा वायु (Soil Air)

मृदा में बड़ा भाग वायु का होता है जो मृदा के कणों तथा पुंज के मध्य खाली स्थानों में पायी जाती है। इनके मध्य व्याप्त रिक्त स्थान जब जल से भर नही पाते तो वायु से भर जाते हैं मृदा वायु अधिकांश धरातल वायु पर पायी जाने वाली वायु मण्डल के सदृश्य होती है। इसमें ऑक्सीजन की मात्रा कम तथा कार्बन डाई ऑक्साइड एवं जलवाष्प की मात्रा अधिक पायी जाती है। आर्द्रताग्राही एवं केशीय जल की उपलब्धता के कारण आर्द्रता आपेक्षिक भी पायी जाती है। मृदा वायु में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु तथा पौधों को आवश्यक मात्रा में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड की पूर्ति करती है। इस प्रकार वायु की नियमित पूर्ति में मृदा कणों के मध्य पाये जाने वाला जल बाधा डालता है। मृदा वायु में पायी जाने वाली ऑक्सीजन तथा कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में कमी एवं

बढ़ोत्तरी होती रहती है। अच्छे वातन (Areation) की पृष्ठीय सतह की मृदा में ऑक्सीजन की मात्रा 18 से 21 प्रतिशत तक होती है। गहराई पर इसकी मात्रा में कमी आती है ज्ञातव्य है कि भूतल के ऊपर वाले वायुमण्डल में ऑक्सीजन 20.97 प्रतिशत, कार्बन डाई ऑक्साइड 0.03 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79 प्रतिशत तथा जबवाष्प 100 प्रतिशत से कम पायी जाती है, जबकि घास के मैदान की मृदा में ऑक्सीजन 18.40 प्रतिशत, कार्बन डाई ऑक्साइड 1.6 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79.2 प्रतिशत तथा जलवाष्प प्रायः 100 प्रतिशत विद्यमान रहती है। इसी प्रकार कृषि योग्य मृदा में ऑक्सीजन 20.70 प्रतिशत, कार्बन डाई ऑक्साइड 0.10 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79.2 प्रतिशत, जलवाष्प प्रायः 100 प्रतिशत पायी जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भू–सतह पर पायी जाने वाली कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में पायी जाने वाली मात्रा से अधिक होती है, क्योंकि मृदा के अन्दर मृत जीवांशों के विघटन से कार्बन डाई ऑक्साइड का सतत् उद्‌भव होता रहता है। इसी प्रकार मृदावासी जीवों द्वारा श्वसन के कारण धीरे–धीरे ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आ जाती है।

7.5 मृदा की विशेषताएँ(Characteristics of Soll)

मृदा में अनेक भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं, जो उसके व एवं विभिन्नता बनाने में उपयोगी होते हैं। इनमें रंग, गठन, संरचना, अम्लीयता और क्षारीयता तथा जल एवं वायु को रोकने व संचारित करने की क्षमता आदि सम्मिलित हैं।

1. **रंग (Colour)**–मिट्टी के रंग से भौतिक एवं रासायनिक गुणों की जानकारी प्राप्त होती है। मिट्टी का रंग विभिन्न प्रकार का होता है जैसे–लाल, पीला, भूरा, काला, धूमिल (Grey), सफेदिया (Nearwhite) आदि। ये रंग किसी भी विशिष्ट मृदा की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं को जानकारी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, जीवांशयुक्त मृदा का रंग काला या भूरा होता है, जबकि इनकी उच्च मात्रा होने तथा वियोजित जैविक तत्वों के पाये जाने पर मृदा काली या गहरी भूरी (Dark Brown) होती है जैसे ही मृदा में अपक्षालन (Leaching) तथा न्यून जैविक वियोजन के परिणामस्वरूप जीवांश (Humus) की मात्रा कम होती है, इसका रंग हल्का भूरा या धूमिल (Grey) हो जाता है। मृदा में अधिक मात्रा में जीवांश (Humus) का पाया जाना सामान्यतया मृदा के उच्च उपजाऊ होने का संकेत होता है। यह जीवांश मृदा पर स्थित पेड़–पौधों को मृदा के पोषक तत्त्वों के ग्रहण करने में भी आवश्यक होते हैं। कुछ भागों में बिना जीवांश या कुछ मात्रा में जीवांश होने पर मृदा का रंग काला देखा गया है। मृदा का लाल एवं पीला रंग लौह तत्त्वों की उपस्थिति के कारण पाया जाता है। आर्द्र क्षेत्रों में हल्की धूसर या सफेद मृदा इस बात का संकेत है कि इनमें विद्यमान लौह तत्त्वों का अपक्षालन हो गया है, जबकि शुष्क क्षेत्रों में सफेद तथा हल्का धूसर रंग नमक की उच्च मात्रा का सूचक है। भूरे रंग की मृदा में ऑक्सीजन की कमी लोहे एवं जीवांशों की कमी का संकेतक है। जब मिट्टी के खनिज पदार्थ घुलकर निकल जाते हैं तो उसका रंग पीला हो जाता है। ऐसी मिट्टी अपूर्ण जलप्रवाह वाले क्षेत्रों में मिलती है। यह बहुत ही कम उपजाऊ शक्ति वाली होती है।

अतः मृदा रंग की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं का विवरण देने के साथ ही मृदा के गुणों एवं उपयोग की संभावनाओं (Potential) की भी उपयुक्त जानकारी प्रदान करता है।

2. **गठन (Texture)**–मृदा विभिन्न आकार के छोटे–छोटे कर्णों से मिलकर निर्मित होती है। ये विभिन्न कण कंकड़, बालू, सिल्ट और मृतिका के होते हैं। इनके कणों के आकार में आपेक्षिक अनुपात होता है जिनके परिणामस्वरूप मृदा में मोटापन एवं महीनता होती है। इस प्रकार मृदा कणों के आकार को गठन कहते हैं।मृत्तिका के कणों का व्यास 0.002 मि.मि. से कम होता है।

सारणी–7.2 : मृदा कण वर्ग

वर्ग का नाम	व्यास (मिमी.)
मोटी बजरी (Coarse Gravel)	2 से अधिक
महीन बजरी (Fine Gravel)	1–2
मोटी बालू (Coarse Sand)	0.5–1
मध्यम बालू (Medium Sand)	0.25–0.5
महीन बालू (Fine Sand)	0.1–0.25
अत्यधिक महीन बालू (Very Fine Sand)	0.05–0.1
सिल्ट (Silt)	0.002–0.1
मृत्तिका (Clay)	0.002 से कम

सिल्ट मृदा के कणों का आकार 0.002 मि.मी से 0.5 मिमी. होता है,बलुई मृदा का कणाकार 0.05 से 2.0 मि.मी. तक होता है जबकि 2.6 मि.मी. से अधिक व्यास के कणाकार वाली मृदा बजरी या चट्टानी विखण्डित मृदा की श्रेणी में आती है।

कणों के आकार के अनुसार मुख्य रूप से मृदा को तीन वर्गों में बाँटा गया है– बालू सिल्ट और मृत्तिका। बालू के कण सबसे बड़े सिल्ट के मध्यम तथा मृत्तिका के सबसे महीन कण होते हैं। इसी आधार पर तीनों वर्गों का विवरण निम्नलिखित हैः–

(i)बालू (Sand)

बालू के कण मृदा को पृष्ठीय क्रियाशीलता कम होने के कारण रासायनिक एवं भौतिक गुणों में किसी भी प्रकार का योग नहीं देते हैं। इस मृदा में जल निकास तथा वायु संचार में भी सुविधा रहती है। इनमें जल का वाष्पन एवं अन्तःस्पन्दन भी तीव्र गति से होता है अतः ये मृदाएँ शुष्क कृषि के योग्य नहीं हैं। इसको कृषि योग्य बनाने हेतु जीवांश का मिश्रण किया जाना आवश्यक होता है।

(ii)सिल्ट (Silt)–

सिल्ट में 50 प्रतिशत तक बालू कण, 50–100 प्रतिशत सिल्ट तथा 20 प्रतिशत तक मृत्तिका की मात्रा होती है। इसमें बालू की अपेक्षा पृष्ठीय तनाव होता है तथा जल का अधिशोषण भी अच्छा होता है। 20 प्रतिशत से अधिक महीन सिल्ट वाली मृदाओं में कार्य करना कठिन होता है व जल का निकास भी अच्छा नहीं होता है, अतः वे सिंचित क्षेत्रों वाली कृषि के अयोग्य होती हैं। बालू एवं सिल्ट को कमजोर क्रियाशीलता के कारण इन्हें मात्र मृदा ढाँचा कहा जा सकता।

(iii)मृतिका (Clay)–

सारणी–7.3 : मृदा गठन वर्गों का विवरण

मृदा	विभिन्न कणों का सापेक्ष अनुपात		
	बालू	मृत्तिका	सिल्ट
1. बलुई दोमट	65	15	20
2. मृत्तिका दोमट	33.3	33.3	33.3
3. दोमट	40	18	42
4. सिल्ट मृत्तिका	10	45	45
5. सिल्ट दोमट	17	13	70

Source : USDA Yearbook of American Agriculture.

मृतिका वर्ग की मृदा में 50 प्रतिशत बालू 50 प्रतिशत तक सिल्ट तथा 30–100 प्रतिशत तक मृतिका के कण विद्यमान रहते हैं मृतिका के कण बालू एवं सिल्ट से अधिक क्रियाशील होने के कारण मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में एक सीमा तक योगदान करते हैं कि मृतिका कणों की उपस्थिति मृदा को उपजाऊ बनाती है, जबकी अधिक होने पर हानिकारक प्रभाव दृश्यगत होते हैं, इनमें जल को अधिक समय तक अवशोषित कर संचित रखने की क्षमता होती है, अतः ये मृदाएँ शुष्क कृषि के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। इनके कण अत्यधिक महीन होने के कारण यदि मृदा में 50 प्रतिशत अधिक मृतिका कण हो जाते हैं तो जल एवं वायु के संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है और अतिशीघ्र हो जलाक्रान्ति हो जाती है। इन पर मौसम का भी प्रभाव पड़ता है। ये मृदाएँ शीतकाल में शीतल तथा ग्रीष्मकाल में सिकुड़ कर टूट जाती है। इस प्रकार उपयुक्त अनुपात से कम या अधिक मात्रा में मृतिका की उपस्थिति हानिकारक सिद्ध होती है।

उपयुक्त तीनों कण वर्गों के अनुसार मृदा का वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार कणों के नामकरण से मृदा का गठन ज्ञात होने के साथ ही मृदा के विभिन्न गुणों को ज्ञात किया जाता है। जब इन तीनों कण वर्गों को एक विशेष अनुपात में मिश्रित करते हैं तो इस मृदा मिश्रण को एक विशेष नाम दिया जाता है जिसे मृदा गठन वर्ग कहते हैं। इनमें बालू मृदा, बलुई दोमट, सिल्ट दोमट, चिकनी दोमट, मृतिका, सिल्ट आदि को सम्मिलित करते हैं।

मृदा के कणाकार मृदा का महत्त्वपूर्ण गुण है। यह पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक मृदा नमी तथा वायु के ग्रहण क्षमता निर्धारण में सहयोग करता है। मृदा में जल संग्रह, मृदा की जुताई, वातन और उर्वरता की भी मृदा गठन प्रभावित करता है, जैसे– चिकनी मृदा में जल का प्रवाह बहुत धीमी गति से होता है, जिसके कारण जलाक्रान्त की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा वायु का वातन भी ठीक ढंग से नही जो पाता जबकि जल एवं वायु का संचरण कृषि का प्रमुख अंग होता है।

(3) संरचना(Structure)&

मृदा के संगठित एकांकी रूप में पाये जाने वाले समूहों को मृदा की संरचना कहते हैं। इस संरचना का निर्माण मिट्टी के कण आपस में संगठित हो जाते हैं तो इन संगठित पिण्डों की मिट्टी की संरचना कहते हैं। इस संरचना का निर्माण मिट्टी के प्राथमिक कणों (बालू, सिल्ट, मृतिका) द्वारा होता है। मृदा की संरचना मृदा की आर्द्रता, वायु, तापमान जलधारण क्षमता को प्रभावित करती है मृदा की संरचना जल, वायु, के सम्बंध को स्थापित करती है। यह मृदा में जल और वायु की मात्रा को नियंत्रित करते है, जिससे मृदा पोशक तत्व प्राप्त करके वृद्धि करती हैं। इस प्रकार मृदा संरचनाका निम्नलिखित महत्त्व हैः–

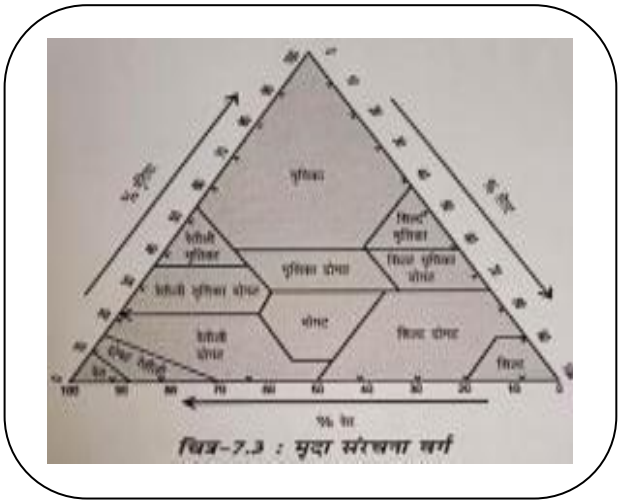

चित्र– 7.3: मृदा संरचना वर्ग

(i) मृदा की संरचना, मृदा में जैविक तथा खनिज तत्वों को प्रदर्शित करती है।

(ii) मृदा संरचना मृदा जल एवं वायु के संचलन को प्रभावित करती है।

(iii) यह मृदा को जल एवं वायु धारण की क्षमता को प्रदर्शित करती है।

(iv) यह मृदा के अपरदन की प्रकृति तथा मात्रा को निर्धारित करती है।

(v) मिट्टियों की जुताई तथा पौधों को वृद्धि भी संरचना से नियंत्रित होती है।

(vi) यह जल की पारगम्यता एवंरन्धता को प्रभावित करती है।

7.6 मृदा संरचना के प्रकार (Types of Soil Structure)

मृदा संरचना में मृदा के प्राथमिक कणों तथा कण पुंज की आवृत्ति व्यवस्था, आकार तथा गुणों का अध्ययन किया जाता है। मृदा वैज्ञानिकों ने मृदा संरचना को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है, जो निम्नलिखित हैः–

(i)कोणीय (Granular)–इनके कणपुंज अपेक्षाकृत कम रन्ध्र वाले होते हैं। यह संरचना उपजाऊ मृदाओं में पायी जाती है, जिनमें कि जीवांश पदार्थ (Humus) की मात्रा अधिक होती है। इसके कण पुंजों का आकार 1–10 मिमी. होता है।

(ii)मृदु कणीय (Crumb)–इस वर्ग के कणपुंज अधिक रन्ध्र युक्त होते हैं, इनके कणपुंजों का आकार 1–5 मिमी. होता है।

(ब)खण्ड सदृश्य (Blocky)–खण्ड सदृश्य संरचना में कण पुंजों की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई (मोटाई) तीन अक्षो में समान अर्थात् घन आकृति में व्यवस्थित होते हैं और लगभग छः पृष्ठों और आठ कोनों का एक खण्डीय रूप धारण कर लेते हैं। खण्ड सदृश्य संरचना को इनकी दृढ़ता पर कोनों की रचना के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया गया है।

(i)कोणीय खण्डीय (Angular Blocky)–कोणीय खण्डीय संरचना में कण पुंजों के फलक चपटे, कोने व भुजायें समुचित, विकसित एवं तेज कोणीय होती हैं तथा कण पुंजों का आकार 5–50 मिमी. होता है।

(ii)उपकोणित खण्डीय (Sub- Angular Blocky)–उपकोणित खण्डीय संरचना में कोणे तथा भुजायें टूट–टूटकर घिस जाती हैं और खण्ड थोड़ा–सा मिश्रित गोलाकार रूप धारण कर लेता है।

(स)त्रिपार्श्व सदृश्य संरचना (Prismatic Structure)–इस तरह की संरचना में कणपुंजों को क्षैतिज अक्ष (Horizontal Axis) ऊर्ध्वाधर अक्षों की अपेक्षा अधिक विकसित नहीं होती है। यह संरचना शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पायी जाने वाली मृदाओं के संस्तरों (Horizon) में मिलती है। यह संरचना भी दो प्रकार की होती है।

(i) त्रिपाश्वीय (Prismatic)– त्रिपार्श्वीय संरचना में त्रिपार्श्व के शीर्ष चौरस (Plane), समतल और तीव्र धार वाली होती है। इनके कणपुंजों का आकार 10–100 मिमी. तक होता है।

(ii) स्तम्भी (Columnar)– इस प्रकार को संरचना में कण पुंजों के शीर्ष तथा किनारे गोल टोपीनुमा आकार के होते हैं। मृदा परिच्छेदिका के परिवर्तनशील होने और उसके कुछ संस्तरों के अपघटित होने की दशा में यह संरचना विकसित होती है। इसके कण पुजों का आकार 10–100 मिमी. होता है

(द) तश्तरीनुमा (Platy)–तश्तरीनुमा संरचना में कणपुंजों के ऊर्ध्वाधर अक्ष की अपेक्षा क्षैतिज अक्ष अधिक विकसित होते हैं। इनके कणपुंज तश्तरी सदृश्य होते हैं तथा एक–दूसरे को ढके रहते हैं। ऐसी संरचना मृदा परिच्छेदिका के किसी भी भाग में पाई जा सकती है। इन कणपुंजों (Ped) की मोटाई के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है

(i) स्तरीय (Laminar)–इस प्रकार की संरचना के कणपुंजों की मोटाई 1–2 मिमी. होती है, जो अन्य की तुलना में बहुत कम है।

(ii) तश्तरीय (Platy)– तश्तरीय संरचना में कणपुंजों की मोटाई 2–10 मि.मी होती है, जो स्तरीय से अधिकहै।

मृदा संरचना के उपर्युक्त सभी वर्ग कुछ बाहरी कारकों द्वारा प्रभावित होते हैं, जिनमें मृदा की नमी एवं पोषक तत्वों का चक्रीयकरण आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही मानवीय क्रियाओं से भी मृदा संरचना प्रभावित होती है।

(4) क्षारीयता एवं अम्लीयता (Alkalinity and Acidity)

मृदा में क्षारीयता एवं अम्लीयता का पाया जाना एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। क्षारीयता मृदा के पोषक तत्त्वों की पौधों के लिए उपलब्धता को निर्धारित करने में सहायक होने के साथ ही पौधों की वृद्धि पर भी नियंत्रण रखती है। अम्लीयता की मात्रा पाये जाने के कारण ही मृदा जल खनिज पदार्थों को घोलने एवं उनमें पाये जाने वाले पोषक पदार्थों को स्वतंत्र रूप देती है। क्षारीयता की मात्रा कम होने पर पोषक तत्त्व पौधों तक नहीं पहुँच पाते हैं। इसी प्रकार अम्लीयता भी पौधों की वृद्धि को निर्धारित करती है। मृदा में व्याप्त अम्लीयता की मात्रा अधिक होने पर पोषक तत्वों को घोलने का कार्य करती है तथा पोषक तत्त्वों को पौधों की पहुँच में आने वाले से पूर्व ही अपक्षालन (Leaching) हो जाता है। मृदा में पायी जाने वाली अम्लीयता एवं क्षारीयता को 0 से 14 तक की pH मापनी पर मापा जाता है। इसकी मृदा में व्याप्त हाइड्रोजन आयनों की उपस्थिति में मापते हैं। न्यून pH मान मृदा में अधिक अम्लीयता को प्रदर्शित करता है, जबकि उच्च pH का मान 7 होने पर सन्तुलन को अवस्था को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार मृदा में पायी जाने वाली अम्लीयता एवं क्षारीयता की मात्रा सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता को भी प्रभावित करती है।

7.7 मृदा परिच्छेदिका(Soil Profile)

भूसतह तथा नीचे स्थित शैलों के ऊपरी भाग के लम्बवत् संस्तरों को सामूहिक रूप से मृदा परिच्छेदिका कहते हैं। मृदा कई प्रकार की शैलों के टूटने व अपघटन, विघटन होने तथा उनमें जीवांशों के सम्मिश्रण से निर्मित होती है। मृदा कई मुलायम तत्त्वों से मिलकर बनी है। ये तत्त्व कई परतों के रूप में मृदा संस्तरों का निर्माण करते हैं जिनमें सबसे मुलायम व समान पदार्थों से बनी हुई परत सबसे ऊपर तथा सबसे कठोर चट्टानें सबसे नीचे स्थित होती हैं, जिसमें असमान प्रकार के मोटे कण मिलते हैं। मृदा परिच्छेदिका के संस्तरों को मुख्य रूप से दो प्रमुख वर्गों में मृदा परिच्छेदिका विभाजित किया गया है :–

(i)जैविक संस्तर(Organic Horizon),

(ii)खनिज संस्तर (Mineral Horizon)

(1) जैविक संस्तर (Organic Horizon)–मृदा परिच्छेदिका के ऊपरी भाग को जैविक संस्तर कहा जाता है। इसमें जीवित तथा मृत जैविक पदार्थ बहुतायत से पाये जाते हैं। इन संस्तरों को अंग्रेजी में Oअक्षर द्वारा इंगित किया जाता है (O=Organic)। इन जैविक संस्तरों का निर्माण पौधों एवं जन्तुओं से प्राप्त जीवांश पदार्थों के संचयन से होता है। जैविक संस्तर को दो उपवर्गों में विभाजित किया जाता है। O_1जैविक संस्तर सबसे ऊपरी भाग होता है। इसका निर्माण मूलरूप से पाये जाने वाले वानस्पतिक तत्त्वों से होता है। ये मूल वानस्पतिक तत्त्व शुद्ध या नवीन पत्तियों के ढेर तथा आंशिक रूप से अपघटित पत्तियों के ढेर होते हैं। नवीन पत्तियों वाले ढेरों को पर्णढेर संस्तर (Litter layer) भी कहते हैं। आंशिक रूप से अपघटित पत्तियों के ढेर को F संस्तर कहते हैं। O_1 के उपरान्त O_2 संस्तर आता है, जिसका निर्माण पौध तथा जन्तुओं के परिवर्तित अवशेषों से होता है। इस संस्तर में पाये जाने वाले जैविक तत्त्वों का एवं इनके मृत भागों को वियोजन द्वारा इतनी अधिक मात्रा में रूपान्तरण कर दिया जाता है कि बिना सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों के इनकी पहचान कठिन हो जाती है। O_2 संस्तर में स्थित इन वियोजित जैविक पदार्थों को जीवांश (Humud) कहा जाता

(2) खनिज संस्तर (Mineral Horizon)–इस संस्तरका निर्माण अकार्बनिक या अजैविक खनिजों से होता है। इन संस्तर में भी एक सीमित मात्रा में जैविक अंश पाये जाते है। खनिज संस्तर में भी ऊपर से लेकर अधः स्थल तक विभिन्नताएँ पायी जाती है, इसलिए इस संस्तर को भी 3 स्तरों में विभाजित किया जाता है, जिनका नामकरण भी अंग्रेजी के A B तथा C अक्षरों से किया गया है, इन तीनों (A, BतथाC) स्तरों में भी विभिन्नता होने के कारण इनको भी $A_1, A_2, A_3, B_1, B_2, B_3$, आदि उपविभागों में विभाजित किया गया है। ज्ञातव्य है कि जलवायु प्रदेशों में विभिन्न प्रकार से इन संस्तरों में भी विभिन्नता आ जाती है। खनिज संस्तर के उपविभागों का विवरण निम्न है :–

A_1 -यह खनिज संस्तर का सबसे ऊपरी संस्तर होता है, जिसकी स्थिति O_2 के ठीक नीचे होती है । इनमें खनिजों के साथ जैविक पदार्थों का भी मिश्रण पाया जाता है। इस संस्तर का रंग काला होता है एवं इसमें जीवीय घटनाएँ अधिक होती हैं।

A_2 –इसमें खनिजों का अधिकतम अपवहन होता है तथा अपक्षालन की क्रिया अधिक होने के कारण इस संस्तर को *अपवहन मण्डल (Eleniation Zone)* कहते हैं। इसका रंग हल्का होता है।

A_3–यह संस्तर A तथा B के मध्य *संक्रमित मण्डल (Transitional Zone)* होता है, परन्तु इसमें B की अपेक्षा A संस्तर के लक्षण अधिक मिलते हैं। यह मण्डल सभी प्रकार की मृदा परिच्छेदिकाओं में विद्यमान नहीं रहता है।

B_1–यह मण्डल A तथा Bके मध्य का मण्डल है, जिसमें Aकी अपेक्षा B की विशेषताएँ अधिक

मिलती हैं। यह भी हमेशा सभी प्रकार की मृदा परिच्छेदिकाओं में विकसित नहीं होता है।

B_2–इस संस्तर में केल्सियम कार्बोनेट या जिप्सम को गहराई तक अधिक मात्रा में विनिक्षेपण (Illuviation) होता है। इनके साथ जैविक पदार्थों भी विनिक्षेपण होता है, अतः इसे विनिक्षेपण मण्डल भी कहते हैं।

B_3 –यह B एवं C के मध्य का मण्डल है इसमें Cकी अपेक्षा संस्तर के लक्षण अधिक मिलते हैं। C–इस संस्तर को अधोस्तर भी कहते हैं। यहाँ आधार शैल के अपक्षपित पदार्थों को रिंगोलिथ कहते हैं। इसमें आधार शैलों (Parent Rocks) को संरचनात्मक विशेषताएँ पूर्णरूप से परिलक्षित होती है।

D–मिट्टियों के नीचे संगठित दृढ़ एवं कठोर आधार शैल के मण्डल को Dसंस्तर कहते हैं।इस प्रकार मृदा के मूल पदार्थ से लेकर ऊपरी सतह तक के विवरण को धरातल के किसी भी भाग पर मृदा परिच्छेदिका के माध्यम से देखा जा सकता है।

7.8 मृदा निर्माण (Soil Formation)

मृदा पृथ्वी की ऊपरी सतह पर एक परत के रूप में मिलती है, जिसका निर्माण चट्टानों तथा खनिजों के अपक्षय से हुआ है, जिसमें समय के साथ एवं विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में जीवांश पदार्थ का भी मिश्रण हो जाता है। मूल पदार्थ का निर्माण शैलों के अपक्षय से हुआ है तथा इस मूल पदार्थ पर मृदा निर्माण करने वाले सक्रिय (जलवायु, जीवमण्डल), निष्क्रिय (उच्चावच, मूलपदार्थ) और उदासीन (समय) कारकों की निरन्तर प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मृदा का निर्माण हुआ है।

मृदा निर्माण की प्रथम अवस्था(First Stage of Soil Formation)

मृदा निर्माण की प्रथम अवस्था में भूपर्पटी में स्थित शैलों का निर्माण एवं रासायनिक कारकों द्वारा अपघटन एवं विघटन होता है, जिसके परिणामस्वरूप मूल पदार्थ (Parent Material) का निर्माण होता है। भौतिक परिवर्तन के अन्तर्गत तापमान, जल, बर्फ एवं वायु कटाव और संचयन के अतिरिक्त जैविक तत्त्व भी प्रभाव डालते हैं जिनमें पौधों एवं प्राणियों का प्रभाव प्रमुख है। इन कारकों के सामूहिक प्रभावों के कारण चट्टानों का विघटन होता है। इसमें तापमान पाकर चट्टानें फैलती हैं एवं ठण्डी होकर सिकुड़ती हैं जिस कारण अपपत्रण (Exfoliation) द्वारा शैल चूर्ण का निर्माण होता है। इसी प्रकार जल, बर्फ और वायु द्वारा कटाव होता है तथा पेड़–पौधे अपनी जड़ों से चट्टानों का विघटन करते हैं। इन सभी भौतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल पदार्थ का निर्माण होता है।

रासायनिक परिवर्तन के द्वारा चट्टानों का अपघटन होता है। रासायनिक परिवर्तन में विलयन, जल, अपघटन, जलयोजन, ऑक्सीकरण, कार्बोनेशन तथा आम्लिक प्रक्रिया प्रमुख हैं। इन क्रियाओं द्वारा शैलों तथा खनिजों का विभिन्न रूपों में अपघटन होता है। जल अपघटन (Hydrolysis) में जल दोहरा अपघटक का कार्य करता है। जलायोजन द्वारा जल खनिजों के साथ रासायनिक संयोग करते हैं। इस प्रकार भौतिक, रासायनिक एवं जैविक अपक्षय के परिणामस्वरूप मूल चट्टानों का अपघटन संसाधन विघटन होता है जिससे मूल पदार्थ (Parent Material) का निर्माण होता है जहाँ से मृदा निर्माण की अगली प्रक्रिया आरम्भ होती है।

मृदा निर्माण की द्वितीय अवस्था (Second Stage of Soil Formation)

प्रथम अवस्था में अपक्षय की सामूहिक क्रिया के फलस्वरूप मूल पदार्थ **निर्मित** होता है इसी क्रम में मृदा परिच्छेदिका का निर्माण होता है। मूल पदार्थ में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। इस मूल पदार्थ पर पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं के उत्पन्न होने और उनके मरने के फलस्वरूप इनके ऊपर

जीवांस (Humus)पदार्थ एकत्रित हो जाता है तथा इनको जलवायु दशायें निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं। इन विभिन्न प्रक्रियाओं में निर्मित खनिजों का यह पिण्ड मृदा कहलाती है। मृदा निर्माण की इस प्रक्रिया में निर्मित पदार्थ को सोलम कहते हैं तथा सोलम का ऊपरी भाग हीमृदा कहलाता है।

7.9 मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक(Factors Affecting Soil Formation)

मृदा ढीले एवं असंगठित पदार्थों की गतिशील परतें होती है, जिसके निर्माण की प्रक्रिया कई कारकों से प्रभावित होती है। मूल पदार्थ पर जब वर्षा, तापमान, जीव–जन्तु, उच्चावच तथा समय की अवधि आदि कारक सम्मिलित क्रियात्मक प्रभाव डालते हैं, तो मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार जहाँ एक ओर मूल पदार्थ का निर्माण होता रहता है वहीं दूसरी ओर चट्टानों के निरन्तर अपक्षय एवं अपरदन द्वारा नये मूल पदार्थ का निर्माण होता है। इन प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप मृदा परिच्छेदिका का विकास होता है। मृदा निर्माण में मूल पदार्थ, उच्चावच, जलवायु, जैविक तत्त्व तथा समय प्रत्येक स्थान पर एक सामूहिक प्रक्रिया द्वारा मृदा निर्माण करते हैं, अतः ये मृदा निर्माण के कारक कहलाते हैं, जिनका विवरण निम्न है–

(1)मूल पदार्थ(Parent Materials)–सभी मृदाएँ विखण्डित शैल चूर्ण से प्रभावित होती हैं। विखण्डित शैल चूर्ण नदी, नहरें, पवन या हिमनदी द्वारा नये स्थान पर एक संहति (Mass) के रूप में जमा किया जाता है, जो सतही मृदा के रूप में विकसित होता है। मृदा के अकार्बनिक पदार्थ का मूल स्रोत जनक पदार्थ कहलाता है। मृदा को जैविक पदार्थ जनक पदार्थ से अलग बना देता है। जनक पदार्थ एक ऐसा पदार्थ होता है जिसके ऊपर जलवायु, जैविक गतिविधिया धरातलीय उच्चावच तथा समय अपनी प्रक्रियाओं का प्रभाव डालकर मृदा निर्माण को प्रभावित करते। निर्मित मृदा किस प्रकार की होगी यह मूल पदार्थ की प्रकृति पर निर्भर करता है। ग्रेनाइट का अपक्षय धीमी गति से होता है तथा इसमें पोषक तत्वों की मात्रा भी बहुत कम पायी जाती है। इस प्रकार ग्रेनाइट से बनी मृदाएँ बलुई मृदाएँ होती हैं ये कम उर्वर होती है। यदि जनक चूना पत्थर, आधा कार्बोनेट, आधा मृत्तिका, सिल्ट एवं बालू है तो इससे निर्मित होने वाली मृदा अच्छी उर्वरक होती है। मूल पदार्थ के निष्क्रिय कारक होने के कारण विभिन्न प्रकार के मूल पदार्थों से एक ही प्रकार की मृदा का निर्माण होता है लेकिन विभिन्न स्थानों को जलवायु के परिवर्तनों के कारण मृदाओं की प्रकृति से भिन्नता आ जाती है।

(2) जैविक तत्त्व(Organic Matter)–पौधे एवं जानवर मृदा निर्माण को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। मृदा के लिए प्रभावकारी पौधों की जीवन प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण होती है जिनमें विशेष रूप से मृदा से सटे हुए छोटे पौधे एवं जानवर सम्मिलित है। वनस्पति आवरण मृदा अपरदन की दर को प्रभावित करता है तथा मृदा को सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करता है। धरातल पर पर्णढेर (litter) को पलवार (Mulching) उत्पन्न करता है जो वर्षा जल की तीव्रता को कम करके मृदा के अन्दर प्रवेश की दर वृद्धि करती है। वनस्पति वाष्पीकरण की दर को भी प्रभावित करती है। वनस्पति को कमी होने पर मृदा नमी का वाष्पीकरण हो जाता है तथा इसके कारण केशीय जल धरातल की ओर गति करने लगता है। वनस्पति आवरण को प्राकृतिक रासायनिक विनिमय में मुख्य भूमिका निभाती है जो मृदा निर्माण का मुख्य भाग है। इस प्रकार विलायक पोषक तत्त्व जिनका पौधे उपयोग नहीं कर पाते अपक्षालन द्वारा मृदा के नीचे वाले भाग में चले जाते हैं। बड़े पौधों की जड़ें मृदा में रन्ध्र बनाकर पानी तथा पोषक तत्वों का अवशोषण करके मृदा की संरचना को प्रभावित करते हैं। मृदा के जैविक तत्वों के रूप में वनस्पति के सभी भाग (पत्तियाँ, छाल, शाखाएँ, फूल और जड़ें) मरने के उपरान्त योगदान देते हैं जैसे प्रेयरी के घास के आवरण किसी रेगिस्तानी प्रदेश की अपेक्षा जैविक तत्त्वों की पूर्ति अधिक करता है जिसके कारण यह क्षेत्र संसार के अच्छे उर्वर प्रदेश में से एक है।

(3) जलवायु(Climate)**–** जलवायु मृदा निर्माण का सक्रिय कारक है। जलवायु के प्रमुख तत्त्व जो मृदा निर्माण को प्रभावित करते हैं, उनमें तापमान तथा वर्षा महत्त्वपूर्ण है। धरातल पर पाई जाने वाली मृदाओं में विभिन्नता का प्रमुख कारण जलवायु है।

तापमान मृदा के सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, जिसका प्रभाव जैविक पदार्थों के निर्माण पर पड़ता है। भूमध्यरेखीय ऊष्ण प्रदेशों में सूक्ष्मजीवों की उच्च क्रियाशीलता जीवांश पदार्थ के सघन जमाव को रोकती है. जबकि मध्यतापीय तथा सूक्ष्म जलवायु में मृदा जीवों को धीमी क्रियाशीलता के कारण पर्याप्त मात्रा में जीवांश पदार्थ एकत्रित होता है। इस प्रकार ठण्डे प्रदेशों में मृदा जीवों का संयोजन सीमित वृद्धि करता है जिससे अविघटित (Undecomposed) जीवांश पदार्थों की एक पतली परत निर्मित हो जाती है। तापमान मृदा पर पायी जाने वाली वनस्पति को भी प्रभावित करता है जैसा कि हम जानते हैं कि वनस्पति का एक विशेष साहचर्य प्रकार की जलवायु में ही विकसित हो पाता है, तथा तापमान के असमान होने पर उचित वानस्पतिक आवरण विकसित न होने से पोषक तत्त्वों की प्राप्ति का चक्र पूर्ण नहीं हो पाता है, जबकि उचित तापमान की दशा में मृदा में रासायनिक सन्तुलन बना रहता है। आर्द्रता मृदा के विकास एवं विशेषताओं को अन्य कारकों की तुलना में अधिक प्रभावित करती है। वर्षा के अभाव में मृदा जल की कमी रहती है जिससे पौधों का जीवन असंभव हो जाता है तथा पौधों की अनुपस्थिति में मृदा में उपयुक्त मात्रा में जैविक पदार्थ उत्पन्न नहीं हो पाता व मृदा उर्वर नहीं बन पाती है।

(4)उच्चावच (Relief)–पृथ्वी की धरातलीय तलरूपता को उच्चावच कहते हैं। यह जल एवं तापमान के सहयोग से मृदा निर्माण को प्रभावित करता है। धरातल का ढाल मृदा निर्माण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में कम गहरी तथा कम ढाल वाले भागों में अधिक गहराई वाली मृदाएँ मिलती हैं, क्योंकि तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में मूल पदार्थ का जमाव नहीं हो पाता है तथा मृदा निर्माण में बाधा आती है। घाटियों के तल पर व समतल भूमि पर बहुत ही धीमा प्रवाह होता है जब जल स्तर पर धरातल के पास होता है तो गुरुत्व जल का नीचे स्पंदन नहीं हो पाता और केशीय जल के कारण मृदा में लवणीयता अथवा क्षारीयता आ जाती है। उच्चावच मृदा निर्माण को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, क्योंकि समतल भूसतह पर वनस्पति आवरण विकसित होता तो मृदा जीवांश की मात्रा बढ़ती है, जबकि तीव्र ढाल वाले भागों में जहाँ जल प्रवाह तीव्र होता है वहाँ जैविक पदार्थ संग्रहीत नहीं हो पाता, जिसका प्रभाव मृदा उर्वरता पर पड़ता है। अतः धरातल की मृदा निर्माण का जनक पदार्थ प्रदान करने वाला प्रमुख स्रोत है, जो अन्य कारकों के साथ मिलकर मृदा निर्माण को प्रभावित करता है

(5) समय (Time)–प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की तरह मृदाएँ भी समय के साथ विकसित होती हैं तथा इनका संगठन, संरचना तथा आन्तरिक विशेषताएँ निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। समय मृदा निर्माण में एक तटस्थ कारक की भूमिका निभाता है। मृदा निर्माण की सभी क्रियाएँ समय के अनुसार होती हैं। भूसतह के कुछ क्षेत्रों व स्थानों पर मृदाओं के विलोपित हो जाने अपरदित व जमावों आदि के कारण इनका नवीनीकरण एक निश्चित समयान्तर में होता रहता है। मृदा के पूर्ण विकसित होने तथा विनिष्ट होने व फिर नवीन निर्माण आदि चक्र भी समय के अनुसार ही होते हैं।

7.10 मृदा का वर्गीकरण एवं वितरण (Classification and distribution of Soils)

विश्व में मृदा वर्गीकरण एवं मृदा विज्ञान (Pedology) के विकास में रूसी विद्वान अग्रणी रहे हैं। 18वीं शताब्दी में सर्वप्रथम रूसी विद्वानों द्वारा स्पष्ट किया गया कि मृदा शैल संस्तरों का अपक्षयित रूप है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान बेसिली डोकुचायेव (V- V- Docku Chayev1846–1903)

प्रथम मृदा वैज्ञानिक थे, जिन्होंने स्पष्ट किया कि मूल पदार्थ (Parent Material) समान होने पर भी पर्यावरणीय दशाओं की भिन्नता के कारण भिन्न मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार उन्होंने किसी प्रदेश की मृदाओं के विकास एवं जलवायु में घनिष्ट सम्बन्ध बताया। उन्होंने अपने सहयोगी विद्वानों के साथ मिलकर (1870 में रूस की मृदाओं के अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किये। सन् 1914 में डोकुचायेव के शिष्य कॉस्टेन्टीन ग्लिंका (Konstantin D- Glinka1867–1927) ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें डोकुचायेव के चिन्तन को प्रस्तुत किया गया था। इसका संयुक्त राज्य अमेरिका के मृदा वैज्ञानिकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में मारबुत (Curtis- F-Marbut, 1863–1935) नामक अमेरिकी मृदा वैज्ञानिक ने विस्तृत क्षेत्रीय अध्ययन के उपरान्त प्रथम आनुवांशिक व्यापक मृदा वर्गीकरण (Gen tic Soil Classifiction) प्रस्तुत किया जिसे मृदा वर्गीकरण तन्त्र की व्यापक योजना *(Scheme of Comprehensive Soil Classification System)* के नाम से जाना जाता है। इसमें मारबुत ने रशियन योजना तथा शब्दावली का प्रयोग किया। मारबुत संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग में मृदा सर्वेक्षण संस्थान के निदेशक थे। इनके द्वारा तैयार मृदा वर्गीकरण की रूपरेखा सर्वप्रथम सन् 1938 में प्रकाशित हुई, जिसे 1940 में पुनः संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया। मृदा वर्गीकरण की इस योजना का निर्माण संयुक्त राज्य कृषि विभाग द्वारा किया गया था। अतः इसे USDA (*United States Department of Agriculture*) भी कहा जाता है। इस योजना में मृदाओं की तीन श्रेणियाँ (Orders) बनायी गयी थीं–

(i) कटिबन्धीय (Zonal),

(ii) अन्तर्कटिबन्धीय (Intrazonal), तथा

(iii) अकटिबन्धीय (Azonal)

1950 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका संरक्षण सेवा द्वारा मृदा वर्गीकरण का नया प्रयास किया गया तथा 1960 तक मृदा वर्गीकरण का सातवाँ संस्करण प्रस्तुत किया गया जिसमें प्रस्तुत नवीन योजना *को व्यापक मृदा वर्गीकरण तन्त्र* (ComprehensiveSoll Classification System-CSCS) के नाम से जाना जाता है। मृदा वर्गीकरण की इस योजना को मुख्यतः सातवाँ अनुमान (Seventh Approximation) कहा गया था।

मृदा के प्रकार(Types of Soils)

सर्वप्रथम 1938 में संयुक्त राज्य कृषि विभाग ने विस्तृत अध्ययन कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर पायी जाने वाली मृदाओं को तीन भागों में विभक्त किया, जो निम्नलिखित हैं–

(1) क्षेत्रीय या कटिबन्धीय मृदाएँ (Zonal Soils)

(2) अन्तः क्षेत्रीय या अन्तर्कटिबन्धीय मृदाएँ (Intrazonaloil)

(3) अपार्श्विक या अप्रादेशिक (Azonal Soils)

(1) कटिबन्धीय मृदाएँ(Zonal Soils)

ये मृदाएँ वनस्पति एवं जलवायु के लम्बे प्रभाव से पूर्ण विकसित होती हैं। इसमें विश्व की प्रमुख मृदा सम्मिलित हैं। इनका वितरण भी जलवायु वनस्पति प्रदेशों के अनुसार हो मिलता है। मूल शैलों (Parent Rocks) के क्षेत्र में विकसित होने के कारण इन मृदाओं का पार्श्व चित्र (Soil Profile) आदर्श रूप में परिलक्षित होता है। इसी कारण इन्हें पार्श्विक मृदा भी कहते हैं। इनका निर्माण सुप्रवाहित (Well Drained) दशाओं में होने से अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं। ये मिट्टियाँ तीन

प्रकार की होती हैं

(i) पेडाल्फर (Pedalfer)– पेडाल्फर शब्द अंग्रेजी के तीन अक्षर समूहों (Ped+Al+Fe) का मेल है जिनका अभिप्रायः क्रमशः Ped= मृदा AI=,एल्यूमिनियम, Feलोहांश (Ferrum) होता है। इस मृदा में एल्यूमिनियम एवं लोहांश की मात्रा अधिकपायी जाती है। ये मृदायें मुख्यतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में

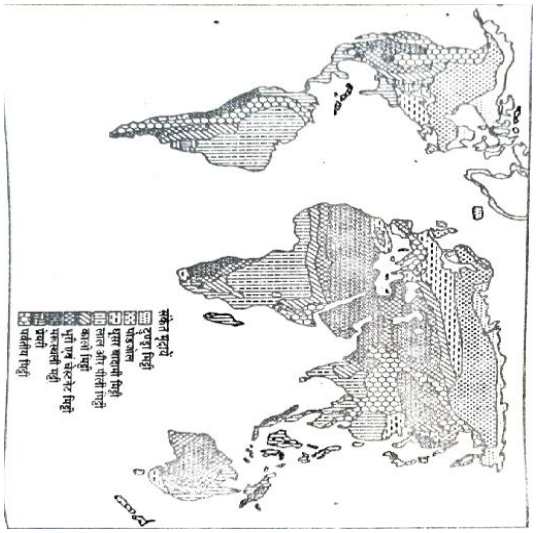

मिलती हैं, जहाँ निक्षालन क्रिया (Leaching) अधिक होती है। इसे लेटेराइजेशन (Laterization) कहते हैं। इस वर्ग में तीन प्रकार की मृदायें मिलती हैं। प्रथम पॉडजाल, जो अलास्का, कनाडा, स्केन्डेनेविया तथा एशिया के उत्तरी भाग में पायी जाती है। इसका निर्माण पोडजोलाइजेशन (Podzolization) के कारण होता है। यह ऐसी क्रिया है जिसमें शीत आर्द्र प्रदेशों में तापमान कम होने पर वृक्षों की पत्तियों के सड़ने गलने के कारण ह्यमिक अम्ल (Humic Acid) बनते हैं तथा अपक्षालन क्रिया द्वारा लोहा एवं एल्यूमिनियम मृदा के B संस्तर में चले जाते हैं तथा मृदा के ऊपरी संस्तर में सिलिका की प्रधानता हो जाती है। फलस्वरूप मृदा का रंग भूरा (Ash Gray) हो जाता है। द्वितीय, पॉडजालिक मिट्टी (Podzolic Soil) होती है, जो पोडजॉल मिट्टी के दक्षिण में पायी जाती है। यहाँ उत्तरी भाग की अपेक्षा पोडजॉलाइजेशन कम होता है तथा जीवाणु अधिक सक्रिय रहते हैं। **अतः** इनमें जीवांश पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तीसरी मृदा लेटराइट है जो उष्ण आई क्षेत्रों में मिलती है। जहाँ लेटेराइजेशन (Latization) की क्रिया होती. है। इस क्रिया में अपक्षालन (Laterization) द्वारा मृदा की ऊपरी सतह से सिलिका एवं जीवांश (Humus) आदि तत्त्व अपवहन (Eluviation) द्वारा नीचे जाकर विनिक्षेपण (Illuviation) क्रिया द्वारा जमा हो जाता है तथा ऊपरी सतह पर केवल लोहा एवं एल्यूमिनियम शेष बच जाते हैं। इस क्रिया से मृदा अनुपजाऊ होती है। यह भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में अधिक मिलती है।

(ii) पेडोकल (Pedocal)– पेडोकल (Pedocal) मृदाओं में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है ये मृदायें मुख्य रूप से शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में मिलती हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण की दर अधिक होती है। फलस्वरूप केशिका क्रिया (Capillary Action) द्वारा कैल्सियम ऊपर पहुँच जाता है। इस वर्ग में छोटे घास वाले क्षेत्रों में विकसित चरनोजम (Chernozem), अत्यन्त शुष्क क्षेत्रों की मरुस्थलीय तथा इनके साथ पायी जाने वाली भूरी स्टेपी (Brown Steppes) मृदाओं को सम्मिलित किया जाता है।

(iii) टुण्ड्रा मृदा (Tundra Soil)– ये शीत प्रदेशों की बहुत कम विकसित मृदाएँ होती हैं। यहाँ जीवाणुओं की सक्रियता भी कम नहीं होती तथा ये उपजाऊ नहीं होती हैं।

(2) अन्तःकटिबन्धीय मृदाएँ (Intrazonal Soils)–ये मृदाएँ विशेष परिस्थितियों में बनती हैं, जिन पर जलवायु तथा वनस्पति की तुलना में अन्य तत्त्वों का अधिक प्रभाव होता है।अतः इनका वितरण किसी विशेष जलवायु प्रदेश के नियन्त्रण से बाहर होता है। इनमें सर्वाधिक जमाव मूल पदार्थ तथा जल प्रवाह का पड़ता है। ये मृदायें कटिबन्धीय क्षेत्रों में बिखरी हुई मिलती हैं, जिस कारण इन्हें अन्तःकटिबन्धीय कहते हैं। इस वर्ग में उपजाऊ एवं अनुपजाऊ दोनों प्रकार की मृदायें होती हैं। इन मृदाओं का प्रवाह व्यवस्थित नहीं होने से जलाक्रान्ता (Waterlogging) की स्थिति बन जाती है। फलस्वरूप घुलनशील लवण तथा चूने की मात्रा बढ़ जाती है। रेण्डजीना एवं रेगुर इस वर्ग की उर्वर मृदायें हैं। रेण्डजीना आर्द्र प्रदेशों में मिलती है। इस वर्ग की अन्य मृदायें पीट मृदा (Peat Soil), लवणीय मृदा (Saline Soil) एवं चूना पत्थर से उत्पन्न मृदा (Limestone Soil) आदि हैं।

(3) अपार्श्विक मृदायें (Azonal Soils)–ये अविकसित नवीन मृदायें होती हैं जिनका पार्श्व चित्र स्पष्ट नहीं होता है। इनका निर्माण नदी, हिमानी, वायु तथा सागरीय तरंग आदि प्राकृतिक कारकों की निक्षेपण क्रिया द्वारा होता है। ये मृदाएँ उपजाऊ होती हैं। जलोढ़ (Alluvial) मृदा या रेगोसोल रेतीली मृदा, हिमानी मृदा, सागरीय मृदा तथा पर्वतीय मृदा इसी वर्ग की मृदायें हैं। इन मृदाओं में प्रतिवर्ष नवीन पदार्थों का जमाव (निक्षेपण) होता रहता है, जिससे इनका नवीनीकरण हो जाता है।

7.11 वृहद् मृदा वर्गीकरण तन्त्र(Comprehensive Soil Classification System)

यह वर्गीकरण सन् 1975 में संयुक्त राज्य अमेरिका के मृदा सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसे संक्षेप में CSCS(Comprehensive Soil Classification System) भी कहते हैं। 1975 में अपनाये गये CSCS नाम के स्थान पर 1990 में मृदा वर्गीकरण (Soil Taxonomy) शब्द अपनाया जिसे CSCSकी तुलना में साधारण माना गया।CSCSमें 10 मृदा वर्ग ही प्रस्तुत किए गये थे लेकिन 1990 में 11वॉ मृदा वर्ग एण्डीसोल को साम्मिलित किया गया है। ये मृदा वर्ग निम्नलिखित है।

मृदा वर्गीकरण (Soil Taxonomy**)**

मृदा श्रेणियाँ (Soil Order**)**

cscs योजना के अन्तर्गत विश्व की सभी मृदाओं को उच्चतम वर्ग की 11 श्रेणियों में विभाजित किया गया है जिसका प्रमुख आधार मृदा पार्श्व (Soil Profile) के विभिन्न संस्तरों के लक्षणों को मापा जाता है, इनका निर्धारण निम्नलिखित आधारों पर किया जाता है–

(i) मृदा का संघटन (Composition of Soil)

(ii) लाक्षणिक संस्तरों की उपस्थिति या अनुपस्थिति (The Presence or Absence of Specific Diagnostic Horizons)

(iii) मृदा परिच्छेदिका के संस्तरों का समान अंशों में विकास (Similar Degrees of Horizon Development)

(iv) अपक्षय और निक्षालन (Weathering and Leaching)

(1) एण्टीसॉल (Entisals)– ये पूर्ण विकसित नहीं होती हैं जिस कारण मृदा संस्तर दृश्यगत नहीं होता है। यद्यपि संस्तर पर एक पतली परत के रूप में C तथा Rसंस्तर पर अध्यारोपित रहता है।

इसके विकास को जलवायु अधिक प्रभावित नहीं कर पाती है। इसकी पाँच उपश्रेणियाँ (Sub-Orders) हैं।

(2) हिस्टोसॉल (Histosol)– ये जैविक मृदाएँ होती हैं, जो वर्ष पर्यन्त जल से संतृप्त रहती हैं। हम इन मृदाओं को दलदल, पीट तथा बंजर भूमि (Moos) रूप में पहचान सकते है 'C' संस्तर में जैविक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है तथा 'C' संस्तर में मृत्तिका मिलती हैं। हिस्टोसॉल मृदा में अम्ल की अधिक मात्रा मिलती है जबकि पोषक तत्त्व न्यून मात्रा में मिलते हैं। प्राकृतिक तथा कृत्रिम प्रवाह द्वारा इन्हें नष्ट भी किया गया है। दलदली क्षेत्रों के साथ इनके विस्तृत होने के कारण भौगोलिक वितरण दर्शाने में कठिनाई होती है। जलीय प्रवाह सुलभ होने पर इनमें गोभी, गाजर, आलू तथा अन्य कन्द फसलों की सघन कृषि की जा सकती है। मध्य अक्षांशों में इनका कृषि महत्त्व है तथा अन्य स्थानों पर चूने एवं उर्वरकों का प्रयोग करके उपजाऊ बनाया जा सकता है। इसे चार उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(3) वर्टीसॉल (Vertisol)–वर्टीसॉल मृदाओं के गठन में 35 प्रतिशत मात्र मृत्तिका (Clay) की होती है। इस कारण ही नमी की कमी आते ही इसमें दरारें पड़ जाती हैं। मृत्तिका कणों के व्युत्पत्ति स्रोत इनका मूल पदार्थ हैं। अतः वर्टीसॉल मध्यतापीय या उष्ण कटिबन्धीय जलवायु में मिलती है जहाँ सामयिक सूखा तथा मौसमी नमी मिलती है। इसकी उपश्रेणियाँ विश्व के जलवायु विभागों में अत्यन्त निकट होते हैं। ये मृदा आस्ट्रेलिया, भारत तथा सूड़ान में अधिक मिलती हैं तथा इसका मानव द्वारा निर्माण कार्यों में अधिक प्रयोग किया जाता है। मृत्तिका में माण्टमोरिलोनाइट खनिज होता है जो नमी पाकर फैलता है तथा नमी के अभाव में सिकुड़ता है। इनमें कैल्सियम तथा मैग्निशियम की पर्याप्त मात्रा होती है । वर्टीसॉल का पी.एच. तटस्थ (7) होता है। इसकी चार उपश्रेणियाँ हैं।

(4) इनसेप्टीसॉल्स (Inceptisol)–इन मृदा में संस्तरों का शीघ्र विकास मिलता है जो पूर्ण नहीं होता है। इनमें जल इतना रहता है कि वर्ष के एक तिहाई समय में पौधे जीवित रह सकते हैं। इनका प्रारम्भ B संस्तर से होता है। मृदा लाल रंग लिये होती है जिनमें मृत्तिका का अभाव पाया जाता है। इसके कण बारीक होते हैं। ये मृदायें सामान्यतः आर्द्र जलवायु में मिलती हैं लेकिन आर्कटिक से लेकर उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों तक भी मिलती हैं। इसका विकास वन आवरण या घास क्षेत्रों में होता है। इन्हें 6 उपश्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(5) एरिडोसॉल्स (Aridosols)– एरिडोसॉल्स मृदायें विश्व के 19.2 प्रतिशत भाग पर फैली हैं जो अन्य मृदाओं की तुलना में सर्वाधिक हैं। ये शुष्क होती हैं तथा जीवांश (Humus) का अभाव मिलता है। पादप पौधों को वर्ष के कम समय में ही वर्षा जल उपलब्ध हो पाता है। गहराई पर कार्बोनेट पदार्थों का संग्रह मिलता है। इनका निर्माण शुष्क मरुस्थलीय दशाओं में होता है, जहाँ वर्षा न्यून मात्रा में प्राप्त होती है। इस प्रकार विश्व के सभी मरुस्थलीय क्षेत्रों में इस प्रकार की मृदायें मिलती हैं। इनमें कैल्सियम, जिप्सम तथा लवणीय खनिजों की पर्याप्त मात्रा होती है। ये विशेषतः सहारा तथा गोबी के रेगिस्तान में मिलती हैं। इस मृदा में झाड़ियाँ तथा घास ही मुख्यतः पनपती है। इसकी आर्गिड्स तथा आरथिड्स दो उपश्रेणियाँ हैं।

(6) मोलीसॉल्स (Mollisol)–ये मृदायें सूक्ष्म तापीय से उष्ण कटिबन्धीय जलवायु वाले क्षेत्रों में मिलती हैं। वर्षा द्वारा इस मृदा में निक्षालन तथा कैल्सिफिकेशन क्रियायें होती हैं। इनके ऊपरी संस्तरों का निर्माण मौलिक एपिपेडसन (Epipedson) द्वारा होता है। यह संस्तर काले रंग का होता है। मृदा निर्माण गहराई तक होता है। फलस्वरूप मृदा परिच्छेदिका पर्याप्त मोटी होती है तथा Bसंस्तरों में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है। इन मृदाओं का निर्माण उपोष्ण कटिबन्धीय (ubtropical) तथा

मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों की उष्णार्द्र जलवायु वाले घास के क्षेत्रों में होता है। ये क्षेत्र यूरेशिया में स्टेपीज, संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा में प्रेयरीज, दक्षिणी अमेरिका में पम्पाज आदि हैं। इन्हें 7 उपश्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(7) अल्फीसॉल्स (Alfisols)–ये मृदायें आर्द्र जलवायु में मिलती हैं। इनके 'B' संस्तर में मृत्तिका का संचयन मिलता है। मृदा संस्तरों का रंग धूसर (Gray), भूरा अथवा लाल होता है। जीवांश का अभाव पाया जाता है। पौधों को मृदा जल तीन महीने ही उपलब्ध हो पाता है। ये मृदायें विशेषकर मध्य उत्तरी अमेरिका, यूरोप, मध्य साइबेरिया, उत्तरी चीन, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, पूर्वी ब्राजील, पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका, उत्तरी आस्ट्रेलिया, पूर्वी भारत आदि में पायी जाती है। कृषि की दृष्टि से ये उपजाऊ होती हैं। अल्फीसॉल्स का विशाल क्षेत्र आर्द्र भूमध्यरेखीय प्रदेश तथा सहारा एवं कालाहारी के रेगिस्तान के मध्य उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में स्थित है। इन्हें पाँच उपवर्गों में विभाजित किया गया है।

(8) स्पोडोसाल्स (Spodosols)–ये मृदायें मुख्यतः उत्तरी गोलार्ध के उत्तरी भाग में विकसित होती हैं। इसमें सेस्क्की ऑक्साइड्स (Sesquioxide) का संचयन मिलता है। इसके संस्तर का रंग धूसर (Ash Gray) होता है। इनमें अम्लों की अधिकता एवं पोषक तत्त्वों एवं जीवांश की कमी पायी जाती है। स्पोडोसॉल मृदाओं की जलधारण क्षमता भी कम होती है। अतः उत्पादकता कम होने के कारण कृषि के लिए कम महत्त्वपूर्ण है। इन्हें चार उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(9) अल्टीसॉल्स (Ultisol)– ये मृदायें उपोष्ण तथा शुष्कतर उष्ण कटिबन्धीय जलवायु एवं मानसूनी जलवायु में पायी जाती हैं। इनका निर्माण मुख्यतः वनाच्छादित क्षेत्रों में होता है B संस्तर का रंग पीला भूरा होता है इनकी देशज वनस्पति सवाना घास है। ये मृदायें मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी चीन, बोलिविया, दक्षिणी ब्राजील, पश्चिमी तथा मध्य अफ्रीका, भारत, म्यांमार (बर्मा), पूर्वी द्वीप समूह तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में पायी जाती है। इनका सर्वाधिक विनाश स्थानान्तरी कृषि द्वारा हुआ है। इन्हें पाँच उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(10) आक्सीसॉल्स (Oxisols)– ये अपक्षयित पुरानी मृदायें होती हैं जिनमें उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की मृदायें प्रमुख हैं। ये जैविक संस्तरयुक्त (O) अच्छी अवस्था में होती हैं। इनमें खनिजों का अत्यधिक अपक्षय होता है तथा लोहे के ऑक्साइड, एल्यूमिनियम तथा क्वोलिनाइटस अधिक मात्रा में मिलते हैं। साथ ही दोमट एवं मृत्तिका के कण भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ये भूमध्यरेखीय तथा ऊष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय भागों में सर्वाधिक विकसित हुई हैं। ऑक्सीसॉल मृदायें, लाल, पीली तथा पीली–भूरी रंग की होती हैं। इन्हें पाँच उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(11) एण्डीसॉल्स (Andisols)–यह श्रेणी 1990 में जोड़ी गई है। इसके निर्माण को मूल पदार्थ नियन्त्रित करता है। इसका मूल पदार्थ ज्वालामुखी राख है। परिप्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में स्थित ज्वालामुखी क्षेत्रों में इसका सर्वाधिक विकास हुआ है। इस क्षेत्र को अग्निवृत्त (Firy Ring) भी कहते हैं। इनमें हवाई द्वीप प्रमुख थे। यह सूक्ष्म स्तर पर वितरित है। एण्डीसॉल मृदाओं में पर्याप्त जीवांश (Organic Matter) मिलता है तथा जल धारण क्षमता भी अच्छी है। ये मृदायें उर्वर होती हैं।

7.11 मृदा अपरदन एवं संरक्षण Soil Erosion and(onservation)

प्राकृतिक शक्तियों एवं मानवीय क्रियाओं द्वारा मृदा का इतनी तीव्र गति से निष्कासन होने लगे कि उसकी पूर्ति मृदा निर्माणकारी प्रक्रिया द्वारा न हो सके तो इस स्थिति को मृदा क्षय कहते हैं। इसमें शैलों एवं मृदा कणों का अपरदन के कारकों द्वारा अलग होने तथा परिवहन को सम्मिलित करते हैं। मृदा के एक इंच मोटे स्वस्थ स्तर को निर्मित होने में 500 से 1000 वर्ष लग जाते हैं। पृथ्वी तल पर मृदा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। पृथ्वी का लगभग सभी प्रकार का जीवन इस पर निर्भर रहता है। मृदा भूपृष्ठ पर एक ऐसी परत के रूप में स्थित है, जिसका निर्माण चट्टानों एवं जैव पदार्थों के अपघटन एवं विघटन के उपरान्त हुआ है इसके निर्माण में चट्टान की भूमिका मूल पदार्थ (Parent Material) की होती है तथा जलवायु, वनस्पति, धरातल की प्रकृति व समय अन्य महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व हैं जो मृदा निर्माण (Soil Genesis) में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में अपना योगदान देते हैं। मृदा जीवमण्डल में ऊर्जा एवं पदार्थों के स्थानान्तरण मार्गों के लिए माध्यम का कार्य करती है। यह पोषक तत्त्वों के जैविक संघटकों द्वारा चक्रण व पुनर्चक्रण में भी सहायता करती है। मृदा संसाधन विभिन्न जातियों एवं किस्मों के जीवित जीवों (पौधों एवं जन्तुओं) के लिए अनुकूल आदर्श पर्यावरणीय दशाएँ एवं आवास प्रदान करती है। मृदाएँ खाद्यान्नों, लकड़ियों के उत्पादन, भवनों एवं सड़क निर्माण के लिए आधारभूत संसाधन हैं। प्राकृतिक पर्यावरण अवनयन के रूप में जब मृदा अपरदन होने लगता है तो सम्पूर्ण उपर्युक्त क्रिया बाधित होकर पर्यावरण को अवक्रमित कर देती है। अपरदित क्षेत्र बंजर

तथा कृषि के अयोग्य हो जाता है। साथ ही अधिक मृदा अपरदन से वनस्पति आवरण भी कम हो जाता है।

अपरदन के कारक (Agents of Erosion)

प्रकृति में मृदा अपरदन विभिन्न कारकों द्वारा होता है जिनकी प्रकृति एवं गतिशीलता मृदा अपरदन को नियंत्रित करती है। ये कारक निम्नलिखित हैं–

(1) वर्षा (Rain)–वर्षा की बूँदों, ओलों व बहते हुए पानी में बहुत शक्ति होती है जिसे पृथ्वी सहन करके मृदा अपरदन को जन्म देती है। वर्षा की अपरदनशीलता उसकी गहनता (Intensity) एवं मात्रा पर निर्भर करती है। बहते हुए जल एवं समुद्र की लहरों में भी अपार शक्ति होती हैं और जब इस पानी में रेत या बजरी आदि मिली होती है तो मिट्टी काटने की शक्ति कई गुनी अधिक हो जाती है।

(2) पवन(Wind)–वायु की तरंगें भू–पटल पर अपघर्षण (brasion) पैदा कर मिट्टी को अपने साथ उठा ले जाती है और ये मिट्टी के कण हवा में आपस में रगड़कर भी टूट–फूट (सन्निघर्षण) पैदा करते हैं।

(3) गुरुत्वाकर्षण बल (Gravitational Force)–पहाड़ी व अधिक ढाल वाले स्थानों में चट्टानें, पत्थर व मिट्टी भूस्खलन की प्रक्रिया से नीचे तीव्रता से या धीरे–धीरे आते रहते हैं और इकट्ठे होते रहते हैं।

(4) हिमनद (Glacier)–काफी ऊंचे व बर्फीले पहाड़ोंपर हिम शिलायें जब खिसकती हैं तो चट्टानों व रास्तों में अपरदन करती चलती हैं।

मृदा अपरदन की यांत्रिकी एवं प्रकार(Machinics and Types of Soil Erosion)

मृदा अपरदन के लिए विभिन्न अभिकर्ताओं से प्राप्त बल आवश्यक होता है। पदार्थों की गति में निहित तथा दूसरे पदार्थों में गति पैदा करने वाली ऊर्जा गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) होती है। जलीय बूँदों व हवा की शक्ति व गति से अपरदन होता है। मुख्यतया अपरदन तीन चरणों में होता है–

(i) मृदा कणों का ढीला होना एवं विलगन (Detach-ment)

(ii) विलगित कणों का परिवहन

(iii) कणों का स्थायीकरण (Resettlement)

विलगाव एवं परिवहन मृदा के गुणों एवं अभिकर्ता की प्रकृति एवं शक्ति पर निर्भर करता है।

प्रकृति में मृदा अपरदन निम्नलिखित रूपों में परिलक्षितहोता है–

1. भूवैज्ञानिक अपरदन (Geological Erosion)

इसमें मानवीय प्रभाव नहीं होता है। मिट्टियों का यह मंद गति से होने वाला अपरदन है जो अनाच्छादन की प्राकृतिक भू–वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक भाग है। इसमें मृदा को वृक्षों की कटाई, पशुपालन द्वारा अतिचारण, भूस्खलन, हिमानीकरण तथा विस्तृत बाढ़ आदि तत्त्व प्रभावित करते हैं। भू–वैज्ञानिक अपरदन में रिसाव या निक्षालन (Leaching) अपरदन के अन्तर्गत घुलनशील व अघुलनशील खनिज व जीवांश ऊपरी संस्तरों से नीचे चले जाते हैं। सतही अपरदन एवं भूस्खलन द्वारा वृहद स्तर पर पहाड़ी एवं ढालू भाग प्रभावित होते हैं साथ ही ऑक्सीकरण या अपचयन (Oxidation) अपरदन द्वारा खनिजों की टूट–फूट होती रहती है। भूवैज्ञानिक मृदा अपरदन को शैलों

के प्रकार, निक्षेपण (Deposition) क्रिया, उत्थान (uplift) क्रिया के साथ ही वहाँ की भूआकृतिक विशेषताएँ प्रभावित करते हैं। स्ट्रेहलर के अनुसार यह अपरदन सार्वत्रिक एवं अपरिहार्य भी है। इसे प्राकृतिक या सामान्य अपरदन (Natural or Normal Erosion) भी कहते हैं।

2. जलीय अपरदन (Water Erosion)

जल द्वारा मृदा अपरदन तीन रूपों में परिलक्षित होता है. प्रथम –कणों (Grain) के रूप में द्वितीय –अलग–अलग कणों के रूप में धरातल पर वाहित होना तथा तृतीय रूप में कण अन्य नवीन स्थल पर निक्षेपित हो जाते हैं।बाढ़ के मैदान की ऊपरी सतह (Litter) के जल द्वारा अपरदित कर देने से होता है। अधिकांश बाढ़कृत मैदानों की मृदा जल फैलाव के कारण अपरदित होती है। यह पतली परत के रूप में स्थित होती है, इसका प्रमुख कारण छपछपाव कटाव (Splash Erosion) भी है, जिसमें वर्षा की बूँदों के एक अन्तराल पर गिरने से मृदा आवरण ढीला होकर अपरदित होता है। ये अपरदन अक्सर कम ढाल वाली जमीन में देखने को मिलता है। इसमें मिट्टी की पतली परत (Sheet) बह जाती है। इसलिए इसे परत अपरदन कहते हैं। इसे 'मिट्टी की रेंगती हुई मौत' भी कहते हैं।

(3) नलिका या क्षुद्रसरिता अपरदन (Rill Erosion)–

जब ढाल 1 से 6 प्रतिशत तक होता है तो प्रवाहित जल मानव की अंगुली के आकार की छोटी–छोटी नालियों का जाल बना देता है, इसे क्षुद्रसरिता या अल्पसरिता अपरदन कहते हैं। यद्यपि खेत को जुताई के समय ये नालियाँ समाप्त हो जाती हैं। नलिका अपरदन सरिता को विभिन्न छोटी–छोटी धाराओं (Small Channels) के प्रवाहित होने से ऊपरी परत से महीन एवं चिकने मृदा कण अपरदित हो जाते हैं। नदी अपनी परिपक्व अवस्था में छोटी– छोटी जलधाराओं में बँट जाती है, दूसरी ओर अनेक जलधाराएँ भी एक–दूसरे से मिल जाती हैं। अतः यह अपरदन सरिता कीजलीय मृदा अपरदन निम्न रूपों में पाया जाता है–

(i) वर्षा बूंद या छपछपाव अपरदन (Raindrop or Splash Erosion)

वर्षा की प्रकृति धीमी या रुक–रुककर होती है तो सतही मृदा ढीली होकर अपरदित हो जाती है, यह अपरदन ढाल से प्रभावित नहीं होता एवं मैदानों में भी प्रभावी रहता है।

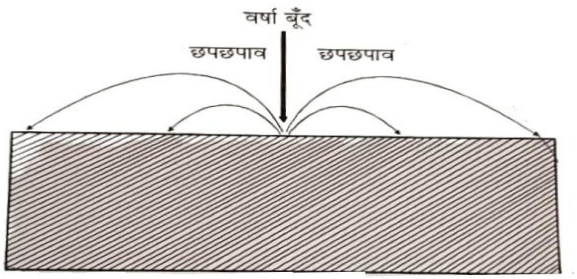

वर्षा बूँद अपरदन

(ii) परत अपरदन (Sheet Erosion)

जल द्वारा मृदा की ऊपरी परत का अपरदन करना परत या फलक अपरदन कहलाता है। यह

अपरदन नदियों के तलीय भाग (Littoral part)सहायक धाराओं पर निर्भर करती है। नलिका अपरदन दक्षिणी भारत की वर्टिसोल (Vertisol) मृदाओं में अधिक मिलता है।

नलिका अपरदन

(iii) खड्ड या अवनलिका अपरदन (Gully Erosion)–

अवनलिका अपरदन क्षुद्र सरिता अपरदन का विकसित रूप होता, है। जब नलिका अपरदन पर नियंत्रण नहीं किया जाता है तो वह पृष्ठ तक पहुँच जाता है एवं अल्प सरितायें आपस में

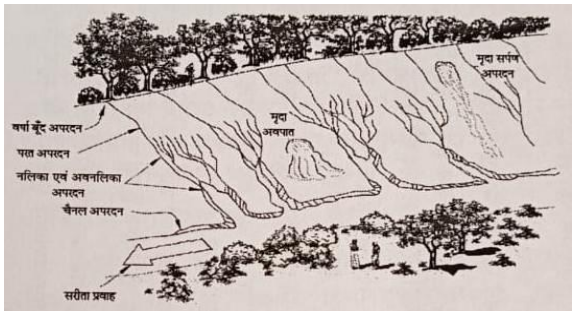

अवनलिका अपरदन

जुड़कर अवनलिका का रूप धारण कर लेती हैं। ये अवनलिकायें विस्तृत होकर काफी गहरी व चौड़ी हो जाती हैं तथा इन पर वनस्पति आवरण विकसित हो जाता है।

(iv) सरिता तटीय अपरदन (Stream Bank Erosion)

यह अपरदन सरिताओं के तीव्र प्रवाह के उपरान्त होता है। यह तटीय भागों में अधिक प्रभावी रहता है। सरिता तटीय अपरदन घाटी को चौड़ा करने के उपरान्त अधिक होता है। यह नदी के सर्पिलाकार अवस्था में भी होता है। नदियों के किनारे जब काफी क्षेत्र में गहरी एवं चौड़ी अवनलिकाओं का जाल–सा बिछ जाता है तो उसे बीहड़ (Ravine) कहते हैं। भारत में यमुना, चम्बल एवं माही नदियों के किनारे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात एवं राजस्थान में करीब 40 लाख हैक्टेयर में बीहड़ों का विस्तार है।

3. पवन अपरदन (Wind Erosion)

वायुशक्ति द्वारा मृदा कणों को काटकर प्रवाहित करके निक्षेपित करने की क्रिया को वायु अपरदन कहते हैं। चोविल (1957) महोदय ने पवन अपरदन की प्रकृति को वर्णित करते हुए लिखा है कि, पवन अपरदन मृदा कणों के ढीले होकर विभाजित होने से शुष्क अवस्था में होता है, इसमें मृदा आवरण चिकना एवं नंगा हो जाता है।'' पवन अपरदन से पर्यावरण वृहद् स्तर पर विकृत होता है, इस क्रिया द्वारा मृदा ह्रास (Soil loss), मृदा गठन में परिवर्तन (Textural change), पोषक तत्त्वों का ह्रास (Nutrient losses), उत्पादकता ह्रास (Productivity losses), पवन प्रदूषण तथा तलछट का

निक्षेपण होता है। पश्चिमी अफ्रीकी देशों में विस्तृत सहारा रेगिस्तान में प्रवाहित हरमट्टन पवन द्वारा पवन प्रदूषण काफी मात्रा में होता है। ऐसा ही पश्चिमी यूरोप में पासेटस्टॉब हवा द्वारा होता है। पवन अपरदन पवन की गति से प्रभावित होता है। पवन गति एवं अपरदन दर में सम्बन्ध स्थापित करने हेतु ब्यूफोर्ट (Beaufort) महोदय ने एक मापनी तैयार की है जिसके अनुसार 2.5 से 12 किमी. प्रति घण्टा की गति से प्रवाहित वायु द्वारा अपरदन नहीं होता है। 12 से 20 किमी प्रति घण्टा की गति पर आरंभ होता है तथा 20– 40 किमी प्रति घण्टे की दर पर मध्यम मृदा अपरदन होता है। 40 किमी प्रति घण्टे की दर से अधिक वेग पर पवन द्वारा तीव्र (Severe) मृदा अपरदन आरंभ हो जाता है। वायु की प्रक्षुब्धता (Turbulance) तथा परिवहन क्षमता भी अपरदन की मात्रा को प्रभावित करती है।

पवन अपरदन खुले मैदानों एवं मरुस्थलों में अधिक होता है। पवन अपरदन में जलवायु की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि मरुस्थलीय भागों में अपक्षय की क्रिया को जलवायु नियन्त्रित करती है जिसके परिणामस्वरूप पवन अपरदन हेतु तलछट उपलब्ध होती है। पवन अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों में मृदा की प्रतिरोधक क्षमता (Soil Resistance), सतही कटक, वर्षा, वानस्पतिक आवरण आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

4.समुद्री अपरदन (Marine Or Beach Erosion)

समुद्र तटवर्ती भागों में लहरों द्वारा अपरदन होता है। तटीय भागों में स्थित झीलों तथा नदियों का भी इसमें प्रभाव रहता है। समुद्री तटों पर लहरों द्वारा अपरदन के उपरान्त नवीन भू– आकृतियाँ बन जाती हैं। कई तटीय क्षेत्र तरंगों द्वारा जल प्राप्त कर दलदलों (Swamps)के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। पानी की तीव्र गति से बार–बार स्थल की ओर आने से गहरी नालियों का निर्माण हो जाता है। तटीय या समुद्री अपरदन सागरीय जल में गति के कारण होता है। यह गति सागरों में प्रवाहित पवन के घर्षण (Wind friction), भयानक तूफान, वाष्पन, नदियों, भूकम्प तथा ज्वारभाटे आदि क्रियाओं के कारण उत्पन्न होती है। समुद्री जल के कारण तटवर्ती मृदायें लवणीय हो जाती हैं। अतः समुद्री अपरदन भी पर्यावरण अवनयन में सहयोग करता है।

5. मानवीय क्रियाओं द्वारा अपरदन(Erosion by Anthropogenic Activities)–यह मानवीय क्रिया–कलापों से तेजी से होने वाला अपरदन होता है जिसे त्वरित अपरदन (Accelerated Erosion) भी कहते हैं। मानव अपने द्वारा प्रयोग किये गये अवैज्ञानिक कारकों से मृदा अपरदन को त्वरित करता है। अविवेकपूर्ण कृषि पद्धतियाँ, भूमि का गलत उपयोग, फसलों की लगातार पुनरावृत्ति, अनियन्त्रित पशुचारण तथा अविवेकपूर्ण वनोन्मूलन आदि क्रियायें मानव द्वारा की जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप मृदा अपरदन होता है। मानवीय क्रियाओं द्वारा मिट्टी की सघनता / सुगाढता (Compaction),लेपन(smearing), भुरभुरापन (Pulverization) तथा अत्यधिक उपयोग से अवनयन होता है। मृदा अवनयन से मृदा परिच्छेदिका के ऊपरीसंस्तरों से उर्वर तत्त्वों का निक्षालन हो जाता है। शेरलोक ने मानव को एक प्रमुख प्रभावकारी कारक माना है। अपनी पुस्तक Man Geological Agent'' में यह स्पष्ट किया। इसी प्रकार जैक एवं व्हाइट ने स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर हो रहे तीन मृदा अपरदन में मनुष्य की भूमिका को प्रमुख मानते हुए इसके नियन्त्रण पर बल दिया है।

6. विशेषीकृत अपरदन (Specialized Erosion)

विशेषीकृत अपरदन में तीन प्रकार क्रमशः पीठिका (Pedestal), चरम (Pinnacle) तथा एकाएक न्यूनता वाला (slumping) अपरदन समाहित है। पीठिका अपरदन छप छपाव(splash) द्वारा होता है। चरम अपरदन अवनलिकाओं में ऊर्ध्वाधर रूप में होता है।

मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक(Factors Affecting Soil Erasion).

मृदा अपरदन प्रकृति में विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कारकों द्वारा होता है। राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान (IIRS) देहरादून के जल संसाधन प्रभाग के अनुसार प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं–

(1) जलवायुवीय कारक (Climatic Factors)–

इसमें वर्षा (Rainfall), तापमान (Temperature), पवन (Wind) तथा आर्द्रता (Humidity) प्रमुख हैं। जल वर्षा की मात्रा, तीव्रता, अवधि एवं वितरण अपरदन को प्रभावित करते हैं, इसी तरह तापमान एवं पवन भी मृदा अपरदन के स्वरूप एवं दर को प्रभावित करते हैं।

(2) स्थलाकृतिक कारक (Topographical Factors)

इसमें ढाल का क्रम (Degree of slope), ढाल की लम्बाई (Length of slope), तथा जलग्रहण की आकृति एवं आकार (Shape and size of watershed) प्रमुख हैं।

(3) वानस्पतिक कारक (Vegetative Factors)

इसमें वनस्पति का प्रकार (Kind of vegetation), घनत्व (Density), वृद्धि की अवस्था (Stage of growth) तथा जड़तन्त्र (Rooting system) प्रमुख हैं।

(4) मृदा कारक (Soil Factors)

इसमें मृदा संरचना (Soil structure), गठन (Texture जैविक पदार्थ (Organic matter), नमी तत्त्व (Moisture content) तथा मृदा की सुगठनता (Soil compactness) प्रमुख हैं।

(5) सामाजिक–आर्थिक कारक (Socio-Economic Factors)

इसमें भूमि उपयोग परिवर्तन, निर्माण एवं खनन कार्य प्रमुख हैं। कृषि विस्तार एवं औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के लिए किया गया भूमि उपयोग परिवर्तन मृदा अपरदन को बढ़ाता है। कृषि कार्यों में उपकरणों का प्रयोग भी एक कारण है। कृषि क्षेत्र विस्तार के लिए वन एवं घास क्षेत्रों को साफ कर दिया जाता है जिससे वर्षाजल पूर्ण गतिज ऊर्जा के साथ निम्नवर्ती क्षेत्रों में बहता है तथा तीव्र मृदा अपरदन करता है। पहाड़ी क्षेत्रों में परिवहन मार्ग निकालने, नहर एवं नालों का विकास आदि से भी मृदा अपरदन होता है।

मृदा अपरदन के प्रभाव (Effects of Soil Erosion)

मृदा अपरदन द्वारा जब पर्यावरण का स्वरूप परिवर्तित होने लगता है तो अनेक विषमताएँ आने लगती हैं, साधारण धरातल में बीहड़ उत्पन्न हो जाते हैं, मृदा की उत्पादकता क्षीण होकर बंजर प्रकृति बन जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित अपरदन के कारण पर्यावरण में निम्न प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगते हैं–

(1) भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास हो जाता है।

(2) धरातल पर नालियाँ (Rill), बीहड़ (Ravine) तथा अवनलिकाएँ (Gullie) विकसित हो जाती हैं जिससे उक्त भूमि अनुपयोगी हो जाती है।

(3) नदियों एवं सरिताओं (Streams) की तली में अवसाद बढ़ने से उत्थान होने लगता है।

(4) जल भण्डार गृहों (Reservoirs) में गाद (अवसाद) जमा होना।

(5) वनस्पति आवरण में कमी।

(6) वनस्पति आवरण हास के कारण पारिस्थितिकीयतन्त्र विकृत हो जाता है।

(7) पर्वतीय एवं मैदानी भागों में अपरदन से मृदा समाप्त हो जाती है।

(8) मृदा की उत्पादकता में ह्रास होता है।

(9) मृदा जमाव से चरागाह कृषि भूमि, सड़कों आदि को नुकसान होता है।

(10) मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया त्वरित अवस्था में आ जाती है।

(11) प्राकृतिक प्रकोपों (बाढ़, सूखा) में वृद्धि।

(12) सुपोषीकरण, मत्स्यन में कमी तथा जल विद्युत शक्ति में कमी आदि पर्यावरणीय प्रभाव भी दृष्टिगोचर होते हैं।

जल अपरदन द्वारा मृदा हानि का प्राक्कलन (Quantification of Water Erosion**)**

केन्द्रीय भूमि एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान देहरादून के वैज्ञानिकों ने शोध कर स्पष्ट किया है कि जलग्रहण से मृदा हानि का अनुमान ज्ञात करने के लिए समीकरण विकसित करने के लिए विश्व के अनेक स्थानों में प्रयास किए गए हैं। जल क्षरण द्वारा मृदा हानि का प्राक्कलन आधुनिक एवं प्रचलित निम्नलिखित वैश्विक मृदा हानि समीकरण (Universal Soil Loss Equations) द्वारा किया जाता है जिसे अमेरिका की कृषि अनुसंधान विकसित किया है (Wischmeier, 1959)।

जहाँ,

A = वार्षिक मृदा हानि (टन प्रति हैक्टेयर) (AverageAnnual Soil Loss)

R= वर्षा क्षरणशीलता सूचकांक (RainfallErosivity Index)

K= मृदा क्षरणीयता कारक (Soil Erodibility)

Factor)– एक संख्या जिसका मान दी गई मानक मृदा दशाओं में मृदा हानि की मात्रा प्रति इकाई क्षरणीयता पर निर्भर है।

L = ढाल लम्बाई कारण (Slope Length Factor) – एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा और एक मानक लम्बाई (22.6 मीटर या 72.5 फीट) वाले क्षेत्र से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

S=ढाल प्रवणता कारक (Slope Steepness Factor) – एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा और एक मानक ढाल (9%) वाले क्षेत्र से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती हैं।

C = शस्य प्रबन्ध कारक (Cropping Management Factor) – एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा और एक मानक उपचार वाले क्षेत्र (वनस्पतिविहीन परती कृषि भूमि) से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

P = संरक्षण कार्य प्रणाली कारक (Conservation Practice Factor)–एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा जो संरक्षण कार्य से प्राप्त और एक ही संरक्षणविहीन क्षेत्र तीव्रतम ढाल की दिशा में जुताई से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

उपर्युक्त समीकरण निर्दिष्ट दाल (9 प्रतिशत) तथा क्षेत्र एवं लम्बाई (22.6 मीटर) में प्रयुक्त आंकिक आकड़ों के आधार पर कों विकसित किया गया है। इन इकाइयों के चुनने का कारण यह था

कि अनुसंधानरत अधिकतर केन्द्रों के प्रयोगात्मक क्षेत्रों पर ढाल और लम्बाई को यही मानक दशायें प्रयुक्त की गई थीं। अतः उसके द्वारा भिन्न–भिन्न क्षेत्रीय दशाओं के लिए भिन्न–भिन्न मानक दशाओं का चुनाव किया जा सकता है। समीकरण में प्रयुक्त R, K तथा s ऐसे कारक हैं जिन्हें सामान्यतः नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। जबकि L,C और P कारकों को भूमि प्रबन्ध, शस्य प्रबन्ध तथा संरक्षण विधियों के प्रयोग से किसी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार किसी दिए गए प्रवाह क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की कृषि एवं जल संरक्षण की प्रणालियों का समुचित चुनाव एवं हम सम्भावित मृदा हानि का पूर्वानुमान (Prediction) इस समीकरण की सहायता से किया जा सकता है।विभिन्न कारकों को ज्ञात करने के संक्षिप्त विवरण निम्नप्रकार हैं–

(1) वर्षा क्षरणशीलता सूचकांक (Rainfall Erosivity Index) :

वर्षा प्रचण्डता सूचकांक (EI) जो इस समीकरण में ''R'' कारक के रूप में प्रयुक्त हैं। इसको वार्षिक मृदा क्षरण ज्ञात करने के काम में लाया जाता है। ''R'' सूचकांक का मासिक मान शस्य प्रबन्ध कारक को ज्ञात करने में प्रयोग किया जाता है। रामबाबू एवं अन्य (1978) ने भारत के 45 विभिन्न स्थानों का मासिक एवं वार्षिक ''R'' सूचकांक का पता लगाया है तथा भारत का समान वर्षा अपरदनशीलता मानचित्र (Iso Erodent Map of India) विकसित किया है। इस मानचित्र से भारत के किसी स्थान का वर्षा क्षरण सूचकांक ''R'' ज्ञात किया जा सकता है।

R का मान निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$R = 8.12 + 0.562 \times$ वार्षिक वर्षा

(2) मृदा क्षरणीयता कारक (Soil Erosivity Factor,K) :

मृदा क्षरणीयता कारक ''K'' विभिन्न मृदाओं के क्षरण की दर को दिखलाता है। समान ढाल, वर्षा, वनस्पति आवरण तथा शस्य प्रबन्ध होने के बावजूद विभिन्न मृदाओं का अपरदन भिन्न– भिन्न होता है। यह मृदा लक्षणों पर मुख्यतः निर्भर करता है। समीकरण में प्रयुक्त ''K'' 9 प्रतिशत मानक ढाल पर उसकी संख्या को प्रकट करता है। कुछ मुख्य मृदाओं के लिये ''K'' कारक दिया गया है (विशमायर एवं स्मिथ, 1978)। मुदा क्षरणीयता कारक ''K'' को नोमोग्राफ द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है।

7.12 मृदा संरक्षण(Soil Conservation)

मृदा संरक्षण वह विधि है जिसमें किसी कृषि प्रकार (शैली)द्वारा भूमि का दक्षतापूर्वक प्रयोग करके क्षरण से बचाया जाये। योजना आयोग के अनुसार ''मृदा संरक्षण का अर्थ मृदा प्रबन्ध की सभी विधियों तथा अन्य उपायों से है जो मृदा व उसकी उर्वरता की सम्पूर्ण या आंशिक हानि से रक्षा कर सके, जो जल व वायु अपरदन से, जलमग्नता से उर्वरक तत्त्वों के अलगाव से अपक्षालन अथवा सघन खेती या चराई द्वारा हो सकता है।'' प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी तत्त्वों में भूमि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिसे मनुष्य प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पीढी–दर–पीढी उपयोग करता आ रहा है लेकिन भूमि सुधार पर ध्यान नहीं दिया जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे मृदा का ह्रास होता रहा। भारत में 1920 के दशक में पहाड़ी क्षेत्रों में मृदा अपरदन की भीषण समस्या तथा शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लगातार सूखे की गम्भीर समस्या पर सरकार ने ध्यान दिया तथा मृदा संरक्षण के उचित उपायों को अपनाने पर बल दिया। सर्वप्रथम मृदा संरक्षण पर शोधकार्य सन् 1923 में माझरी शहर (मुम्बई) में प्रारम्भ किया गया।मृदा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संसाधन है, जिस पर प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था निर्भर रहती है जिसे प्रत्यक्ष रूप से यहाँ का पर्यावरण नियन्त्रित करता है। पर्यावरण को मृदा अपरदन असन्तुलित

करता है अतः मृदा अपरदन पर नियंत्रण अत्यावश्यक हो गया है। मृदा अपरदन के उद्देश्यों में वर्षा, जल की बूंदों से भू–सतह की रक्षा, वर्षा जल की भूमि में अन्तःसंचरण को दर एवं मात्रा में वृद्धि करना, धरातलीय वाही जल के आयतन एवं वेग में कमी करना तथा मृदा की अपरदनशीलता में कमी लाना प्रमुख हैं। मृदा अपरदन पर प्रभावी नियंत्रण शस्य वैज्ञानिक विधियों (Agronomic methods) तथा यान्त्रिक विधियों (Mechanical Methods) द्वारा लगाया जा सकता है। सामान्यतया निम्नलिखित विधियों द्वारा मृदा का प्रभावी संरक्षण किया जा सकता है–

(1) वनस्पति आवरण तथा संरक्षी वनरोपण (Vegetative Cover and Protective Afforestation)–वनस्पति आवरण से भूमि में नमी बनी रहती है तथा वर्षा की बूंदों के कारण मिट्टी का क्षय नहीं हो पाता है। वनस्पति आवरण से मृदा कण आपस में संगठित रहते हैं। वनस्पति आवरण से जल का प्रवाह भी धीमा होता है जो मृदा अपरदन को कम करता है।

(2) समोच्य कृषि (Contour Farming)– इसके अन्तर्गत ढालू भूमि पर समोच्च रेखाओं के अनुसार कृषि क्रियायें (जुताई, रोपण कर्षण, नालीदार जुताई करते हैं जिससे ढाल की प्रवणता अवरुद्ध होकर जल के बहाव को नियन्त्रित करती है, परिणामस्वरूप मृदा अपरदन में कमी आती है। इसमें ढलुआ खेतों की ढाल को अनुप्रस्थ दिशा में जुताई की जानी चाहिए ताकि वर्षा जल आसानी से निचले ढालों की ओर प्रवाहित होकर मृदा कटाव न कर सके।

(3) वैदिकाकरण (Terracing)–इस विधि में पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाकर कृषि की जाती है जिससे जल रुक–रुक कर बहता है व मृदा को अपरदित नहीं कर पाता है, इसे समोच्च मेडबंद (Contour Bunding) भी कहते हैं। भारत में असम, मेघालय, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश तथाउत्तराखण्ड में मुख्यतः वैदिकाकरण को अपनाया गया है। शिवालिक हिमालय में लघु स्तर पर भी ऐसा किया गया है।

(4) पलवार बनाना (Mulching)–यह विधि वायु व 'जल अपरदनों को कम करती है। इसमें शाक पौधों जैसे कि दालों के पौधों, सरसों के पौधों आदि के मूलतन्त्र सहित तने के आधार भाग को ठूंठ के रूप में फसल काटते समय खेत में पंक्तियों में छोड़ देते हैं। ढूंढ पंक्तियाँ मृदा नमी के वाष्पन को रोकती हैं और मृदा को कार्बनिक पदार्थ देती हैं जिससे नमी व मृदा उर्वरता का अनुपात बढ़ जाता है।

(5) फसल चक्र (Crop Rotation)–एक ही फसल को लगातार बोने से उस खेत की उर्वरता में ह्रास होने लग जाता है। अतः जलवायुवीय दशाओं के अनुसार दो या तीन फसलों को एक के बाद एक क्रम में उगाते हैं, इसे फसल चक्र (Crop Rotation) कहते हैं। इस चक्र में कम से कम एक फसल फलीदार (Leguminous) होनी चाहिए जैसे चना, मेथी, मटर, ग्वार आदि की जड़ों में राइजोबियम (Rhizobium) जीवाणु ग्रन्थिया होती हैं जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके इसे नाइट्रेट में बदल कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

(6) फसल प्रबंधन (Crop Management)–इसमें वर्षा काल में खुले खेतों में फसलों की बुआई की जानी चाहिए तथा वर्षा के समय खेतों को खुला न छोड़कर ऐसी फसलों की खेती की जाये जो अधिकतम क्षेत्र को ढक सके तथा मृदा कणों को आपस में बाँध सके ताकि वर्षाजल भूसतह से सीधे प्रहार द्वारा मृदा को काटकर न वहा सके। अलग–अलग पंक्तियों में भिन्न– भिन्न फसलें उगाने (अन्तराल शस्य–Inter Croping) तथा एक के साथ कई फसलों के सामूहिक रूप से उगाने (मिश्रित शस्य–Mixied Croping) से भी मृदा अपरदन में कमी आती है।

(7) पट्टीदार कृषि (Strip Cropping)–इस प्रकार की कृषि में फसलों को चौड़ी पट्टीकाओं के प्रतिरूप में उगाते हैं। यह कृषि ढलान वाली भूमि के लिए उपयुक्त रहती है। पट्टिकाएँ ढलान से 90° के कोण पर बनायी जाती हैं या वायु की दिशा के 90° कोण पर बनायी जाती हैं।

(8) शुष्क कृषि (Dry Farming)–वर्षा घोषित क्षेत्रों के लिए शुष्क कृषि उपयुक्त रहती हैं इसमें मृदा अपरदन रोकनेके लिए घास, चारा बोते हैं।

(9) स्थानान्तरित कृषि पर प्रतिबन्ध (Controlling on Shifting Cultivation)–विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली स्थानान्तरी कृषि को नियन्त्रित करना चाहिए।

(10) पशु चारण पर नियन्त्रण (Controlled Grazing)–अनियन्त्रित पशुचारण के कारण भूमि पर वनस्पति आवरण समाप्त होकर मृदा अपरदन को गति देता है अतः स्थायीचरागाह बनाकर इसे नियन्त्रित करना चाहिए।

(11) अवनलिका नियन्त्रण (Gully Control)–अवनलिका अपरदन को रोक बांध (Check Dam) बनाकर एवं वनस्पति आवरण में वृद्धि करके नियन्त्रित किया जा सकता है।अवनलिका अपरदन का प्रकार वहाँ की जलीय स्थिति, तलछट की मात्रा, मृदाओं एवं लोगों की वनस्पति की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

(12) सहबद्ध मेड़ निर्माण (Tied&ridging)– इसमें पहाड़ी ढालों की जुताई की ढाल की दिशा में अनुप्रस्थ दिशा में आर–पार की जाती है जबकि मेड़ों का निर्माण ढाल की दिशा में तथा जुताई से बने कुंडे (Furrows) के आर–पार किया जाता है जिससे पहाड़ी ढालों में अनेक लघु बेसिन बन जाते हैं जिनमें वर्षाजल अवरुद्ध रहता है एवं मृदा अपरदन रूक जाता है।

(13) बाढ़ क्षेत्रों का संरक्षण (Conservation of Flood Areas)–बाढ़ के दौरान भी मृदा ह्रास होता है अतः बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का प्रबन्धन किया जाना चाहिए।मृदा संरक्षण का विवेकपूर्ण उपयोग (Rational use of soil Resource) करना चाहिए। The world strategy for conservation of Nature **(1980) के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग3000वर्ग किमी कृषि भूमि निर्माणात्मक कार्यों में प्रयोग कर ली जाती है। अतः मृदा संसाधन का संरक्षण पर्यावरण प्रबन्धन क**ा महत्त्वपूर्ण पक्ष है

7.13 सारांश

मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण आधार है जो अन्य संसाधनों को एक आधार प्रदान करती है। मृदा का निर्माण करने वाले कारकों में जलवायु जीवमण्डल, उच्चावच, मूल पदार्थ, समय की निरन्तर प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मृदा का निर्माण होता हुआ है। प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों में मृदा का अपरदन भी होता है। मृदा संरक्षण के लिए मृदा संरक्षण के सामान्य निगम का प्रयोग कर मृदा को अपरदन में बचाया जा सकता है।इस इकाई का अध्ययन मृदा संसाधन को समझने में सहायक होगा।

7.14.पारिभाषिक शब्दावली

वैदिकाकरण (Terracing)–इस समोच्च मेडबंदी भी कहते हैं। इस विधि मे पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाकर कृषि की जाती हैं। जिससे जल रुॅक–रुक कर बहता है।

7.15.बोध प्रश्न

7.15.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न–1.मृदा संसाधन के वर्गीकरण के बारे में विस्तार से समझाइये।

प्रश्न–2.मृदा समाधान के वितरण के बारे मे बताइये।

7.15.2. लघु उत्तनीय प्रश्न–

प्रश्न–1. मिट्टी संरक्षण के कोई पाँच नियम बताइये।

प्रश्न–2. पेडाल्फर मृदा के बारे में बताइये?

प्रश्न–3. वर्टीसॉल को समझाइये ?

बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न–1. कौन सी मृदा कटिबन्धीय (Zonal) नहीं है ?

(अ) पेडोल्फर्स **(ब)** पेडोकल्स

(स) टुण्ड्रा **(द)** रेण्डसीना

प्रश्न–2. निम्नांकित में से कौन सी मृदा अक्षेत्रीय (Azonal) है?

(अ) पेडोकल **(ब)** पेडोल्फस

(स) जलोढ़ **(द)** रेगुर

प्रश्न–3. प्रेयरी मृदा का रंग काला होता है ?

(अ) मूल पदार्थ **(ब)** जलवायु

(स) जीवांश से **(द)** उच्चावच से

प्रश्न–4. स्टेपी प्रदेश में कौनसी मृदा मिलती है?

(अ) पोडजोल **(ब)** चरनोजम

(स) लेटेराइट **(द)** चेस्टनर

प्रश्न–5. रेगुर मिट्टी कहते है?

(अ) लाल मिट्टी को **(ब)** काली मिट्टी को

(स) लेटेराइट मिट्टी को **(द)** दलदली मिट्टी को

7.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. डॉ बी. सी जाट ''संसाधन भूगोल मलिक बुक कम्पनी संस्करण 2021
2. प्रो जगदीश सिंह ''संसाधन भूगोल'' ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
3. Dr. Alka Gautam: Resources Geography.Sharda Pushtak Bhawan Prayagraj

इकाई–8 जीवीय संसाधन प्राकृतिक वनस्पति का वर्गीकरण, वितरण, लुग्दी तथा कागज उद्योग

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 वन संसाधन

8.4 प्राकृतिक वनस्पति की संरचना एवं स्वरूप

8.5 प्राकृतिक वनस्पति को प्रभावित करने वाले कारक

8.6 प्राकृतिक वनस्पति के प्रकार वितरण

8.7 वनों का विश्व वितरण

8.8 विश्व में लकड़ी का उत्पादन

8.9 कागज एवं लुग्दी उद्योग

8.10 सारांश

8.11 पारिभाषिक शब्दावली

8.12 बोध प्रश्न

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 प्रस्तावना

संसाधन भूगोल में प्राकृतिक वनस्पति एक प्रमुख जैवीय संसाधन है। प्राकृतिक वनस्पति जीविंत

जीव संसाधन है जो जलवायु संतुलन में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। प्राकृतिक वन पर मानव के विकास, पारिस्थितिकी संतुलन, निर्भर करता है। प्राकृतिक वनस्पति में वनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्राकृतिक वनस्पति प्रकृति में सत्तुलन बनाने के साथ–साथ मानव के आवश्यकता की पूर्ति भी करती है इसलिए महत्वपूर्ण संसाधन है। प्राकृतिक वनस्पति को अनेक कारक जैसे मृदा, ढाल, उच्चावच, भौगर्भिक संरचना, जलवायु आदि प्रभावित करते है। इस इकाई में प्राकृतिक वनस्पतिका वर्गीकरण एवं वितरण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

8.2उद्देश्य

इकाई में प्राकृतिक वनस्पति या जीवीय संसाधन का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिस के उद्देश्य निम्नलिखित है–

(अ) जीवीय संसाधनों की विषय वस्तु को स्पष्ट करना,

(ब) प्राकृतिक वनस्पति को वनस्पति जाति, वन, वितरण के माध्यम सेस्पष्ट करना

(स) शिक्षार्थी जीवीय संसाधनो के प्रकारो, वितरण, उपयोग, के विषय में व्याख्या कर सकेंगे।

(द) शिक्षार्थी को जीवीय संसाधनों मे वन समुदाय के बारे में अवगत करना।

8.3 वन संसाधन Forest Resources

प्राकृतिक वनस्पति एक प्रमुख स्थलीय संसाधन है। भौतिक दशाओं में स्वतः विकसित होने वाला पादप समुदाय प्राकृतिक वनस्पति कहलाता है जिसमें पेड़–पौधे, झाड़ियाँ तथा घास– सम्मिलित हैं। ये पादप समुदाय विभिन्न आकार, स्वरूप तथा ऊँचाई वाले होते हैं। प्राकृतिक वनस्पति की विस्तृत विवेचना से पूर्व वनस्पति जाति (Flora), वनस्पति (Vegetation) तथा वन (Forest) में अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है।

वनस्पति जाति (Flora)

किसी भौगोलिक प्रदेश में किसी समय विशेष से सम्बन्धित या पायी जाने वाली समस्त जातियों के पेड़–पौधे तथा झाड़ियाँ (पादप जीवन) वनस्पति जात कहलाती हैं। इन्हें जाति विशेष के आधार पर एक वर्ग में सूचीबद्ध किया जा सकता है। इन्हें देशज पादप जीवन (Indigenous or Native Plant Life) भी कहते हैं क्योंकि ये वनस्पतियाँ सामान्यतया प्राकृतिक रूप से किसी निश्चित समयावधि में उद्भूत एवं विकसित होती हैं।

वनस्पति (Vegetation)

पेड़–पौधों को जाति विशेष, जैसे वृक्ष, छोटे पौधे, झाड़ियाँ, घास, सूक्ष्म कार्क तथा लाइकेन आदि का विशिष्ट समूह वनस्पति कहलाता है जो किसी भौगोलिक परिवेश में एक–दूसरे के साथ साहचर्य से रहते हैं।

वन (Forest)

वृक्षों एवं झाड़ियों से अवतरित बड़े भू–भाग को वन कहते हैं। इस प्रकार की वनस्पति में वृक्षों की प्रधानता होती है। पुरा वनस्पति शास्त्रियों (Palacobotanist) ने प्राकृतिक वनस्पति के उद्भव के आधार पर वनों को दो वर्गों में विभक्त किया है। प्रथम देशज (Indigenoù) या स्थानिक तथा दूसरी

विदेशक जिसे अनेक विद्वानों ने बोरियल (Boreal) भी कहा है। प्राकृतिक वनस्पति का विकास उसके भौगोलिक परिवेश से घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित रहता है, जिसका अध्ययन पादप पारिस्थितिकी में किया जाता है।

8.4 प्राकृतिक वनस्पति की संरचना एवं स्वरूप (Forms and Structure of Natural Vegetation)

वनस्पति विकास पारिस्थितिकी तन्त्र के भौतिक लक्षणों पर निर्भर करती है। इनमेंधरातलीय उच्चावच एवं जलवायु की प्रमुख भूमिका है, जिनके आधार पर वनस्पति कीसंरचना एवं स्वरूप में भिन्नता आ जाती है। वनस्पति की संरचना को पौधों के भौतिक स्वरूप, ऊँचाई एवं आकार के आधार पर विभक्त किया जाता है। संरचना एवं स्वरूप के आधार पर वनस्पति निम्नलिखित रूपों में मिलती है–

(1) वृक्ष (Tree)

यह काष्ठयुक्त (woody) तथा दीर्घ आयु वाले पौधे होते हैं तथा ऊपरी शाखाओं (Trunk) की पत्तियाँ युक्त वितान (Canopy) होती हैं।

(2) झाड़ी (scrub)

ये भी काष्ठ वाले लम्बी आयु के प्रौधे होते हैं लेकिन इनका तना भूसतह के पास ही विभक्त हो जाता है तथा धरातल के पास ही पत्तियों की सघनता बढ़ जाती है।

(3) महालतायें या कठलताएँ (Lianas)–

ये किसी वृक्ष या झाड़ी के सहारे विकसित होती हैं। इनका तना काष्ठयुक्त होता है, लेकिन पतला एवं टेढ़ा–मेढ़ा होता है। ये विषुवत् रेखीय क्षेत्रों में सर्वाधिक मिलती हैं।

(4) लताएँ (Climbers)

ये दूसरे पौधों पर विकसित होती हैं लेकिन अनेक बार स्वतन्त्र रूप में धरातल पर भी विकसित हो जाती हैं। ये कठलता (Lian) से छोटी होती हैं तथा विषुवत् रेखीय सदाबहार वनों में सर्वाधिक मिलती हैं।

(5) तृण (Herbs)

ये काष्ठविहीन (Woodless), कोमल एवं छोटे पौधे होते हैं, जो विविध रूपी पत्तियों वाले होते हैं। ये एक वर्षीय पादप हैं, लेकिन इनमें कुछ दीर्घायु भी होते हैं।

(6) घास (Grasse)

घास भी तृण सदृश्य है, अन्तर केवल इतना ही है कि तृण की पत्तियाँ चौड़ी होती हैं जबकि घास की पत्तियाँ पतली होती हैं, तथा इनकी ऊँचाई झाड़ियों की तुलना में कम होती है।

(7) लाइकेन (Lichen)

भूसतह के समीप पाये जाने वाले काष्ठविहीन शैवाल एवं कवक (Algal and Fungus) को लाइकेन कहते हैं, जिनके पत्तियाँ नहीं होती हैं। ये प्रदूषण के प्रति अति संवेदनशील होते हैं।

8.5 प्राकृतिक वनस्पति को प्रभावित करने वाले कारक(Factors Affecting Natural Vegetation)

प्राकृतिक वनस्पति का आकार (Size), अवस्थिति (Location) तथा प्रकृति (Character) निम्नलिखित विस्तृत विविधता वाले पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होते हैं–

(1) धरातल (Relief)

समतल जमीन होने के कारण वहाँ पर पेड़–पौधों व जीव– जन्तु की कमी पायी जाती है जबकि उबड़–खाबड़ जमीन पर जो मनुष्य की पहुँच से दूर हो, वहाँ पर जीव–जन्तु एवं वन अधिक मात्रा में पाये जायेंगे। पथरीली जमीन पर वनस्पति की कमी होती है।

(2) भूमध्य रेखा से दूरी (DistancefromEquator)

भूमध्य रेखा के पास घने जंगल पाये जाते हैं तथा ज्यों–ज्यों हम भूमध्य रेखा से दूर होते जायेंगे वैसे ही पानी की कमी के साथ–साथ वनों की मात्रा में कमी आती जाएगी ।

(3) जलवायु (Climate)

जलवायु के निम्नलिखित कारक वनस्पति वितरण को प्रभावित करते हैं।

(i) तापमान (Temperature)

भूमध्य रेखा के आस पास के क्षेत्रों में जल और तापमान की अधिकता के कारण घने वन पाये जाते हैं तथा वृक्ष काफी ऊँचे–ऊँचे पाये जाते हैं तथा नीचे काफी मात्रा में लताएँ एवं पौधे पाये जाते हैं तथा किलिमंजारो व केन्या में (माउन्ट किलिमंजारो 5895 मीटर, माउन्ट केन्या, 5199 मीटर), 5,000 मीटर से अधिक ऊँचे स्थलों पर तापमान में कमी होने लगती है, जिससे वृक्षों की मात्रा में कमी आती जाती है।

(ii) सूर्य का प्रकाश (Sunlight)

जिसे स्थान पर सूर्य की किरणें सीधी एवं अधिक समय तक पड़ती हैं उस स्थान पर पेड़ों की ऊँचाई अधिक होती है। वृक्षों की आयु भी अधिक पाई जाती है। पेड़ों में सूर्य की किरणों को प्राप्त होने की होड़ लगी रहती है। उदाहरणार्थ– रेडवुड के तने की ऊँचाई 300–400 फीट तक होती है।

(iii) वर्षा (Precipitation)

जहाँ पर अधिक मात्रा में वर्षा होती है वहाँ वृक्ष भी अधिक पाये जाते हैं जबकि कम वर्षा वाली जगह पर कम वृक्ष पाये जाते हैं जहाँ पर कम वर्षा परन्तु रुक–रुक कर होती है, वहाँ पर वृक्षों की मात्रा अधिक पायी जायेगी। जल की उपलब्धता के अनुसार पादप अनुकूलन कर लेते हैं। जो पादप शुष्क दशाओं में अनुकूलन करते हैं, उन्हें मरुद्भिद (Xerophyte) पादप कहते हैं। इनकी जड़ें मृदा से 16 फीट तक गहरी होती हैं। पत्तियाँ छोटी होती हैं ताकि वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल की हानि न हो। इसी प्रकार वर्षा, वनों के दलदली क्षेत्रों (Swamps), कच्छ क्षेत्रों (Marshy Areas), झीलों तथा आर्द्र क्षेत्रों (Bogs) में अनुकूलित पादपों को आर्द्रभिद (Hygrophyte) पादप कहते हैं। इनमें उच्चआर्द्रता सहन करने की क्षमता होती है। ऐसे पादप जो न तो ज्यादा नमी सहन करते हैं तथा न ही शुष्कता तो उन्हें समोदद्भिद् (Mesophyte) पादप कहते हैं, जबकि जलीय पादपों को जलोद्भिद् (Hydrophyte) पादप कहते हैं। जल की कमी होने पर जो पादप पत्ते झड़ा देते हैं उन्हें पर्णपाती (Deciduous) वन कहते हैं।

(iv) पवन (Wind)

वायु की गति (Speed) अवधि (Duration) तथा आवृत्ति (Frequency) वनस्पति को नियन्त्रित करती है, जहाँ पर तीव्र व अधिक वायु चलती है, वहाँ पर ये वायु काफी मात्रा में नुकसान पहुँचाती है तथा वृक्षों को जमीन से उखाड़ देती है।

(अ) आर्द्रता (Humidity)

70 प्रतिशत आर्द्रता पेड़–पौधों के लिए उपयुक्त है। इससे कम वं ज्यादा आर्द्रता पेड़–पौधों के लिएहानिप्रद होती है।

(4) मृदा (Soil)

मिट्टी से भी वृक्ष प्रभावित होते हैं। जहाँ पर उच्चकोटि की मृदा पायी जाती है वहाँ पर उतने ही प्रकार के पाये जाते हैं। कुछ विशेष प्रकार की मिट्टियों में विशेष प्रकार के पेड़ पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ–

(i) सदाबहार वन लेटेराइट मिट्टी

(ii) मानसूनी वन लाल दुमट मिट्टी

(iii) कोणधारी वन पोडजेल मिट्टी

(iv) पतझड़ वन लाल दुमट मिट्टी

(अ) मरुस्थलीय वन लाल दुमट मिट्टी

(5) भूजल (Ground Water)

जिस स्थान पर भूमिगत जल की गहराई कम होती है, वहाँ पर पेड़–पौधों की मात्रा अधिक पायी जाती है और जहाँ पर गहराई अधिक पाई जाती है, वहाँ पर पेड़–पौधों को मात्रा भी कम पाई जाती है। उदाहरण पहाड़ी इलाकों में जहाँ नदियाँ निकलती हैं और आगे चलकर कहीं पर ये जमीन के नीचे चली जाती है, वहाँ पर अधिक मिलते है।

(6) समुद्र तल से ऊँचाई (Altitude)–

ज्यों–ज्यों ऊँचाई पर जायेंगे त्यों–त्यों तापमान में कमी आती जायेगी, कमी के कारण जैव विविधता में भी कमी आ जायेगी।

(7) मानवीय बसाव (Human Settlement)

मानवीय बसाव का भी वन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ने के कारण मनुष्य ने पेड़–पौधों को काटकर उसकी जगह पर कृषि प्रारम्भ कर दी और जब तक उस जगह उर्वरा शक्ति रहती थी तब तक कृषक उस पर कृषि करता था और जब इसकी उर्वर शक्ति कम होती है या समाप्त हो जाती तो उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते थे।

8.6 प्राकृतिक वनस्पति के प्रकार, वितरण(Types and Distribution of Natural Vegetation)

वनों को प्राकृतिक वनस्पति से पृथक् कर अध्ययन करना असम्भव है क्योंकि ये प्राकृतिक वनस्पति को संरचना के मूल घटक हैं। अतः वनों का अध्ययन प्राकृतिक वनस्पति के साथ ही करते हैं। पृथ्वी पर विद्यमान भौगोलिक विविधताओं के कारण सर्वत्र समान प्रकार की वनस्पति नहीं पायी जाती है। वनस्पति का प्रकार जलवायुविक दशाओं तथा उच्चावच सेप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित रहता है। इसी कारण भूमध्य रेखा से उच्च अक्षांशों की ओर वर्षा एवं तापमान में क्रमशः कमी आने के कारण वनस्पति की प्रवृत्ति बदल जाती है। इसी प्रकार उच्च तापमान एवं पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में स्थित होने पर भी ऊँचाई पर जाने पर उच्च अक्षांशों के सदृश्य वनस्पति मिलती है। उदाहरणार्थ हिमालय में 2400 से 3600 मीटर की ऊँचाई पर कोणधारी वनस्पति पायी जाती है। इस प्रकार जलवायु,

धरातलीय दशाओं भौगोलिक स्थिति, जल की उपलब्धता आदि कारकों के आधार पर पृथ्वी की सम्पूर्ण वनस्पति को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है

(1) उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वर्षा वन (Tropical Evergreen Rain Forest)

उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वनों का विस्तार 10^{o} उत्तर से 10^{o} दक्षिणी अक्षांशों के मध्य है। लैटिन अमेरिका में अमेजन बेसिन (ब्राजील), एण्डीज के पर्वत पदीय क्षेत्र तथा गुयाना उच्च भूमि में सर्वाधिक विस्तार है। कोलम्बिया, मैक्सिको एवं पनामा के प्रशांत तटीय भागों में भी मिलते हैं। अफ्रीका में गिनी की खाड़ी में सियरालिओन से केमरून एवं पूर्व में गैबन तक हैं जायरे (कांगो बेसिन) में इनका विस्तार अधिक है। दक्षिण–पूर्व एशिया एवं भारतीय उपमहाद्वीप में मलेशिया, इण्डोनेशिया एवं पापुआन्यू गिनी में विस्तृत रूप में तथा दक्षिणी भारत, म्यांमार, थाइलैण्ड व हिन्द चीन में भी वर्षा वन मिलते हैं। इस प्रदेश में विषुवत् रेखीय जलवायु पायी जाती है। अतः औसत वार्षिक वर्षा 200 सेमी. से अधिक होती है। तापमान वर्षभर लगभग 27̊ सेल्सियस रहता है। इस क्षेत्र में पेड़–पौधों के विकास हेतु अनुकूल दशाएँ पायी जाती हैं। वनों के अत्यधिक सघन होने के कारण सूर्य की किरणें पेड़ों के नीचे धरातल तक नहीं पहुँच पाती हैं। सदाबहार वनों का ऊपरी भाग लम्बी–लम्बी एवं सघन लताओं से ढका रहता है। उष्ण कटिबन्धीय वन क्षेत्रों में 70 प्रतिशत भाग वृक्षों का पाया जाता है। पादपों की अनेक प्रजातियाँ यहाँ पायी जाती हैं। कांगो बेसिन में पादपों की 6500, मलेशिया में 20,000, अमेजन बेसिन में 40,000 तथा पनामा नहर क्षेत्र में 2,000 प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पायी जाती हैं। इस क्षेत्र में आबनूस, आयरनवुड, लोगवुड, ताड़, बाँस, महोगनी, एबोनी, रबर, सीवा, पारानट, तेल ताड़ आदि प्रमुख वृक्ष पाए जाते हैं। उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में पाए जाने वाले वनों में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं–

(i) लकड़ी अत्यधिक कठोर होती है।

(ii) वृक्ष अत्यधिक पास–पास सघन रूप में पाये जाते हैं।

(iii) इस क्षेत्र में विभिन्न प्रजातियों के पेड़–पौधे एक साथ पाये जाते हैं।

(iv) यहाँ वृक्ष लगभग 55 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं।

(v) मुख्य वृक्षों के नीचे अन्य छोटे–छोटे पौधे तथा लताएँ पायी जाती हैं।

(vi) सदाबहार वनों का क्षेत्र विश्व में पाये जाने वाले चौड़ी पत्ती वाले वनों के कुलभाग के 1.6 प्रतिशत भाग हैं।

(vii) इस क्षेत्र में छोटे एवं बड़े–बड़े पेड़ एक साथ पाये जाते हैं। अतः यहाँ वनों की ऊँचाई के आधार पर कई स्तर पाये जाते हैं।

(viii) सदाबहार वनों में अत्यधिक संख्या में आरोही पौधे, लताएँ, महालताएँ तथा उपरिरोही लताएँ आदि एक साथ सघन रूप में पायी जाती हैं।

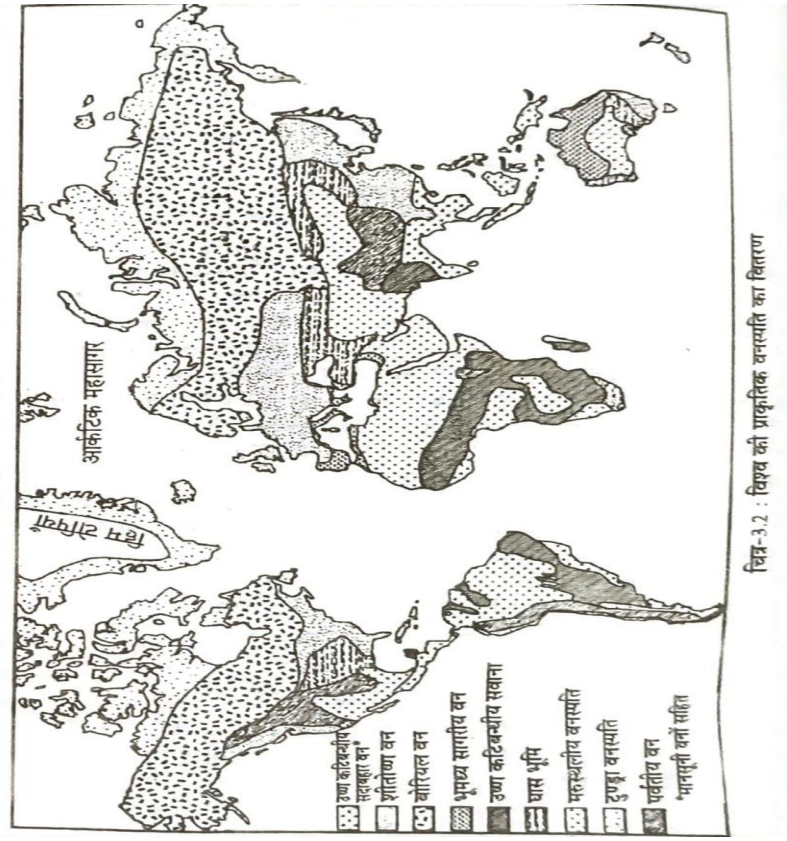

चित्र-3.2 : विश्व की प्राकृतिक वनस्पति का वितरण

उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वर्षा वन की ही एक उप–प्रजाति कच्छ क्षेत्र में पाये जाने वाली कच्छ वनस्पति होती है जो समुद्र के तटीय भाग में स्थित दलदलीय क्षेत्र में पायी जातो है। यह वहाँ पानी में तैरते हुए दिखाई देते हैं। कच्छ वनस्पति की जड़ें जटा के गुच्छे की तरह होती हैं जो पेड़ के तने को ऊपर की ओर उठाये रखते हैं। अधिकांश कच्छ वनस्पति जलोद्भिद् होती हैं।

(2) मानसूनी पतझड़ वन (Monsoon Deciduous Forest)

मानसूनी वन क्षेत्र का विस्तार 12^0 से 15^0 अक्षांशों के मध्य उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित पश्चिमी द्वीप समूह, भारत, दक्षिणी–पूर्वी एशिया के इण्डोनेशिया, मलेशिया, अफ्रीका, उत्तरी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी ब्राजील, दक्षिणी–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका फार्मूसा एवं दक्षिणी चीन आदि देशों में पाया जाता है। इस क्षेत्र में होने वाली वर्षा का 90 प्रतिशत भाग मानसूनी वनों द्वारा होने वाली वर्षा द्वारा प्राप्त होता है। सूर्य की किरणों के सीधा एवं तिरछा पड़ने के कारण यहाँ ग्रीष्मकालीन तथा शीतकालीन मुख्य ऋतुएँ पायी जाती हैं। ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 27^0 सेल्सियस तथा शीतकाल में 10^0 से 27^0सेल्सियस के मध्य रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग 150 सेमी. पाया जाता है मानसूनी क्षेत्र के वन सर्दियों को शुष्क ऋतु में अपने पत्ते गिरा देते हैं। अतः इसी कारण इन्हें पतझड़ या पर्णपाती वन कहते हैं। ये वन अधिक सघन तथा लम्बे नहीं पाये जाते हैं। औसत ऊँचाई लगभग 30 मी. तक पायी जाती है मानसूनी क्षेत्र में सागवान, साल, बरगद, पीपल, गूलर, शीशम, आम, महुआ, जामुन, नीम, मैग्रोव, यूकेलिप्टस, हल्यू, पलास, सैमल आदि प्रमुख वृक्ष पाये जाते हैं। मानसूनी क्षेत्र के उस भाग में जहाँ वर्षा का औसत 150 सेमी. से कम पाया जाता है, वहाँ बबूल, धोकरा, इमली आदि वृक्ष पाये जाते हैं, जिनकी पत्तियाँ अत्यधिक छोटी–छोटी रहती है एवं झाड़ियों अधिकतर काँटेदार पायी जाती हैं।

(3) उष्ण कटिबन्धीय सवाना वन (Tropical Savana Forest) –

सवाना वनों का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 8^0 से 30^0उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों के मध्य पाया जाता है। सवाना शब्द की उत्पत्ति Zavana से हुई है, जो एक स्पैनिश शब्द है। इसका अर्थ ही पास का मैदान होता है। सवाना घास के मैदानों को विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग जाना जाता है जैसे ब्राजील के पठार पर स्थित घास क्षेत्र को कम्पोज (Campos), ओरोनिको घाटी में लानोज (Lanos) एवं उत्तरी पूर्वी ब्राजील में पाये जाने वाले घास क्षेत्र को कटिंगा (Kating) कहते हैं। सवाना घास क्षेत्र महाद्वीपों के मध्य भाग में पाये जाते हैं, जहाँ वर्ष में क्रमिक रूप से शुष्क एवं आई ऋतुएँ पायी जाती हैं। सवाना घास मैदान के क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में औसत वार्षिक तापमान 32^0सेल्सियस तथा शीतकाल में 18^0सेल्सियस पाया जाता है। वर्षा केवल ग्रीष्म ऋतु में होती है। वर्षा का औसत 75–150 सेमी. पाया जाता है। सवाना क्षेत्र में पायी जाने वाली जलवायु ऐसी है कि यहाँ घास ही उगती है, पेड़ों का विकास नगण्य होता है। सवाना वनस्पति क्षेत्र का विस्तार अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। अफ्रीका क्षेत्र में सवाना का विस्तार पश्चिम में गिनी तट से यूगाण्डा, कीनिया एवं कांगो, अंगोला तक पाया जाता है। घास की लम्बाई लगभग 3 मीटर तक पायी जाती है।

सवाना घास में मुख्यतः तीन किस्में पायी जाती हैं–

(i) सवाना जंगल(Woodland)–

सवाना जंगल में वनस्पति में घास की अपेक्षा पेड़– पौधे अधिक पाये जाते हैं। ये सदाबहार वृक्षों के पास पाये जाते हैं।

(ii) सवाना उद्यान (Parkland)–

सवाना जंगल एवं झाड़ियों के मध्य जहाँ वर्षा का औसत 100 सेमी. से अधिक पाया जाता है, यहाँ घास क्षेत्र के मध्य उष्ण कटिबन्धीय वृक्ष बहुत कम संख्या में पाये जाते हैं।

(iii) सवाना झाड़ियाँ (Scrub) –

जहाँ वर्षा की मात्रा कम होती है, वहाँ घास के साथ– साथ काँटेदार छोटी–छोटी झाड़ियाँ भी उग जाती है। झाड़ियाँ अधिकतर मरुस्थलीय क्षेत्र के पास पायी जाती हैं।

ब्राजील के सवाना में घास पाँच प्रकार की मिलती हैं–

(i) सवाना सेराडो (Savana Cerrado)

ब्राजील के मिनास गेरास तथा साओपालो राज्यों में विस्तृत घास के मैदानों के मध्य अर्द् शुष्क वनस्पति के क्षेत्र को सेराडो कहते हैं। यहाँ घास क्षेत्र के मध्य पाए जान वाले वृक्ष वर्षाकाल में सदाबहार जैसे तथा शुष्क ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिरा देने वाले होते हैं। इनकी ऊंचाई लगभग 10–12 मीटर पायी जाती है।

(ii) केम्पो सेराडो (CampoCerrado)

सवाना सेराडो क्षेत्र के पश्चिमी भाग में वर्षा की मात्रा के कम होने के कारण वृक्षों की संख्या कम हो जाती है। यहाँ शुष्क ऋतु अधिक लम्बी पायी जाती है।

(iii) केम्पो स्वाजो सवाना (CampoSwajoSavana) –

इस क्षेत्र में वर्षा की अत्यधिक कमी के कारण केवल झाड़ियाँ पायी जाती हैं। वृक्ष प्रायः दूर–दूर तक कम ही पाये जाते हैं।

(iv) **केम्पो–लिम्पो** (CampoLimpo)

इस क्षेत्र में वर्षा नगण्य पायी जाती है। अतः इस क्षेत्र में झाड़ियाँ भी नहीं उगती हैं। केवल कहीं–कहीं दलदली भाग में छोटे–छोटे वृक्ष एवं घास पायी जाती है।

(v) **पेन्टेनल घास** (PantanalGrass)

दलदली क्षेत्र के आसपास भूमिगत जल की मात्रा के नजदीक होने के कारण छोटी–छोटी घास विकसित हो जाती है, उसे पेन्टेनल घास कहते हैं।

(4) भूमध्य सागरीय वन (MediterraneanForests)–

भूमध्य सागरीय वनों का विस्तारसे 40° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के लगभग पश्चिमी भाग में स्थित देशों में पाया जाता है। भूमध्य सागर के तटवर्ती देश स्पेन, पुर्तगाल, इटली, इजराइल, टर्की, लीबिया, संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में, दक्षिणी अफ्रीका का प्रायद्वीपीय भाग, दक्षिणी अमेरिका में चिली एवं आस्ट्रेलिया के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में स्थित समुद्र तटीय क्षेत्र आदि क्षेत्रों में भूमध्य सागरीय वनस्पति का विस्तार पाया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु में ग्रीष्मकाल शुष्क रहता है तथा सम्पूर्ण वर्षा शीतकाल पछुआ पवनों के प्रभाव से होती है। इस क्षेत्र का औसत वार्षिक तापमान 5°से 10°सेल्सियस के मध्य रहता है। वर्षा का वार्षिक औसत लगभग 40 से 45 सेमी. के मध्य रहता है, जिसका 90 प्रतिशत भाग शीतकाल में प्राप्त होता है।

इस क्षेत्र में सदाबहार एवं पर्णपाती ओक, बीच, पाइन एवं फर प्रमुख रूप से पाये जाने वाले वृक्ष हैं। भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में समुद्र तटवर्ती भागों में जैवून एवं अंगूर के वृक्ष बहुतायत में पाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के केलिफोर्निया में ओक, चैपरेल वृक्ष तथा **मेक्वीस**तथा बेका झाड़ियाँ पायी जाती हैं। अफ्रीका के भूमध्य सागरीय जलवायु वाले क्षेत्र में ऐरिका, इरिसिया, लोबेलिया, निफोलिया नामक पुष्पी पौधे पाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में यूकेलिप्टस पौधे अधिक संख्या में पाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में भूमध्यसागरीय वनस्पति को मैली (Mallee or Mallee scrub), चिली में मेटोरल, श्रीलंका में पटाना, दक्षिणी अफ्रीका में माछिया, भूमध्य सागरीय क्षेत्र में गैरीग व मैक्वीस कहते हैं भूमध्य सागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों में जैवून, अंजीर, नीबू एवं लोकस्ट जैसे रसदार फलों की अधिकता पायी जाती है। कहीं–कहीं पर चीड़ वृक्ष भी पाये जाते हैं। अतः भूमध्य सागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों में लम्बे–लम्बे वृक्षों से लेकर लम्बी एवं छोटी घास तथा झाड़ियाँ आदि विविध प्रकार की वनस्पति पायी जाती है।

(5) मध्य अक्षांशीय या शीतोष्ण कटिबन्धीय वनस्पति(MidlatitudeVegetation)– मध्य अक्षांशीय क्षेत्र की वनस्पति का विस्तार दोनों गोलाद्धों में लगभग मध्यवर्ती भाग में पाया जाता है। इस क्षेत्र में वन एवं घास दोनों प्रकार की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। मध्य अक्षांशीयक्षेत्र की वनस्पति का विवरण निम्नलिखित है–

(i) शीतोष्ण कटिबन्धीय पतझड़ वन (TemperateDeciduousForests)–शीतोष्णकटिबन्ध में स्थित महाद्वीपों के पूर्वी भाग में शीतोष्ण कटिबन्धीय पतझड़ वन पाये जाते हैं।इसका विस्तार उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, चीन के पूर्वी भाग एवं जापान आदि क्षेत्रों में पाया जाता है। इस क्षेत्र में ग्रीष्मकाल में औसततापमान 21°& 27° सेल्सियस तथा शीतकाल में 12°& 15°सेल्सियस तक पाया जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत 70 से 150 सेमी. तक रहता है। अतः वनों के विकास हेतु इस क्षेत्र में अनुकूल जलवायु पायी जाती है। वर्षा प्रत्येक महीने में होती है तथा शीतऋतु में कहीं–कहीं हिम वर्षा होती है। शीतकाल में इस क्षेत्र के पेड़–पौधे अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं तथा जीवन की सभी

क्रियाएँ सुषुप्तावस्था में आ जाती हैं। इस सुषुप्तावस्था को कायिक सूखा (Physiological Drought) कहते हैं। शीतोष्ण पतझड़ में वनों की पत्तियों चौड़ी होती हैं तथा वृक्ष सघन रूप में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले वृक्षों की ऊँचाई लगभग 20–25 मीटर तक होती है। शीतोष्ण पतझड़ वाले क्षेत्र में ओक, बीच, एल्म, वासवुड, ट्यूलीप, टेस्टनट, मैपुल एवं हिकोरी आदि वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है।

शीतोष्ण पतझड़ वृक्षों का थोड़ा विस्तार मंचूरिया, दक्षिणी साइबेरिया, हिमालय पर्वत के मध्यवर्ती भाग में पाया जाता है। इन क्षेत्रों में ऐश, ऐम, अखरोट, बीच, हिकरी, तून, भोजपत्र, बान, मोरू, तिलोज, यूकेलिप्टस आदि वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है।

(ii) शीतोष्ण कटिबन्धीय कोणधारी या टैगा वन प्रदेश (Temperate Conifereous or Taiga Forests)

. टैगा वनों का विस्तार केवल उत्तरी गोलार्द्ध् में पाया जाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध् में टैगा वन नहीं पाये जाते हैं। टैगा वनों को बोरियल (Boreal) वन भी कहते हैं। टैगा वन प्रदेश का विस्तार उत्तरी अमेरिका के कनाडा, अलास्का एवं ग्रीनलैण्ड में, यूरेशिया , में साइबेरिया एवं यूरोप के उत्तरी भाग में पाया जाता है। टैगा वन प्रदेश में पाये जाने वाले वृक्षों की पत्तियाँ नुकीली आकृति की होती हैं, जिनकी नोक सुई की तरह होती है। अतः इसी कारण इन्हें कोणधारी वन कहते हैं। कोणधारी वनों में स्प्रूस, पाइन, फर, लार्च एल्डर, आल्मस तुला पॉपलर तथा पोपुलस वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है। टैगा वन क्षेत्र में शीत की लम्बी अवधि तक पायी जाती है। शीतकाल में हिमपात होता है। धरातल हिम ढक जाता है। वर्षा लघु ग्रीष्मकाल में होती है जिसका समय केवल 3–4 महीने होता है। ग्रीष्मकाल में होने वाली वर्षा का औसत 25–100 सेमी. तक पाया जाता है। ग्रीष्मकाल में तापमान लगभग 6° सेल्सियस तक पाया जाता है, लेकिन शीतकाल में तापमान हमेशा हिमांक के नीचे पाया जाता है। अतः यहाँ ऐसी वनस्पति पायी जाती है, जो लघु समय में विकसित हो सके इन वृक्षों की नुकीली पत्तियाँ आर्द्रता के कम नष्ट होने में वृक्षों की सहायता करती है तथा वृक्षों का शंकुनुमा आकार होने के कारण बर्फ पेड़ों पर नहीं रुकती है तथा नीचे गिर जाती है। टैगा वनों का अधिकतम विस्तार कनाडा एवं यूरेशिया के शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में पाया जाता है। कनाडा में टैगा क्षेत्र में पाए जाने वाले कोमल वृक्षों की लकड़ी का व्यवसाय विश्व में अधिक होता है। लकड़ी काटने को या लकड़ी व्यवसाय को कनाडा में लम्बरिंग (Lumbering) तथा लकड़ी व्यवसाय में लगे लोगों को लम्बरजेक कहा जाता है।

(iii) शीतोष्ण कटिबन्धीय घास क्षेत्र (Temperate Grassland)

शीतोष्ण घास के क्षेत्रों का विकास 30° से 45°अक्षांशों के मध्य उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध् में उत्तरी अमेरिका (प्रवेश), यूरेशिया (स्टेप्स) दक्षिणी अमेरिका (पम्पास) में अर्जेन्टाइना एवं यूरुग्वे, दक्षिण अफ्रीका (वेल्डस), आस्ट्रेलिया में मरे–डार्लिंग बेसिन में (डाउन्स) तथा न्यूजीलैण्ड में केण्टरबरी मैदान में पाया जाता है।

शीतोष्ण घास के मैदान महाद्वीपों के मध्यवर्ती भाग में स्थित होने के कारण यहाँ महाद्वीपीय जलवायु पायी जाती है। इन क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में उच्च तापमान 26 से 32 सेल्सियस तथा शीतकाल में 15° सेल्सियस पाया जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत 25 से 75 सेमी. तक रहता

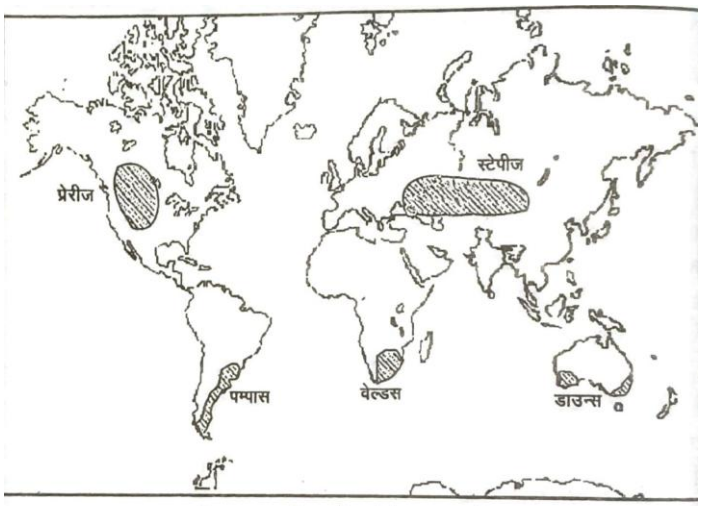

चित्र-3.3 : विश्व के शीतोष्ण घास क्षेत्र

है। शीतोष्ण घास की लम्बाई 13 से 3 मीटर तक पायी जाती है। यह उगने वाली पास गुच्छों के रूप में पायी जाती है। ग्रीष्मकाल में उच्च तापमान तथा वर्षा के कारण इसका तीव्र विकास होता है एवं शीतकाल में घास का विकास कम होता है।

(अ) प्रेयरी घास–

उत्तरी अमेरिका के संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में रॉकीज पर्वत के छायावृत्ति भाग में पायी जाती है। प्रेयरी घास को तीन भागों में बाँटा गया है–

(i) लम्बी प्रेयरी घास

जहाँ वर्षा का औसत 68–85 सेमी. तक पाया जाता है, यहाँ 3 मीटर लम्बी घास पायी जाती है।

(ii) मिश्रित प्रेयरी घास–

जहाँ वर्षा का औसत 50–60 सेमी. तक पाया जाता है, वहाँ घास की लम्बाई 1.5 मीटर तक होती है। मिश्रित घास रॉकी पर्वत के ढालों पर पायी जाती है।

(iii) पालाउन प्रेयरी घास

इस घास की लम्बाई 0.5 मीटर पायी जाती है। अतः इसे छोटी प्रेयरी घास कहते हैं। यह गुच्छेदार रूप में रॉकी पर्वत के अन्तर्पर्वतीय भाग में पायी जाती है।

(ब) स्टेपी घास–

यूरोपीय रूस एवं कजाखस्तान में कालासागर एवं कैस्पीयन सागर पश्चिमी साइबेरिया तक विस्तृत घास क्षेत्र स्टेपी घास क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। स्टेपी से घास क्षेत्र में स्टीपा, फेस्क्यू, फौदरग्रास पायी जाती है। स्टेपी पास शुष्कानुकूलित होती है।

(स) पम्पास घास–

दक्षिणी अमेरिका में अर्जेंटाइना तथा यूरुग्वे के समीपवर्ती भाग में पायी जाती है। यहाँ वर्षा की मात्रा अधिक होने से लम्बी घास पायी जाती है। ब्रिजा, बोमस, पैनीक्यूम, पास्पेलम तथा लोलियम घास पम्पास क्षेत्र में पायी जाती है। यहाँ पराना एवं पराग्वे नदी बेसिन स्थित हैं।

(द) वेल्ड्स घास–

दक्षिणी अफ्रीका के पठारी भाग, दक्षिणी ट्रांसवाल, ओरेन्ज फ्री स्टेटएवं लेसोथो में पायी जाती है। 2000 मीटर से अधिक ऊँचे पठारी भागों में अल्पाइन वेल्डस घास उगती है। थीमेडा, फेंस्टुका तथा ब्रोमुस क्षेत्र में वेल्डस पायी जाती है।

(य) डाउन्स घास क्षेत्र–

आस्ट्रेलिया के दक्षिणी–पूर्वी भाग में तथा तस्मानिया के उत्तरी भाग में डाउन्स घास क्षेत्र विस्तृत है।

(र) केन्टाबरी घास क्षेत्र–

न्यूजीलैण्ड में पायी जाने वाली शीतोष्ण घास को केन्टाबरी घास कहते हैं। यहाँ फेस्टुला, पोआ छोटी घास तथा टश्नीक लम्बी घास पायी जाती है।

(6) टुण्ड्रा वन (Tundra Forest)

टुण्ड्रा वन केवल उत्तरी गोलार्द्ध के आर्कटिक क्षेत्र में पाये जाते हैं। यहाँ लम्बी शीत ऋतु के कारण केवल मॉस, शैवाल, नरकुल तथा काई आदि किस्म की छोटी घास पायी जाती है। टुण्ड्रा का सम्पूर्ण भाग वर्ष भर हिमाच्छादित रहता है। तापमान सदैव हिमांक से नीचे रहता है। वर्षा का औसत 40 सेमी. से कम है जो हिम वृष्टि के रूप में होती है। प्रादेशिक स्थिति के आधार पर टुण्ड्रा वनस्पति को दो भागों में बाँटा गया है–

(i) आर्कटिक टुण्ड्रा वन–

इसका विस्तार उत्तरी अमेरिका तथा यूरेशिया के उत्तरी भागों में पाया जाता है। यहाँ वर्ष भर स्थायी बर्फ जमी रहती है।

(ii) अल्पाइन टुण्ड्रा वनस्पति–

टुण्ड्रा प्रदेशों में स्थित पर्वतों एवं पहाड़ियों पर पायी जाने वाली वनस्पति को अल्पाइन टुण्ड्रा वनस्पति कहते हैं।टुण्ड्रा क्षेत्र में काई तथा मॉसेस झाड़ियाँ प्रमुख रूप से पायी जाती हैं। दलदली क्षेत्र में सेज तथा मॉसेज झाड़ियाँ मिलती हैं। मॉस, केस्पीयन नामक गद्देदार सदाबहार पुष्पी पौधा टुण्ड्रा क्षेत्र में पाया जाता है। टुण्ड्रा क्षेत्र में पाए जाने वाले अन्य पादपों में गुच्छों के रूप में सैक्सीफिरेगस निबेल्स तथा चटाई के रूप में विकसित ड्राइस ऑक्टोपेटेला प्रमुख है।

(7) मरुस्थलीय वनस्पति (Desert Vegetation)–

मरुस्थलीय वनस्पति क्षेत्र का विस्तार महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में 20°से 30 डिग्री अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में पाया जाता है। अफ्रीका के कालाहारी और सहारा एशिया में थार, अरब, सिक्यांग और मंगोलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलोरेडो का सोनेरा, दक्षिण अमेरिका में अटाकामा एवं पेरू के मरुस्थलीय क्षेत्र विश्व के प्रमुख रेगिस्तान हैं। मरुस्थलीय भागों में वर्षा 25 सेमी. से0 मी0 कम होती है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 25°–30°सेल्सियस तथा शीतकाल में 12 से 20 डिग्री सेल्सियस तक पाया जाता है। ग्रीष्मकाल में कभी–कभी तापमान 50 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। अतः रेगिस्तानी भागों में उच्च तापमान तथा निम्न वर्षा के कारण काँटेदार वृक्ष तथा झाड़ियाँ पायी जाती हैं। नागफनी, सेजब्रुश, क्रिपोस्ट, सैकसोल, अकेशिया, यूकेलिप्टस आदि प्रमुख रेगिस्तानी क्षेत्र में पाये जाने वाले वृक्ष हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र में पौधों की जड़ें लम्बी, छाल मोटी तथा पत्तियाँ कम एवं काँटे अधिक पाये जाते हैं।

(8) पर्वतीय वनस्पति (Mountain Vegetation) —

जिस प्रकार विषुवत् रेखीय क्षेत्रों से ध्रुवों की ओर विभिन्न प्रकार की वनस्पतियॉ पायी जाती है, उसी प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों में भी नीचे से ऊपर की ओर सदाबहार से लेकर शुष्क तथा अल्पाइन वनस्पति पायी जाती है। उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में स्थित पर्वतों हिमालय, आल्पस, रॉकीज, एण्डीज आदि में 600 मीटर की ऊँचाई तक स्थित ढालों और घाटियों में ऊष्ण कटिबन्धीय सदाबहार तथा उपोष्ण कटिबन्धीय पर्णपाती वन बहुतायत में पाये जाते हैं। 600 मीटर से ऊपर स्थित क्षेत्र में उष्ण पर्णपाती प्रकार के वन पाये जाते हैं, जो शुष्क, अर्द्ध शुष्क, झाड़ीदार एवं काँटेदार वनस्पति के समान होते हैं। उष्ण पर्णपाती वन क्षेत्र के ऊपर शीतोष्ण कोणधारी वन पाये जाते हैं। यहाँ चीड़, स्प्रूस, देवदार, फर, डगलस, पाइन आदि 3000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित होते हैं। 3000 मीटर से ऊपर स्थित पर्वतीय ढालों और कटकों पर अल्पाइन घास क्षेत्र पाया जाता है। यहाँ टुण्ड्रा क्षेत्र में पायी जाने वाली अल्पाइन घास जैसी वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। यहाँ हमेशा बर्फ जमी रहती है। अल्पाइन घास क्षेत्र में पायी जाने वाली घास क्षेत्र में पशुचारण हेतु मनुष्य ग्रीष्मकाल में अपने पशुओं को लेकर यहाँ जाते हैं। शीतकाल प्रारम्भ होने से पूर्व ही वापिस लौट आते हैं। पर्वतों पर अल्पाइन घास क्षेत्र के ऊपर निम्न तापमान अर्थात् बर्फ पर तापमान हिमांक से नीचे रहता है। बर्फ की मोटी परत जमी रहती है अतः यहाँ वन नहीं पाये जाते है।

टुण्ड्रा पारस्थितिकी तन्त्र पर मानव प्रभाव (Human Impact on Tundra Ecosystem)

पारिस्थितिकीविदों ने स्पष्ट किया है कि टुण्ड्रा क्षेत्र में मानवीय प्रभाव के कारण पारिस्थितिकीय सन्तुलन बिगड़ रहा है। यहाँ एक बार विच्छेदित वनस्पति काफी लम्बे समय तक पुनः विकसित नहीं हो पा रही है। आर्कटिक टुण्ड्रा में अनेक स्थानों पर पेट्रोलियम दोहन के कारण यह संकट उत्पन्न हुआ है। इनमें विशेष रूप से अलास्का की प्रुढोस की खाड़ी (Prudhose) में स्थित तेल क्षेत्र तथा इसके निकट स्थित तटीय मैदानी भाग में आने वाले राष्ट्रीय उद्यानों के प्रवासी (Refugee) वन्य जीवों पर खतरा अधिक है। विश्व तापमान वृद्धि के कारण भी टुण्ड्रा पारिस्थितिकी तन्त्र संकटापन्न स्थिति में है, जो निम्न तापमान वाले स्थायी हिम (Permafrost) क्षेत्र पर निर्भर करता है। अतः मानवीय गतिविधियों की पारिस्थितिकीय सीमाओं को न लाँघकर उनकी मूल स्थिति के बने रहने में योगदान देना चाहिए।

सागरतटीय तथा ज्वारनदमुख वनस्पति(The Vegetation of Sea&shores and Estuaries)

सागर तथा भूमि के मध्य स्थित सागर तटीय क्षेत्र प्रमुख विविधतापूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र है जो बालूकास्तूप, खारे अनूप (BrackishLagoon) अन्तर्ज्वारीय कीचड़ तथा समतल बालूका चबूतरों पर विकसित हुए हैं। यहाँ पर लवणता, सागरीय प्रभाव तथा ज्वारनदमुखी आवासों के उपरान्त भी उच्च उत्पादकता बनी रही है क्योंकि इन क्षेत्रों में

(i) ज्वारीय क्रिया द्वारा पोषक तत्त्वों तथा खाद्य पदार्थों का तीव्र संचरण बना रहता है।

(ii) स्थानीय जलवायु इनके अनुकूल है।

(iii) खाद्य श्रृंखला के तहत आवृत्त सम्पर्क रहता है।

इस प्रकार के क्षेत्रों में गंगा, अमेजन, इरावदी, मीकांग आदि नदियों के डेल्टाई भाग सम्मिलित हैं। फ्लोरिडा, दक्षिणी अफ्रीका की अक्काबा खाड़ी, मलेशिया तथा न्यूजीलैण्ड भी दलदली वनों के प्रमुख क्षेत्र हैं। इस वर्ग की वनस्पति दलदली वनस्पति (Mangroves) कहलाती है। ये सागरीय लहरों तटीय भागों के कटाव को रोकते हैं। इन वृक्षों की लकड़ियाँ जल में नष्ट नहीं होती हैं। अतः ये

काफी महंगी होती हैं।

8.7.वनों का विश्व वितरण (WorldDistributionofForests)

विश्व का 31 प्रतिशत भूभाग वनावतरित है। इसमें अत्यधिक विविधता मिलती है। सर्वाधिक विविधतापूर्ण क्षेत्र विषुवत् रेखीय सदाबहार वन प्रदेश हैं। पृथ्वी पर पाये जाने वाले कुल वन क्षेत्र के प्रतिशत की दृष्टि से दक्षिणी अमेरिका प्रथम है। इसके उपरान्त उत्तरी एवं मध्य अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया का स्थान है। यूरोप तथा ओसेनिया में सम्पूर्ण विश्व के केवल 4 प्रतिशत वनक्षेत्र है। जिसका प्रमुख कारण यूरोप में घनी आबादी तथा ओसेनिया (आस्ट्रेलिया) में मरुस्थलीय दशायें हैं। देश स्तर पर पापुआ न्यूगिनी विश्व का सर्वाधिक वनावरित देश है। इसके कुल क्षेत्रफल के 93 प्रतिशत भाग पर वन हैं। इसका क्षेत्रफल विश्व का केवल 0.35 प्रतिशत है जबकि इसमें विश्व के 1 प्रतिशत वन हैं। भारत में विश्व के 2 प्रतिशत वन हैं जबकि क्षेत्रफल विश्व का 2.4 प्रतिशत है। वर्तमान में विश्व के कुल वन क्षेत्र .

सारिणी–8.1 विश्व में उप–प्रदेशों के अनुसार वनों का वितरण

(मिलियन हैक्टेयर में)

वर्ग	क्षेत्रफल
वन क्षेत्र	3999
काष्ठ क्षेत्र (Wooded Land)	1204
अन्य भूमि (वनावरण के साथ)	284
औसत वार्षिक पुनः वनरोपण	27
प्राकृतिक वन (Natural Forest)	6395
रोपित वन (Planted Forest)	291
शुद्ध वार्षिक वनों में अन्तर (2010–2015 में)	3.3
शुद्ध वार्षिक प्राकृतिक वनों में बदलाव (2010–2015 में)	6.5

शुद्ध वार्षिक रोपित वनों में बदलाव (2010–2015 में)	3.3

Source: FAO Global Forest Resource Assesment Report, 2015,p. 17.

सारिणी–8.2: विश्व में वन क्षेत्रों में परिवर्तन, 1990–2015

वर्ष	वन(हजार हैक्टेयर में)			
		अवधि	क्षेत्रफल(हजार हैक्टेयर में)	वार्षिकदर(% में)
1990	4128269	–	–	
2000	4055602	1998–2000	–7626	–0.18
2005	4032743	2000–2005	–4572	–0.11
2010	4015673	2000–2010	–3414	–0.08
2015	3999134	2000–2015	–3308	–0.08

Source: FAO Global Forest Resource Assesment Report, 2015,p.17.

का सर्वाधिक प्रतिशत ब्राजील (12.6%) के पास है। इसके बाद कनाडा (9.2), संयुक्त राज्य अमेरिका (7.1), कांगो (4.47), आस्ट्रेलिया (2.7), चीन (3.5) तथा इण्डोनेशिया (2.8) प्रमुख हैं। इनका कुल क्षेत्रफल के प्रतिशत में सन् 2015 में कांगो के 67 प्रतिशत ब्राजील के 59 प्रतिशत, कनाडा के 38 प्रतिशत, संयुक्त राज्य अमेरिका के 34 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया के 16 प्रतिशत, चीन के 22 प्रतिशत, तथा इण्डोनेशिया के 93 प्रतिशत भाग पर वनाच्छादित हैं।प्रत्येक पाँच वर्षों में **ग्लोबल फॉरेस्ट रिसोर्स एसेसमेंट रिपोर्ट** प्रकाशित करता है। जिसका नूतन प्रकाशन 2015 में हुआ। सन् 1990 में विश्व में 2128 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर वन थे जो सन् 2015 में घटकर 3999 मिलियन हैक्टेयर रह गये। सर्वाधिक वन विनाश

सारिणी–8.3: विश्व के महाद्वीपों पर वनावरण–2015

महाद्वीप/उप–प्रदेश	वन क्षेत्र	भूमि क्षेत्र पर
एशिया	596	18.51
यूरोप	1015	44.7
दक्षिणी अमेरिका	842	47.7
अफ्रीका	624	21.4

उत्तरी एवं मध्य अमेरिका	751	32.9
ओसेनिया	174	24.3
विश्व	3999	30.3

Source: FAO Global Forest Resource Assesment Report, 2015,pp19-21

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में विशेषकर दक्षिणी अमेरिका एवं अफ्रीका में हुआ हैं अभी भी पृथ्वी पर प्राकृतिक वनों का ही प्रभुत्व हैं प्राकृतिक वन 93 प्रतिशत तथा पौधरोपित वन सात प्रतिशत हैं यह रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) प्रकाशित करता है जिसमें सन् 2016 में सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goal, SDG-16) सम्मिलित किया है जिसका शीर्षक **'भूमि पर जीवन'** (Life on Land) रखा है।

सारिणी–8.4: विश्व में दस शीर्ष वन क्षेत्र वाले देश,2015

देश	**वन क्षेत्र (हजार हैक्टेयर)**	**भूमि क्षेत्र का क्षेत्रफल**	**विश्व वन क्षेत्र का का प्रतिशत**
1. रूसी संघ	814931	50	20
2. ब्राजील	493538	59	12
3. कनाड़ा	347069	38	9
4.संयुक्त राज्य अमेरिका	310095	34	8
5. चीन	208321	22	5
6. कांगो	152578	67	4
7 आस्ट्रेलिया	124751	16	3
8इण्डोनेशिया	91010	93	2
9. पीरू	73973	58	2
10. भारत	70682	21.54*	2

कुल	2686948		67

सारिणी –8.5 : विश्व के शीर्ष दस देश जहाँ तीव्र वन क्षेत्र में कमी आयी,2010–2015

देश	वार्षिक वन क्षेत्र में शुद्ध कमी	
	क्षेत्रफल (हजार हैक्टेयर)	दर प्रतिशत में
1. ब्राजील	984	0.2
2. इण्डोनेशिया	684	0.7
3. म्यांमार	546	1.8
4. नाइजीरिया	410	5.0
5. तंजाानिया	372	0.8
6. पैराग्वे	325	2.0
7. जिम्बाब्वे	312	2.1
8. कांगो	311	0.2
9. अर्जेन्टीना	297	1.1
10. बोलीविया	289	0.5

सारिणी–8.6: विश्व के शीर्ष दस देश जहाँ वनावरण बढ़ा, 2010–2015

देश	वन क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि	
	क्षेत्रफल (हजार हैक्टेयर)	दर प्रतिशत में
1. चीन	1542	0.8
2. आस्ट्रेलिया	308	0.2
3. चिली	546	1.8
4. संयुक्त राज्य अमेरिका	275	0.1
5. फिलीपींस	240	3.3
6. गैबन	200	0.9
7. लाओस	189	1.0
8.भारत	178	0.3
9. वियतनाम	129	0.9
10. फ्रांस	113	0.7

सारिणी–8.7 : प्रमुख वनस्पति वर्गो का वितरण

प्रकार	भूसतह का प्रतिशत	प्रमुख वनस्पति
विषुवत् रेखीय सदाबहार वन	8 प्रतिशत	चौड़ी पत्ती की सदाबहार वनस्पति
मध्य अक्षांशीय पतझड़ वन	7 प्रतिशत	पतझड़ मिश्रित वनस्पति
कोणधारी वन	17 प्रतिशत	नुकीली पत्ती के वन, वृक्षों की सीमित प्रजातियाँ
उष्णकटिबन्धीय सवाना वन	24 प्रतिशत	पतझड वनस्पति सहित लम्बी घास वनस्पति
भूमध्य सागरीय वनस्पति	1 प्रतिशत	सदाबहार शुष्क दशायें सहने वाली लकड़ी के वन तथा झाड़ियाँ
शीतोष्ण घास क्षेत्र	9 प्रतिशत	लम्बी प्रेयरी से लेकर छोटी स्टेजी घास
शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क वनस्पति	21 प्रतिशत	काँटेदार वनस्पति,मरूद्भिद् पौधे
टुण्ड्रा	5 प्रतिशत	काई, लाइकेन, छोटी झाड़ियाँ

ध्रुवीय	11 प्रतिशत	वर्षभर हिमाच्छादित रहने के कारण वनस्पति का अभाव रहता है।

कनाडा के लम्बरजैक

कनाडा में शीतकाल लम्बा होता है जब खेतीहर मजदूर रोजगार के लिए कनाडा के कोणधारी वनों में लकड़ी काटने चले जाते हैं तब ग्रीष्मकाल में ये लोग लौटकर अपने खेतों में काम करते हैं। ऐसे किसान एवं श्रमिकों को कनाडा में लम्बरजैक कहते हैं। लम्बे समय से पारंपरिक रूप से लकड़ी काटने का कार्य करते आये लम्बरजैक वर्तमान में मशीनों का प्रयोग करने लगे

सारिणी–8.8 : विश्व के दस प्रमुख लकड़ी के लट्ठों के उत्पादक देश(हजार घन मीटर)

देश	उत्पादन
कांगो	811484
भारत	434766
संयुक्त राज्य अमेरिका	324433
ब्राजील	228922
रूस	197000

कनाड़ा	149855
इथियोपिया	104209
चीन	74494
नइजीरिया	72633
स्वीडेन	72103
विश्व	1739603

विश्व स्तर पर वनों के प्रकार के आधार पर वितरण का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 24 प्रतिशत, उष्ण कटिबन्धीय सवाना का अच्छादित हैं जबकि शुल्क एवं अर्द्धशुष्क वनस्पति 21 प्रतिशत, कोणधारी वन 14 प्रतिशत तथा विषुवत् रेखीय सदाबहार वनों की 8 प्रतिशित हिस्सेदारी है। लेकिन कुल वनस्पति प्रकारों में प्रतिशत हिस्सा रखने की दृष्टि से तो सवाना वनस्पति सर्वाधिक है, लेकिन जैवभार (Biosmass) विविधता एवं शुद्ध प्राथमिक उत्पादन की दृष्टि से विषवत् रेखीय वन महत्त्वपूर्ण हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी की औसत शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता 320 ग्राम (शुष्क भार) प्रति वर्ग मीटर है जबकि उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वनों की शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता 2000 ग्राम प्रति वर्ग मीटर प्रतिवर्ष है। मरूस्थल भागों एवं हिमाच्छदित भागों में यह मात्र 3 ग्राम प्रति वर्गमीटर प्रतिवर्ष है।

8.8 विश्व में लकड़ी का उत्पादन–

सन् 2010 में विश्व में सर्वाधिक लकड़ी का उत्पादन संयुक्त राज्य अमेरिका करता था। सन् 2015 में कांगो प्रथम स्थान पर आ गया है। इसके बाद क्रमशः भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील तथा रूस का स्थान आता है। जबकि वनावरण की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में चौथा स्थान हैं संयुक्त राज्य अमेरिका में कोणाधारी एवं चौड़ी पत्ती वाले वनों में कोमल एवं कठोर दोनों प्रकार की लकड़ी मिलती है संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्तरी न्यू इंग्लैण्ड, महान झीलों के समीपवर्ती क्षेत्रों (मैपिल हैमलाक व बीच), अप्लेशियन क्षेत्र (श्वेत पाइन, पीला पाइन व स्प्रूस), रॉकी पर्वतीय क्षेत्र (स्प्रूस, पाइन, सीडार, फर), तथा प्रशांत तटीय क्षेत्रों से लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं। कनाडा को **मुलायम लकड़ियों को भण्डार** (Storehuouse of Soft Woods) कहा जाता हैं। जहाँ से स्प्रूस, पाइन, डगलस, फर सीडार, हेमलाक, बर्च, मैपिल तथा एल्म वृक्षों की लकड़ी प्राप्त की जाती है।

भारत का लकड़ी उत्पादन की दृष्टि से विश्व में दूसरा स्थान हैं यहाँ कुल लकड़ी उत्पादन का 96 प्रतिशत चौड़ी पत्ती वाले मानसूनी वनों से तथा 4 प्रतिशत कोणधारी वनों से किया जाता है।

विश्व स्तर पर जिस गति से वन विनाश किया जा रहा है उससे इस तथ्य का आभास होता है कि भविष्य में विश्व पर्यावरण में जैव विविधता संकट उत्पन्न होगा। क्योंकि वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं। साथ ही वन विनाश की अनेक प्राकृतिक आपदायें भी उत्पन्न हो रही हैं जिनमें बाढ़, सूखा, भूमिक्षरण तथा चक्रवातीय तूफान प्रमुख हैं।

वन प्रकृति की अमूल्य सम्पदा है। इनकी महता कें आधार पर इन्हें 'हरा सोना' कहते हैं। कुल उत्पादन का 33 प्रतिशत भवन निर्माण सामग्री में तथा 50 प्रतिशत ईंधन के रूप में उपयोगी होते हैं।

वनों से मानव को इमारती लकड़ी के अतिरिक्त रबर, सेल्यूलोज, लाख, कत्था, गोंद, जड़ी–बूटियाँ आदि प्राप्त होती हैं।

8.9 कागज एवं लुग्दी उद्योग (Pulp and Paper Industries)

पेड़ों से बनायी गयी लुग्दी के द्वारा कागज का निर्माण किया जाता है। कागज एक ऐसा पदार्थ है जिसको यदि वर्तमान उत्पाद समय में देखा जाए तो मनुष्यों के लिए अपना प्रधान स्थान रखता है। कागज के बिना वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। विश्व के विभिन्न देशों में शिक्षा का स्तर, तकनीकी ज्ञान आदि कागज के बिना असम्भव है। इसी कारण कागज सभ्यता की रीढ़ कहलाता है।कागज का विकास भी मानवीय सभ्यता के समान बहुत पुराना है। यह अनुमान लगाया जाता है कि विश्व में सर्वप्रथम कागज का निर्माण चीन में किया गया था। कागज निर्माण कला की खोज चीन में सन् 105ईस्वीं में त्साईलुन ने की जहाँ से लगभग एक हजार वर्ष बाद इसका प्रसार चीन से बाहर हुआ।स्पेन एवं इटली में 1150 में, फ्रांस में 1189 में कागज बनाया गया। पहले कागज कपास, कपड़े लिनेन, चिथड़ों आदि के द्वारा बनाया जाता था लेकिन सर्वप्रथम 1840 में जर्मनी में लुग्दी के द्वारा कागज बनाया गया। इसके बाद इंग्लैण्ड में 1857 में एस्पार्टी घास द्वारा तथा 1880 में संयुक्त राज्य अमेरिका में पेड़ों से निर्मित लुग्दी द्वारा कागज बनाया था। वर्तमान में पेड़ों द्वारा निर्मित लुग्दी के द्वारा विभिन्न प्रकार के कागजों का निर्माण किया जाता है।कागज निर्माण के लिए लुग्दी स्प्रुस, चीड़, हेमलाक, फर, बर्च, पॉपलर वृक्षों से बनायी जाती है। इन पेड़ों के तनों को बहुत बारीक पीसकर पहले पाउडर के रूप में परिवर्तित किया जाता है। तत्पश्चात् लुग्दी का निर्माण किया जाता है। विभिन्न देशों के बैंकों में नोटों के निर्माण के लिए बाओबाब वृक्ष की छाल से निर्मित लुग्दी का उपयोग किया जाता है।

कागज उद्योग के स्थानीयकरण के प्रमुख कारक

1. **कच्चे माल की प्राप्ति** कागज निर्माण के लिए लुग्दी माल कच्चा पदार्थ है जिसका निर्माण विभिन्न पेड़ोंके तनों को पीसकर किया जाता है।
2. लुग्दी के लिए स्प्रुस, चीड़, पॉपलर आदि वृक्षों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्धहोना आवश्यक है।
3. लुग्दी तथा कागज निर्माण में पर्याप्त विद्युत शक्ति की आवश्यकता होती है, इसी कारण अधिकतर कागज उद्योग जल विद्युत उत्पादन स्टेशनों के समीप स्थित होतेहैं।
4. **सस्ते एवं कुशल श्रमिक**कागज उद्योगों में पेड़ काटने, कारखानों तक पहुँचाने, पेड़ के तनों से पाउडर बनाने, लुग्दी तथा कागज निर्माण में पर्याप्त श्रमिकों की आवश्यकता होती है।
5. **अन्य कारक**–पर्याप्त पूँजी, परिवहन के साधन, पर्याप्तएवं समतल भूमि, बाजार की निकटता आदि कारक भीकागज उद्योगों की स्थापना को प्रभावित करते हैं।सामान्यतया कागज उद्योग के संचालन के लिए स्प्रुस, फर, हेमलॉक, चिरपाइन आदि कोमल लकड़ी के वन पर्याप्त क्षेत्र में होने चाहिए। वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिए सस्ते परिवहन साधन, स्वच्छ जल, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, कास्टिक सोडा, क्लोरीन, सोडाएश, चीनी मिट्टी आदि पदार्थों की आवश्यकता कागज निर्माण में रहती है जिसके कारण ये रासायनिक उद्योग समीपवर्ती क्षेत्र में स्थित हों आदि कारकों की उपलब्धता पर ही कागज उद्योग की स्थापना की जाती

कागज निर्माण उद्योगों का विश्व वितरण

कागज निर्माण में अधिकतर शीतोष्ण कोमल लकड़ी के वनों का उपयोग किया जाता है। इसी कारण कागज निर्माण में विश्व में यूरोपीय देश, संयुक्त राज्य, कनाड़ा तथा रूस आदि देश मुख्य उत्पादक देश हैं। ये सभी शीतोष्ण कटिबन्धीय कोणधारी वनों के विस्तृत क्षेत्र रखते हैं तथा शीतोष्ण कटिबंध में ही स्थित हैं। यद्यपि विश्व में सर्वप्रथम 105ईस्वी में चीन साइलून नामक कागज बनाया था लेकिन वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य कागज निर्माणक देश हैं।चीन विश्व का सर्वाधिक कागज उत्पादन करने वाला देश बन गया है। यहाँ सन् 2004 से 2015 तक से कागज का उत्पादन दोगुना हो गया है। चीन के शंघाई एवं अन्य क्षेत्र में पेड़ों की लुग्दी एवं भूसे से निर्मित लुग्दी से कागज बनाया जाता है।कागज निर्माण उद्योगों का विश्व वितरणकागज निर्माण में अधिकतर शीतोष्ण कोमल लकड़ी के वनों का उपयोग किया जाता है। इसी कारण कागज निर्माण में विश्व में यूरोपीय देश, संयुक्त राज्य, कनाड़ा तथा रूस आदि देश मुख्य उत्पादक देश हैं। ये सभी शीतोष्ण कटिबन्धीय कोणधारी वनों के विस्तृत क्षेत्र रखते हैं तथा शीतोष्ण कटिबंध में ही स्थित हैं। यद्यपि विश्व में सर्वप्रथम 105 ईस्वी में चीन साइलून नामक कागज बनाया था लेकिन वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य कागज निर्माणक देश हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका–

संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में कागज निर्माण की दृष्टि सेवृहत्तम उत्पादक देश है। 1991–92में 180 लाख मीट्रिक टन वार्षिक कागज उत्पादन कर यह विश्व में प्रथम स्थान पर था तथा वर्तमान में भी प्रथम स्थान पर है। न्यू इंग्लैण्ड (मेसाचुसेट्स, मेन), न्यूयार्क, विसकांसिन, मिशिगन, बर्ग, ओहियो, पेंसिलवानिया आदि संयुक्त राज्य के प्रमुख कागज निर्माण करने वाले राज्य हैं। इन राज्यों में लगभग 80 प्रतिशत कागज का निर्माण रासायनिक लुग्दी के द्वारा तथा 20 प्रतिशत कागज का निर्माण साधारण लुग्दी द्वारा किया जाता है। कुल उत्पादित कागज में लिखने वाले कागज का यहाँ सर्वाधिक उत्पादन किया जाता है।

देश	उत्पादन(मिलियन मीट्रिक टनों में)
1. चीन	107.10
2. संयुक्त राज्य अमेरिका	72.39
3. जापान	26.22
4. जर्मनी	22.60
8. कनाडा	10.26
5. दक्षिणी कोरिया	11.56
7. फिनलैण्ड	10.31
9. स्वीडन	10.16
6. ब्राजील	10.35

10. इटली	8.84
योग (विश्व)	**4000.00**

पेंसिलवानिया, ओहियो में पुस्तकों के कागज, विसकांसिन, स्थित राज्यों में कार्ड बोर्ड का निर्माण किया जाता है। कागज मेसाचुसेट्स में लिखने के कागज, मिशीगन लुइसियाना में गन्ना उद्योग की स्थापना की सभी अनुकूल परिस्थितियाँ संयुक्त राज्य निर्माण कागज तथा न्यूयार्क, वाशिंगटन में अखबारी कागज में अनुकूल होने के कारण इस उद्योग का विकास प्रतिवर्ष तीव्र गति से हो रहा है।

देश	**उत्पादन**	**विश्व का %**
संयुक्त राज्य अमेरिका	880	28.4
चीन	320	10.4
जपान	304	9.8
जर्मनी	201	6.5
फिनलैण्ड	167	5.4
स्वीडन	129	4.2
फ्रांस	101	3.3
दक्षिणी कोरिया	95	3.1
इटली	89	2.9
योग (विश्व)	**86**	**2.8**

कनाड़ा–

कागज की लुग्दी तथा अखबारी कागज के निर्माण में कनाड़ा, विश्व में अपना प्रथम स्थान रखता है तथा समस्त कागज के निर्माण की दृष्टि से विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। क्यूबेक, ओरियो, ब्रिटिश कोलम्बिया, न्यूफाउण्डलैण्ड आदि कनाड़ा के मुख्य कागज निर्माणक राज्य हैं। कनाड़ा लुग्दी तथा कागज दोनों का निर्यात करता है। लुग्दी ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को तथा एशियाई देशों में कागज का निर्यात करता है।कोमल लकड़ी, विस्तृत कोणधारी वन पर्याप्त जल विद्युत, स्वच्छ एवं पर्याप्त जल यातायात तथा सरकारी नीति आदि अनुकूल परिस्थितियों के कारण

कनाड़ा में कागज निर्माण उद्योग मुख्य उद्योग बन गया है तथा अर्थव्यवस्था एवं राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से भी कनाड़ा का यह प्रमुख उद्योग है।

रुस–

कोणधारी कोमल वनों की स्थिति की दृष्टि से देखा जाए तो सर्वाधिक कोणधारी वन रूस में पाए जाते हैं जो टैगा वन प्रदेश (बोरीयल) के नाम से भी जाने जाते हैं। यहाँ विस्तृत कोमल वन, नदियों में स्वच्छ जल तथा सस्ता जल परिवहन, सस्ती जल विद्युत शक्ति, अधिकतर कागज निर्माण कारखाने आदि तटों पर स्थित तथा पर्याप्त भाग में रासायनिक पदार्थ आदिसुविधाएँ पायी जाने के कारण यहाँ कागज उद्योगों का विकास हुआ है। पाइन, चीड, कैल, देवदार, सनोवर, सिल्वरफर, स्प्रुस, लार्च, आदि कोमल कोणधारी वन पाए जाते हैं जिन पर कागज उद्योग निर्भर है। सोवियत रूस में अधिकांश कागज निर्माण उद्योग जल विद्युत उत्पादन केन्द्रों के समीप स्थित हैं।

जापान–

कागज निर्माण की दृष्टि से विश्व में चौथा स्थान रखता है। जापान में मजबूत कागज का निर्माण किया जाता है। जिसका उपयोग धान भरने वाले बोरे बनाने में भी किया जाता है। जापान में मकानों की दीवार, बोके, छतरियां, तिरपाल आदि बनाने के लिए कठोर कागज का निर्माण किया जाता है जिसकी मांग स्थानीय रूप से अधिक रहती है। दूसरे प्रकार का कोमल तथा लिखने वाला कागज होता है। इसका निर्माण विदेशों से आयात लुग्दी के द्वारा किया जाता है। जापान द्वीपीय देश होने के कारण अधिकतर कागज उद्योग तटीय क्षेत्र में स्थित है जहाँ आयात तथा निर्यात के लिए सस्ता जल परिवहन उपलब्ध है। जल विद्युत, सस्ते एवं कुशल श्रमिक, यातायात, नवीन मशीनों आदि के कारण जापान में कागज उद्योग एक विकसित अवस्था में पहुँच गया है।

ग्रेट ब्रिटेन

ग्रेट ब्रिटेनमें निर्मित कागज मजबूत तथा उत्तम श्रेणी का होता है। कागज निर्माण के लिए अधिकतर लुग्दी नार्वे, स्वीडन तथा कनाड़ा से आयात की जाती है। अतः ब्रिटेन का कागज निर्माण उद्योग अधिकतर आयातित लुग्दी पर आधारित है। लेकिन यहाँ विश्व का श्रेष्ठ एवं उत्तम श्रेणी के कागज का निर्माण किया जाता है। सोमरमेट, रासैनडेल, केण्ट तथा हैम्पशायर प्रमुख कागज निर्माण क्षेत्र है जहाँ बाजार, स्वच्छ जल सस्ता जल परिवहन आदि सुविधाएँ उपलब्ध है।

फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, जर्मन तथा ऑस्ट्रिया आदि यूरोप के अन्य कागज निर्माणक देश हैं। यहाँ शीतोष्ण कोणधारी कोमल वन, जल विद्युत शक्ति, सस्ता जल परिवहन पर्याप्त तथा कुशल श्रमिक आदि परिस्थितियाँ होने के कारण यह उद्योग विकसित अवस्था में है। ओस्लो, फियोर्ड तथा स्कागेराक तटीय क्षेत्र नार्वे के मुख्य कागज उत्पादक प्रदेश है जहाँ स्टावेन्जर, हासुन्द, मुख्य केन्द्र है।

अन्य देश चीन के शंघाई तथा उत्तरी क्षेत्र में पेड़ों की लुम्बी तथा भूसे से निर्मित लुग्दों से घटिया कागज का भी निर्माण किया जाता है। दक्षिण अमेरिका के चिली, मेक्सिको, ब्राजील, अर्जेन्टाइना आदि में आयातित लुग्दी द्वारा कागज का निर्माण किया जाता है।

भारत

अन्य देशों के समान भारत में भी कागज निर्माण का प्रयास प्रारम्भ किया जा रहा है। मद्रास के तिरवांकूर स्थान पर 1916 में सर्वप्रथम कागज निर्माण के कारखाने की स्थापना को गयी लेकिन भारत में वास्तविक विकास 1950 के बाद हुआ है। वर्तमान समय में भी भारत में कोमल लकड़ी के वनों की कमी के कारण कागज निर्माण के लिए लुग्दी विदेशों से आयात की जाती है। भारत में कोमल कपड़े के चिथड़े, गन्ने की खोई, धान, चावल का भूसा आदि से अधिकांश कागज बनाया जाता है। भारत अपनी मांग की लुग्दी तथा कागज का निर्माण कच्चे पदार्थों की कमी के कारण नहीं कर पाता है इसलिए सामान्य तथा अखबारी कागज स्वीडन, कनाड़ा से आयात करता है। भारत में कागज निर्माण की दृष्टि से महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु, बिहार आदि राज्य अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–

वर्तमान में विश्व की आधुनिक सभ्यता में कागज का सर्वाधिक महत्त्व है। प्रत्येक देश में विभिन्न उपयोगों में कागज का उपयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अतः कागज अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की एक प्रमुख वस्तु बन गयी है। विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, कनाड़ा, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड आदि देश कागज के मुख्य निर्यातक हैं, जहाँ जल विद्युत तथा कोणधारी वनों का पर्याप्त क्षेत्र पाया जाता है। अफ्रीकी देश दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप के देश, भारत तथा अन्य एशियाई देश कागज के मुख्य आयातक देश हैं

8.11 पारिभाषिक शब्दावली

कम्पोज– ब्राजील में कटिबन्धीय सवाना धास के मैदान

लानोज– कटिबन्धीय धास के मैदान ओरोनिको घाटी में

कूटिंगा– पूर्वी ब्राजील में घास के मैदान

प्रयरी – शीतोष्णकटिबन्धीय उत्तरी अमेरिका घास में मैदान

8.12 बोध प्रश्न

8.12.1दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर !–

प्रश्न–1 वनो के वितरण के बारे मे विस्तार में समझाइये।

प्रश्न–2 वना के प्रकारों के बारे में बताइये ?

8.12.2 लघुत्तरीय प्रश्न :–

प्रश्न–1 भूमध्यसागरीय वनों के बारे मे समझाइयें ।

प्रश्न–2 ज्वारनदमुखी वनस्पति क्या है।

प्रश्न–3 शीतोष्ण कटिबन्धीय धाम क्षेत्रो के नाम लिखिए।

8.12.3 बहुविकल्पीय प्रश्नः–

भूमध्यरेखीय वनो में उगने वाला कौनमा वृक्ष आर्थिक दृस्टि से महत्वपूर्ण है –

(अ) साल (ब) पीपल

(स) सनोवर (द) महोगनी

प्रश्न 2– पतझड़वन मिलते है –

(अ) भूमध्यरेखीय प्रदेश मे (ब) समशीतोष्ण प्रदेश

(स) ठण्डे प्रदेश में (द) मरुस्थलीय प्रदेश मे

प्रश्न–3 वनो का देश कहलाता है–

(अ) ब्राजील (ब) सूरीनाम

(स) रुस (द) कांगो

प्रश्न– 4 विपुवत रेखीय वर्षावनों का सबसे बड़ा प्रदेश किस महाद्वीप में है –

(अ) भारत (ब)दक्षिणी अमेरिका

(स) आस्ट्रेलिया (द) उत्तरी अमेरिक

प्रश्न– 5 मानसूनी वनों का विस्तार देश में पाया जाता है

(अ) अफ्रीका (ब)दक्षिण अमेरिका

(स) बाग्लादेश (द) उपरोक्त सभी

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. डॉ बी.सी जाट ''संसाधन भूगोल'' मलिक बुक कम्पनी जयपुर

2. प्रो जगदीश सिंह संसाधन भूगोल ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई–9 खनिज संसाधन

इकाई की रूपरेखा

9.1प्रस्तावना

9.2 उद्देश्यः–

9.3 खनिज

9.4 खनिज संसाधनों की विशेषताएँ

9.5 खनिजों के प्रकार

9.6 लौह अयस्क

9.7 मैगनीज

9.8 कोयला

9.9 प्राकृतिक गैस

9.10 बॉक्साइट

9.11 पेट्रोलियम

9.12 सारांश

9.13 पारिभाषिक शब्दावलीः–

9.14 बोध प्रश्न

9.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 प्रस्तावना

पृथ्वी पर विद्यमान खनिज सम्पदा वर्तमान विकास का मूल आधार रही है। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में प्राचीन काल से भी इसका प्रयोग होता आया है लेकिन आधुनिक युग में ऊर्जा खनिज संसाधनों तथा धात्विक व अधात्विक खनिज संसाधनों के उपयोग के बिना विकास की कल्पना नही की जा सकती है। खनिज वे प्राकृतिक पदार्थ है– जो भू–गर्भ में खनन क्रिया द्वारा बाहर निकाले जाते हैं। खनिजों का उत्पादन जिस स्थान पर किया जाता है उसे खनन दोहन कहते है। अधिकांश खनिज पृथ्वी के भू–गर्भ में पाए जाते हैं। इस इकाई में विभिन्न खनिज संसाधनो का उत्पादन एवं वितरण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई में खनिज संसाधनों के वितरण को बताया गया है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित है–

(अ) खनिज समाधानों की विषय वस्तु की स्पष्ट करना।

(बं) शिक्षार्थी खनिज संसाधनों की प्राप्ति, वितरण के विषय में व्याख्या कर सकेंगे।

(स) शिक्षार्थियों को खनिज संसाधनों के प्रकार व उत्पादन से अवगत कराना

(द) शिक्षार्थी से खनिज संसाधनों के उपयोग के विषय की व्याख्या कर सकेगें।

9.3 खनिज

वे प्राकृतिक पदार्थ हैं जो भू–गर्भ में खनन क्रिया द्वारा बाहर निकाले जाते हैं। खनिज प्रमुखतया प्राकृतिक एवं रासायनिक पदार्थों के संयोग से निर्मित होते हैं। इनका निर्माण अजैव प्रक्रियाओं द्वारा होता है। खनिजों में धात्विक खनिज मुख्यतः धातुओं के मिश्रण के रूप में पाए जाते हैं। धातुयुक्त खनिजों में धातुएँ अलग–अलग अनुपात में पिण्ड के रूप में तथा विभिन्न अनुपातों में मिश्रित रूप में पाए जाते हैं। खनिजों में धातुओं की मात्रा के अनुसार इनका दोहन किया जाता है। कम धातु सम्पन्न खनिजों का दोहन करने में अत्यधिक परिश्रम तथा अधिक खर्चा होता है। अधिकांश खनिज पृथ्वी के आन्तरिक भाग में इसके भू–गर्भ में पाए जाते हैं। इनका दोहन पृथ्वी पर जहाँ खनिज पाए जाते हैं, उस स्थान विशेष में खान खोदकर खनिजों का दोहन किया जाता है। अतः खनिजों का उत्पादन जिस स्थान पर किया जाता है, उसे खान कहते हैं।

9.4 खनिज संसाधनों की विशेषताएँ(Characteristics of Mineral Resources)

(1) खनिज निश्चित स्थानों पर ही बिखरे हुए क्षेत्रों में पाए जाते हैं। अन्य प्राकृतिक संसाधनों की अपेक्षा खनिज कुछ निश्चित स्थान विशेष में ही पाए जाते हैं। स्थान विशेष में भी खनिज एक साथ इकट्ठे रूप न पाए जाकर केवल बिखरे हुए क्षेत्र विशेष के रूप में पाए जाते हैं।

(2) खनिज अधिकतर भू–गर्भ में ही पाए जाते हैं। वैज्ञानिक खनिज पदार्थों का पता लगाकर खनन क्रिया द्वारा भूगर्भ से बाहर निकालते हैं।

(3) भू–गर्भ में स्थित खनिज पदार्थ निश्चित मात्रा में ही पाए जाते हैं तथा एक बार बाहरनिकालने के बाद उस अनुपात में हमेशा के लिए खत्म हो जाते हैं। खनिजों के पूर्ण रूप सेनिर्मित होने में करोड़ों वर्ष का समय लग जाता है। एक बार इनका उपयोग होने पर भू–गर्भमें निकाले गए खनिजों का दोबारा नवीनीकरण नहीं किया जा सकता है।

(4) खनिजों से निर्मित वस्तुएँ मजबूत और टिकाऊ होती हैं। एक बार निर्मित होने पर लम्बे समय तक उपयोगशील रहती हैं।

(5) लगातार खनिजों का दोहन होते रहने से खाने अधिक गहरी होती जाती है।गहराई बढ़ने के साथ–साथ खनन कार्य भी अत्यधिक खर्चीला होता जाता है।

(6) खनिजों का उत्पादन इनके उपयोग एवं बाजार में इनकी मांग के कम या अधिक होने के अनुसार घटता–बढ़ता रहता है।

9.5 खनिजों के प्रकार (Types of Minerals)

अब तक उपयोग में लिये जाने वाले विभिन्न खनिजों की संख्या लगभग 1600 है लेकिन इनमें से लगभग 200 खनिजों का ही उपयोग व्यावसायिक एवं औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जाता है।

1. धात्विक खनिज (Metallic Minerals)–लोहा, तांबा, जस्ता, सीसा, टिन, टंगस्टन कोबाल्ट, एल्यूमिनियम आदि।

2. अधात्विक खनिज (Non&Metallic Minerals)– उर्वरक खनिज, रत्न या मणिक, नमक आदि।

3. खनिज ईंधन (Mineral Fuel)–कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, आणविक खनिज आदि।

9.6 लौह अयस्क (Iron Ore)

भूपटल के संगठन में लोहे का अंश 5 प्रतिशत पाया जाता है। इसका उपयोग प्रागैतिहासिक काल से होता आया है, लेकिन वर्तमान में उपयोग में विविधता के कारण यह अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है क्योंकि वर्तमान समय में काम आने वाले छोटे–से–छोटे यन्त्र से लेकर औद्योगिक इकाइयों में चलने वाली बड़ी–बड़ी मशीनें, यातायात के साधन आदि सभी वस्तुएँ लोहे के ही निर्मित होती हैं। भू–गर्भ से निकाला गया लौह अशुद्ध होता है। इसमें एल्यूमिना, चूना, मैग्नीशिया, सेलखड़ी, गन्धक, टाइटेनियम, आर्सेनिक, तांबा, फास्फोरस आदि अपद्रव्य मिले रहते हैं। बेसेमर भट्टी के आविष्कार के बाद लौह को अन्य पदार्थों से अलग करना और अधिक आसान हो गया है।

लौह–अयस्क के प्रकार(Types of Iron Ore)

लौह अंश की मात्रा एवं शुद्धता के आधार पर लौह अयस्क को चार भागों में विभाजितकिया जाता है :–

(i) मैग्नेटाइट (Magnetite, Fe_3O_4)–

इसके अन्तर्गत लौहांश की मात्रा 70 तक पाई जाती है। इसका रंग काला होता है। यह आग्नेय या कायान्तरित शैलों की शिराओं में मिलता है। मैग्नेटाइट लौह अयस्क में लौह के साथ ऑक्सीजन की मात्रा के मिश्रण के कारण इसमें चुम्बकीय गुण पाया जाता है। इस प्रकार के जमावों को लोडस्टोन (Lodestone) कहते हैं। आर्कटिक स्वीडन के किरुना व गिलावेयर, लाइबेरिया तथा मैग्निटोगोस्कं में उत्तम मैग्नेटाइट लोहा मिलता है

(ii) हेमेटाइट (Hametite, Fe_2O_3)–

हेमेटाइट में लौह अंश की मात्रा 50 से 65% तकपायी जाती है। इसका रंग लाल और भूरे रंग के समान होता है। सर्वाधिक विस्तृत भाग में फैले होने तथा आसान परिष्करण के कारण यह सर्वप्रथम लौह अयस्क है। यह अवसादी शैलों में मिलता है। सुपीरियर झील प्रदेश (USA), लेब्रेडोर एवं क्वेबेक (कनाडा), मिनास गिरास (ब्राजील), किबोईराग (रूस) तथा बिल्बाओ (स्पेन) में हेमेटाइट के जमाव मिलते हैं।

(iii) लिमोनाइट (Limonite) ($2Fe_2O_3H_2O$)–

इसके अन्तर्गत लौहांश की मात्र 50% तक पाई जाती है इसमें लौह, ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन तत्त्वों का मिश्रण पाया जाता है। यह अवसादी शैलों में पायी जाती है। इसके अन्तर्गत धातु का रंग हल्का पीलापनयुक्त भूरा होता है। इसे दलदली लोहा (Bog Iron) भी कहते हैं।

(iv) सिडेराइट (Siderite, FeCO3)–

इसके अन्तर्गत लौहांश की 20 से 30% तक पायी जाती है।इसका निर्माण लौह और कार्बन के मिश्रण से होता है। सिडेराइट धातु का रंग धूसर राख (Ash grey) के समान होता है। अधिकांश

सिडेराइट जमाव जुरासिक काल के हैं। इस वर्ग का लोहा लंकाशायर के स्कन्थोर्पे क्षेत्र, फ्रांस के लोरेन तथा लक्जेमबर्ग में मिलता है।

संचित राशि–

पृथ्वी के ऊपरी भाग अर्थात् भू–पटल के निर्माण में लौह का 5 प्रतिशत भाग होता है। लेकिन सम्पूर्ण पृथ्वी के निर्माण में लौह का प्रथम स्थान (35 प्रतिशत) उच्च धातु सम्पन्नतायुक्त लौह का संचित

संचित भण्डार 170 अरब मीट्रिक –

देश	**उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)**	
	कच्चा अयस्क	**लौह तत्व**
1.संयुक्त राज्य अमेरिका	2900	760
2. आस्ट्रलिया	50000	24000
3. ब्राजील	23000	12000
4. कनाडा	6000	2300
5. चीन	21000	7200
6. भारत	8100	5200
7.इरान	2700	1500
8. कजाखस्तान	2500	900
9. रूस	25000	14000
10. द. अफ्रीका	1200	770
11. स्वीडेन	3500	2200
12. यूक्रेन	6500	2300
13.अन्य देश	**18000**	9500
कुल विश्व	**170000**	**83000**

टन है। लगभग 25 प्रतिशत भाग पश्चिमी यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका में, 25 प्रतिशत भाग रूस एवं पूर्वी यूरोपीय देशों में, 20 प्रतिशत दक्षिणी अमेरिकी देशों में एवं शेष 20 प्रतिशत पूर्वी एवं पूर्वी एशिया के देशों में पाया जाता है। कच्चे लौह अयस्क जमाव की आस्ट्रेलिया प्रथम तथा रूस द्वितीय स्थान पर है।

लौह अयस्क का विश्व उत्पादन

लौह अयस्क के उत्पादन में 20वीं शताब्दी के मध्यावधि से तीव्रता आयी है। सन् 1948 में विश्व में कुल लौह अयस्क का उत्पादन 10.35 करोड़ टन था जो बढ़कर 1990 में 58.70 करोड़ टन हो गया। सन् 1998 में विश्व में 104.50 करोड़ टन तथा सन् 2017 में 240 करोड. टन लौह अयस्क का उत्पादन हुआ है। विगत दशक में रूस, ब्राजील, कनाड़ा संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, चीन, स्वीडेन, भारत और फ्रांस क्रमशः सर्वाधिक उत्पादन करने वाले राष्ट्र थे। लेकिन वर्तमान दशक में, यूरोपीय व अमेरिकी देशों की जगह एशियाई एवं देश उत्पादन में आगे निकले हैं। वर्तमान में आस्ट्रेलिया सर्वाधिक लौह अयस्क उत्पादन करने वाला देश बन गया है। इसके उपरान्त क्रमशः ब्राजील, चीन, रूस, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूक्रेन, कनाड़ा, दक्षिणी अफ्रीका तथा स्वीडन आते हैं।

(1) आस्ट्रेलिया–

आस्ट्रेलिया लौह उत्पादन की दृष्टि से सन् 2016 में प्रथम स्थान पर आ गया है। आस्ट्रेलिया का अधिकांश उत्पादन पश्चिमी भाग में पर्थ से 1200 किमी. दूर स्थित पिलबारा क्षेत्र एवं 1000 किमी. दूर स्थित हैमस्ले खदान एवं गोल्डम नदी खदान से होता है। पिलबारा क्षेत्र में माउन्ट टोम, राइस व माउण्ट न्यूमेन तथा इसके उत्तर में माउण्ट गोल्डसवर्थी मुख्य खनन केन्द्र हैं। कुछ उत्पादन उत्तरी भाग में स्थित है। इनके अलावा क्लीवलैण्ड, तस्मानिया एवं दक्षिण आस्ट्रेलिया में स्थित मिडिलबैंक रेंज, आयरन नॉब (Iron Knob) एवं सिडनी क्षेत्र प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। आस्ट्रेलिया में उत्पादित अधिकांश लौह अयस्क का जापान को निर्यात कर दिया जाता है।

(2) ब्राजील–

ब्राजील दक्षिण अमेरिका महाद्वीप का प्रमुख लौह उत्पादक देश है। ब्राजील का लौह उत्पादन 1992 में 14.6

विश्व	2016 में क्रम	विश्व का प्रतिशत		उत्पादन (मीलियन मीट्रिक टन में)	
		1975	2005	2016	2017
1. चीन	3	6.5	24.3	348	340
2. ब्राजील	2	9.2	19.7	430	444
3. आस्ट्रेलिया	1	12.2	18.4	858	880
4. भारत	4	5.2	9.2	185	190
5. रूस	5	25.4	6.3	101	103

6. यूक्रेन	7		4.5	63	63
7. सं.रा.अमेरिका	8	9.8	3.6	42	46
8. दक्षिण अफ्रीका	6	1.5	2.6	68	68
9. कनाडा	9	5.5	2.0	47	47
10. स्वीडेन	12	6.5	1.5	27	27
11. कजाकिस्तान	11		1.3	34	34
12. ईरान	10		1.1	35	35
13. अन्य देश				116	110
कुल विश्व	41400			2350	2400

करोड टन था, जो 2017 में बढ़कर मात्र 44.4 करोड़ टन हो गया ब्राजील वर्तमान समय में लौह उत्पादन की दृष्टि से विश्व का दूसरा प्रमुख लौह उत्पादक देश है।

ब्राजील का मिनास गिरास राज्य प्रमुख लोह उत्पादक राज्य है। संचित भण्डार की दृष्टि से भी यह राज्य ब्राजील का प्रमुख राज्य है। इस राज्य का माउन्ट इताबिरा क्षेत्र प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र है जहाँ ब्राजील के लौह उत्पादन का अधिकांश प्राप्त होता है। ब्राजील में काराजोस एवं इण्डिन जमाव क्षेत्र प्रमुख है, जो अमेजन को सहायक जिंग नदी के पूर्व में स्थित है तथा साओ लुइस बन्दरगाह तक रेल मार्ग से जुड़े हैं। तकनीकी एवं औद्योगिक विकास की कमी के कारण ब्राजील अपने उत्पादन का अधिकांश भाग निर्यात कर देता है। यहाँ से मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी तथा फ्रांस को निर्यात किया जाता है।

(3) चीन–

वर्तमान समय में लौह–अयस्क के उत्पादन में ब्राजील के बाद चीन का विश्व में तीसरे स्थान पर चला गया है। 2017 में चीन में 340 मिलियन टन लौह अयस्क का उत्पादन हुआ। चीन में पाए जाने वाले लौह अयस्क की धातु सम्पन्नता लगभग 35 प्रतिशत पायी जाती है। चीन में लौह धातु का उत्पादन 1960 के बाद विश्व के अन्य देशों की तुलना में अत्यधिक तीव्र गति से हुआ है। चीन के प्रमुख लोह उत्पादक क्षेत्र निम्नांकित है–

(i) दक्षिणी मंचूरिया–दक्षिण मंचूरिया चीन का प्रमुख लौह–अयस्क का उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ चीन के कुल संचित भण्डार का 50 प्रतिशत पाया जाता है। दक्षिण मंचूरिया के प्रमुख लौहा उत्पादक प्रदेश अशांन, चांगलिंग तथा पेंकी क्षेत्र प्रमुख हैं।

(ii) अन्य क्षेत्र–दक्षिणी मंचूरिया के अतिरिक्त चीन के प्रमुख लौहा उत्पादक क्षेत्र हैनान द्वीप, चा–हार, होनान, हुपे, शांतुंग अन्तरीप, हैकांऊ, कासू, शिकांग, ग्वेची, आन्तरिक मंगोलिया, खुयुआन बुहान क्षेत्र आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त शांशी क्षेत्र में भी छिटपुट स्थानों पर लौह अयस्क पाया जाता है।

(4) भारत–

लौह–अयस्क के जमाव की दृष्टि से भारत विश्व का सबसे बड़ा देश है। यहाँ के कुल लौह अयस्क जमावों का 59% हैमेटाइट किस्म का है। देश में निकाले जा सकने योग्य हैमेटाइट लौह अयस्क का लगभग 1231.7 करोड़ टन भण्डार है।

भारत का 40% लौह अयस्क ओडिशा के बोंनाई, सुन्दरगढ़, मयूरभंज एवं क्योंझर तथा झारखण्ड के सिंहभूमि क्षेत्र में फैला हुआ है। क्योझर में बांसपानी, ठकुरानी कुम किरुरु क्षेत्र (यत्रीकृत खान) खाने तथा मयूरभंज की बादाम पहाड़ व गुरुमहिसानी, सिंहभूमि की पंसिरावुरु, बुदावुरु, गुआ, सांसगुण्डा तथा नोआमुण्डी प्रमुख खानें हैं। जमाव दृष्टि से अन्य क्षेत्रों में गोआ के पिरना अडोली, पाले एवं आनेड़ा, मध्यप्रदेश के रावघाट एवं छत्तीसगढ़ के बैलाडिला प्रमुख हैं। छत्तीसगढ़ लौह अयस्क का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य रहा है, जहाँ डल्ली राजहरा (दुर्ग) तथा बैलाडिला (दाँतेवाडा) छत्तीसगढ़ की प्रमुख हैं। गोवा की खानों में साहक्वालिम, संग्यूम क्यूपेम, सतारी, पोंडा व बिलोचिम में स्थित है। वर्तमान में कर्नाटक भारत के कुल लौह अयस्क उत्पादन का 24.9% उत्पादन कर देश सबसे बड़ा उत्पादक बन गया है। इसके बाद ओडिशा का द्वितीय एवं छत्तीसगढ़ का तृतीय स्थान है।इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश में पायी जाने वाली किस्में हैमेटाइट व मैग्नेटाइट किस्म की है। लौहे के जमाव आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल, कुडप्पा तथा अनन्तपुर जिलों तथा तेलंगाना के करीमनगर व वारंगल जिलों में प्राप्त कुडप्पा युग की चट्टानों के हैं। कर्नाटक के चिकमंगलुरू जिले में बाबाबूदन की पहाड़ियों में स्थित केमनगुण्डी क्षेत्र हैमेटाइट किस्म के लोहे के लिए महत्त्वपूर्ण है। कुद्रेमुख यहाँ की प्रसिद्ध लोहा खान है। महाराष्ट्र के चद्रपुर जिले में लोहारा, पीपला गाँव तथा रत्नागिरी व भंडारा की खानों से लोहा निकालते हैं अन्य क्षेत्रों में तमिलनाडु की तीर्थमलाई पहाड़ियों (सेलम), याद पल्ली और किल्लीमलाई क्षेत्र (नीलगिरी) में, राजस्थान का दक्षिणी–पूर्वी भाग, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी बंगाल एवं जम्मू और कश्मीर में इसके जमाव मिलते हैं।भारत में उत्पादन पर्याप्त मात्रा में है परन्तु तकनीकी अभाव के कारण हम पर्याप्त उपभोग नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप उत्पादन का अधिकांश भाग जापान, हंगरी, जर्मनी आदि देश को निर्यात किया जाता है।

एशिया महाद्वीप के अन्य देश–

एशिया महाद्वीप में भारत, चीन प्रमुख उत्पादक देश हैं। इनके अलावा उत्तरी कोरिया का मुसान क्षेत्र, मलेशिया का त्रैगानु, पेराक, केलाँतान एवं जोहोर क्षेत्र, फिलीपींस में दवाओं राज्य का माटी क्षेत्र एवं मिडनाओ एवं समार प्रमुख हैं। इन्डोनेशिया में भी निम्न कोटि का लौह अयस्क पाया जाता है। सिलीबीज द्वीप एवं बोर्नियो में इण्डोनेशिया का अधिकांश लौह भण्डार पाया जाता है।

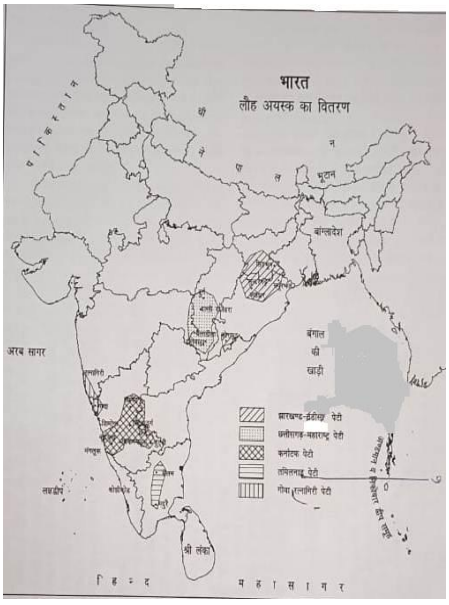

चित्र.9.1 भारत के लौह अयस्क उत्पादक क्षेत्र

(6) रूस–

1979 तक रूस लौह अयस्क के उत्पादन में प्रथम स्थान पर था। 1979 में रूस में कुल उत्पादन 13.3 करोड़ टन हुआ जो विश्व के कुल उत्पादन का 25% था। लेकिन रूसी फेडरेशन के अलग–अलग देशों में विभाजित होने के बाद यहाँ उत्पादन में तीव्र ह्रास हुआ है।वर्तमान में रूस का लौह अयस्क उत्पादन में पाँचवाँ स्थान है। सोवियत संघ के विघटन के उपरान्त प्रमुख लौह उत्पादक राष्ट्र यूक्रेन अलग होने से कमी आयी है। इसके अतिरिक्त मध्य एशिया से कजाखस्तान के अलग होने से उसके (बाल्कश झील के उत्तर में स्थित अतासुस्की क्षेत्र) लौह उत्पादक क्षेत्र भी कम हो गये। वर्तमान में रूस के प्रमुख लौह अयस्क उत्पादक क्षेत्र निम्नांकित हैं–

(i)यूराल प्रदेश–

यहाँ 50 से 54% धातु सम्पन्नतायुक्त लोहे का संचित भण्डार लगभग तीस करोड़ मिट्रिक टन पाया जाता है। यहाँ का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र मैग्निटोगोर्स्क का मेग्नेट माउण्टेन (Magnete Mountain) है जहाँ क्रिबोइराग के बाद रूस में सर्वाधिक उत्पादन होता है। यहाँ पर पाया जाने वाला लौहा उत्तम प्रकार का उच्चकोटि का मेग्नेटाइट लौहा है। यहाँ खदानें भी खुली पायी जाती हैं तथा लौहा का खनन कार्य आसानी से किया जाता है। निझनीतागिल एवं इब्देल क्षेत्र भी यहाँ के प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र हैं

(ii) गोरनाया शोरिया

यह क्षेत्र मध्य साइबेरिया में स्थित है। डोनबास कोयला क्षेत्र के पास नोवोकुजनेटस्क प्रदेश के दक्षिण में है। यहाँ पर पाया जाने वाला लौहा निम्न कोटि का पाया जाता है तथा यहाँ से कुजबास लौह संयन्त्र को भेजा जाता है।

(iii) पश्चिमी साइबेरिया.

साइबेरिया के पश्चिम में स्थित (नोवोसिबिर्स्क के 200 किमी. उत्तर में) टोम्स्क प्रदेश के उत्तर

में स्थित बक्वार स्थान प्रमुख उत्पादक प्रदेश हैं। यहाँ पाए जाने वाले लोहे में गंधक, सिलिका तथा जस्ता आदि की मात्रा मिश्रित रूप में अधिक पायी जाती है। अतः यहाँ पाये जाने वाला लौह अयस्क निम्न कोटि का पाया जाता है।

(iv) आमूर घाटी. .सुदूर पूर्व तथा आमूर घाटी में जहाँ वर्तमान समय में थोड़ा बहुत खनिज निकाला जाता है।

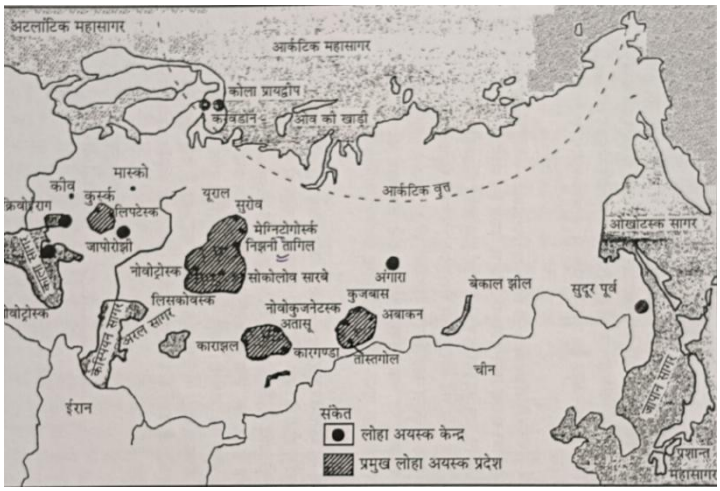

चित्र. 9.2 रूस एवं यूक्रेन के प्रमुख लौह अयस्क क्षेत्र

(7) दक्षिणी अफ्रीका–

अफ्रीका महाद्वीप का अधिकांश भाग प्राचीन परतदार चट्टानों से निर्मित है। अतः यहाँ लौह अयस्क प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अफ्रीका महाद्वीप का प्रमुख उत्पादक देश दक्षिण अफ्रीका संघ है जिसका विश्व में लौह उत्पादन की दृष्टि से आठवाँ स्थान है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक प्रदेश ट्रांसवाल का प्रीटोरिया एवं थावा जिम्बी क्षेत्र, उत्तरी केप राज्य का पोसमासवर्ग एवं नैटाल प्रान्त कुरूमान क्षेत्र है।

(8) यूक्रेन–

यूक्रेन का क्रिबोइराग क्षेत्र उत्पादन की दृष्टि से प्रथम तथा संचित भण्डार की दृष्टि से द्वितीय स्थान पर है। क्रिबोइराग की भौगोलिक स्थिति अति उत्तम है। अतः इस क्षेत्र का यूक्रेन में सबसे अधिक महत्त्व है। यहाँ लगभग 50 अरब टन संचित भण्डार है, जिसमें लौहांश धातु का 48.64% अंश पाया जाता है। यहाँ से रूस के मास्को, टुला तथा पूर्वी यूरोप के कई देशों को लौहा निर्यात किया जाता है।

(i) कर्च अन्तरीप

यह क्षेत्र पूर्वी क्रीमिया में स्थित है। पूर्वी क्रीमिया का क्षेत्र जमाव की दृष्टि से तो सम्पन्न है, लेकिन यहाँ पाया जाने वाला लौहा निम्न कोटि का पाया जाता है। इस क्षेत्र में संचित लोहे में फास्फोरस एवं सिलिका भी अधिक मात्रा में पायी जाती है।

(ii) कुर्स्क

कुर्क क्षेत्र का विस्तार नीपर नदी के पूर्व में पाया जाता है। कुर्स्क क्षेत्र में पाया जाने वाला

लौहा मेग्नेटाइट किस्म का है, लेकिन इसकी गहराई अधिक है, अतः खनन कार्य आसान नहीं है। यहाँ लगभग तीस अरब टन संचित भण्डार की धातु सम्पन्नता 50–60 प्रतिशत है तथा 170 अरब टन लौहा निम्न कोटि का पाया जाता है।

(8) संयुक्त राज्य अमेरिका–

संयुक्त राज्य प्रारम्भिक समय से लौह अयस्क के उत्पादन में प्रमुख स्थान पर रहा है। लेकिन 1985 के बाद यहाँ विश्व के अन्य देशों की तुलना में उत्पादन में ह्रास हुआ है। वर्तमान समय में संयुक्त राज्य सम्पूर्ण विश्व के कुल उत्पादन का 2.45 प्रतिशत उत्पादन करता है। विश्व में लौह उत्पादन की दृष्टि से संयुक्त राज्य का आठवाँ स्थान है।यहाँ के प्रमुख लौह–अयस्क उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं–

(i) सुपीरियर झील प्रदेश

संयुक्त राज्य अमेरिका का यह क्षेत्र विश्व का वृहत्तम उत्पादक क्षेत्र माना जाता है। यहाँ लगातार लौह अयस्क के अधिकाधिक खनन के कारण हेमेटाइट उच्च कोटि का लौह समाप्त होता जा रहा है। लेकिन निम्न कोटि के लौह अयस्क का यहाँ वृहत भण्डार पाया जाता है।इस क्षेत्र में लौह अयस्क का खनन निम्न स्थानों पर अधिकाधिक किया जाता है।

(i) मेसाबी रेंज

(ii) वरमीलियन

(iii) मिन्निसोटा राज्य में स्थित क्युना क्षेत्र

(iv) गोजेविक

(v) मारकोटी रेंज

(vi) विस्कोसिन मिशिगन राज्यों का मिनोमिनी क्षेत्र

ये सभी क्षेत्र सुपीरियर झील के उत्तर–पश्चिम एवं दक्षिणी भाग में विस्तृत रूप से फैल हुए हैं।सुपीरियर झील क्षेत्र का प्रमुख उत्पादक प्रदेश मेसाबी रेंज है यहाँ पाया जाने वाला लोहा उच्च कोटि का हेमेटाइट है एवं इसमें धातु सम्पन्नता लगभग 50 प्रतिशत पायी जाती है। मेसाबी रेंज से उत्पादित लौह–अयस्क में फास्फोरस की मात्रा भी अत्यधिक निम्न लगभग 0.1 प्रतिशत पायी जाती है। यहाँ पर खानों से लौह अयस्क को निकालना, उनको परिवहन के साधनों में चढ़ाना सभी कार्य विद्युत चालित मशीनों के द्वारा किया जाता है सुपीरियर झील क्षेत्र में उत्पादित कच्चे लौह अयस्क का अधिकांश भाग डुलुथ, डूहार्बर एवं सुपीरियर बन्दरगाहों के द्वारा निर्यात कर दिया जाता है

(ii) दक्षिणी–पूर्वी प्रदेश–

दक्षिणी–पूर्वी प्रदेश का प्रमुख लौह अयस्क उत्पादक अलबामा है। अलबामा राज्य का बर्मिघम मुख्य क्षेत्र है, जहाँ दक्षिण–पूर्व प्रदेश 50 प्रतिशत उत्पादन होता है। यहाँ हेमेटाइट उच्च कोटि की लौह धातु पायी जाती है। निकाले जाने वाले लौह अयस्क मे चूने की मात्रा अधिक पायी जाती है, अतः इसका वेनेजुएला से आयात किए गए उच्च कोटि के लोहा के साथ मिश्रित करके इसका किया जाता है। अलबामा राज्य के अतिरिक्त टेनेसी एवं जार्जिया राज्यों में भी निम्न कोटि का (लगभग 30–40 प्रतिशत) धातु सम्पन्नतायुक्त लौह अयस्क निकाला जाता है। निम्न कोटि की होने के कारण यहाँ उत्पादन कम होता है। इस क्षेत्र का लोहा बर्मिघम इस्पात केन्द्र में काम आता है।

(iii) दक्षिणी–पश्चिमी एवं पश्चिमी क्षेत्र–

संयुक्त राज्य अमेरिका के कुल अयस्क उत्पादन का लगभग 15 प्रतिशत उत्पादन इस क्षेत्र से होता है। इस प्रदेश के उत्पादक राज्य कैलिफोर्निया एवं वायोमिंग हैं।कैलिफोर्निया राज्य का इंगिल माउण्टेन तथा ऊटा के आयरन माउन्टेन, डेजर्ट माउन्टेन आदि प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। टेक्सास, कोलोरेडो, नेवादा आदि राज्यों में भी छिटपुट लौह धातु का उत्पादन होता है। टेक्सास की डेंगर फिल्ड खान से लिमोनाइट का उत्पादन होता है। लेकिन इस क्षेत्र के लौह धातु उत्पादक क्षेत्र बाजार केन्द्रों से दूर स्थित होने के कारण यहाँ अभी तक तीव्र उत्पादन नहीं होता है। इस क्षेत्र का लोहा सान फ्रांसिस्को, लॉस एंजिल्स, प्यूब्लो, कोलोरेडो, प्रोनो आदि इस्पात क्षेत्रों को भेजा जाता है।

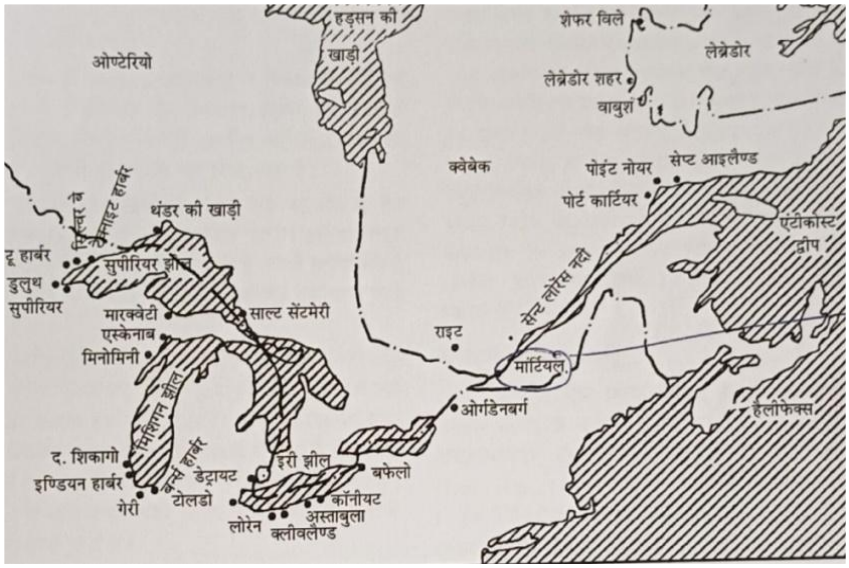

चित्र. 9.3 संयुक्त राज्य अमेरिका के अयस्क

(iv) उत्तरी–पूर्वी तथा अन्य क्षेत्र–

संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी–पूर्वी भाग में भी कई स्थानो पर लौह अयस्क के जमाव पाए जाते हैं। न्यूयार्क के एण्डिराक पहाडियो एवं पेंसिलवानिया राज्यों का कार्नवाल क्षेत्र आदि प्रमुख क्षेत्र है, जहाँ प्राचीनकाल से उत्पादन हो रहा है। यहाँ अधिक खनन के कारण खदानें अधिक गहरी हो गई हैं अतः वर्तमान समय में यहाँ खनन कार्य सीमित मात्रा में ही किया जाता है।

(9) कनाड़ा–

कनाडा का लौह अयस्क उत्पादन में विश्व में 9वाँ स्थान है। कनाड़ा से उत्पादित अधिकांश लौह अयस्क का संयुक्त राज्य अमेरिका को जल मार्ग द्वारा निर्यात कर दिया जाता है। कनाडा के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र लेब्रेडोर, ओंटेरियो, नोवोस्कोशिया, क्वेवैक, ब्रिटिश कोलम्बिया तथा न्यू फाउन्डलैण्ड आदि हैं। लेब्रेडोर में स्थित शेफरविले खदान प्रमुख लौह अयस्क उत्पादक खदान है। यह क्षेत्र सेंटलारेस नदी मार्ग से रेल यातायात द्वारा जुड़ा हुआ है। अतः लौह धातु का निर्यात करने में भी किसी प्रकार की समस्या नहीं आती है।

(10) स्वीडन

यूरोप महाद्वीप में सबसे अधिक लौह–अयस्क का भण्डार स्वीडन में ही पाया जाता है। स्वीडन का अधिकांश लौह भण्डार इसके उत्तरी एवं मध्य भाग में स्थित है। स्वीडन का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

किरूना और गैलीवियर है जो उत्तर में ध्रुवीय प्रदेश स्थित मध्य स्वीडन में गोजेविकवर्ग मुख्य खान हैं। स्वीडन में पाया जाने वाला अधिकांश लौह धातु उत्तम कोटि की मेग्नेटाइट धातु पायी जाती है। यूरोप में अधिकांश लोहे की आपूर्ति स्वीडन द्वारा ही पूरी की जाती है।

11 यूरोप के अन्य देश

स्पेन में लौह धातु का संचित भण्डार तो सीमित है, लेकिन यहाँ पाए जाने वाला लौहा उच्च कोटि का हेमेटाइट धातु के रूप में पाया जाता है।स्पेन के प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों में बिलबाओ, पिरेनीज, जिब्राल्टर के पास स्थित क्षेत्र सेन्तान्दर, गिबोन तथा ओविडो प्रमुख उत्पादन क्षेत्र हैं। स्पेन में उत्पादित अधिकांश लौह धातु का ब्रिटेन, जर्मनी को निर्यात कर दिया जाता है।

लाइबेरिया –लाइबेरिया दक्षिण अफ्रीका संघ के बाद अफ्रीका का दूसरा प्रमुख लौहा उत्पादक देश है। यहाँ का सम्पूर्ण लौह उत्पादन बोमी पहाड़ी क्षेत्र से होता है। बोमी पहाड़ी क्षेत्र से उत्पादित लौह में लौहांश की मात्रा 69 प्रतिशत तक पायी जाती है।

फ्रांस–फ्रांस में पाया जाने वाला अधिकांश संचित लौह भण्डार घटिया किस्म का पाया जाता है, जिसमें लोहांश का अंश 32 से 38 प्रतिशत तक पाया जाता है। फ्रांस का लगभग शत–प्रतिशत उत्पादन लॉरेन प्रदेश की खदानों से होता है जो नान्सी से लोंगवे तक 100 कि.मी. लम्बे क्षेत्र में विस्तृत रूप से फैले हुए हैं। लॉरेन के अलावा नॉरमण्डी, ब्रिटेनी क्षेत्र में भी कुछ मात्रा में लौह धातु पायी जाती है।

मैक्सिकोमैक्सिको में लौह उत्पादक क्षेत्र पूरे देश में छिटपुट क्षेत्रों के रूप में बिखरे – हुए पाए जाते हैं। यहाँ के प्रमुख क्षेत्र उत्तरी प्रशान्त क्षेत्र, उत्तरी भाग, मध्य प्रशान्त तटीय क्षेत्र एवं मेक्सिको का मध्य एवं दक्षिणी भाग प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र है। मैक्सिको में दुरागो प्रमुख क्षेत्र है जहाँ वर्तमान समय में मैक्सिको का अधिकांश लौह का उत्पादन होता है।

ईरान तेजी से लौह अयस्क का उत्पादन करते हुए दसवें स्थान पर पहुँच गया है। यहाँ की गोल गोहर लौह अयस्क उत्पादक कम्पनी प्रमुख है। इनके अलावा दक्षिणी अमेरिका के चिली के तटीय भाग में स्थित एलतोजो एवं रोमेरल क्षेत्र, पीरू का मारकोना क्षेत्र, वेनेजुएला के सेरो बोलिवार एवं एल पाओ क्षेत्र, क्यूबा के कामाग्वें, डैक्विरी क्षेत्र नार्वे का वाटगेर क्षेत्र, जर्मनी के पूर्व सीज, लान तथा डिल क्षेत्र, इटली का एल्बा क्षेत्र, ब्रिटेन के नॉर्थेम्पटन,क्लीब लैण्ड कोरबी प्रमुख लौह उत्पादक प्रदेश हैं।

लौह का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–सम्पूर्ण विश्व में उत्पादित लौह धातु का लगभग एक–तिहाई भाग का विभिन्न देशों के मध्य आदान–प्रदान होता है। वर्तमान समय में बड़े जलवानों के निर्माण के कारण लौह धातु का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तीव्र गति से बढ़ रहा है।

जापान विश्व में लौह अयस्क के आयात की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। यह अपनी आवश्यकता का लगभग 90 प्रतिशत लौह अयस्क का आयात करता है। जापान में आयातित लौह अयस्क के प्रमुख निर्यातक देश भारत, पेरू, ब्राजील, चिली, मलेशिया एवं आस्ट्रेलिया हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का दूसरा प्रमुख लौह अयस्क आयातक देश है। वेनेजुएला, कनाडा, चिली, ब्राजील एवं लाइबेरिया संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए प्रमुख निर्यातक देश हैं। विश्व के अन्य प्रमुख लौह आयातक देश जर्मनी, ब्रिटेन, चेक गणराज्य, पोलैण्ड, इटली,लक्जेम्बर्ग, बेल्जियम एवं प्रमुख निर्यातक देश लाइबेरिया, वेनेजुएला, ब्राजील, भारत, आस्ट्रेलिया, चिली, मारीटानिया, पीरू तथा स्वीडन हैं।

9.7 मैगनीज (Manganese)

मैंगनीज एक प्रमुख खनिज है, जिसका अधिकांश उपयोग लौह पूरक धातुओं में किया जाता है। यह पायरोल्यूसाइट (Pyrolusite) तथा सिलोमिलेन (Psilome+Laen) है। मैग्नीज के मुख्य अयस्क इस्पात निर्माण में मैगनीज अत्यधिक महत्वपूर्ण खनिज है इसके कारण इस्पात अत्यन्त कठोर अपघर्षण प्रतिरोधी एवं संरक्षित इस्पात का निर्माण होता है।

इस्पात के अलावा रेल की पटरियों, काटने, पीसने, तोड़ने वाली मशीनों के निर्माण शुष्क बैटरी, रासायनिक सम्मिश्रणों के निर्माण में, रंग रोगन, छतों के खपड़े बनाने में बर्तन, काँच की वस्तुएँ बनाने आदि में उपयोग किया जाता है। अतः वर्तमान समय अधिकाधिक पूरक वस्तुओं के रूप में उपयोग होने के कारण मैगनीज एक प्रमुख खनिज है।

मैगनीज के प्रमुख उत्पादक प्रदेश– मँगनीज के उत्पादन में 1980 के बाद से परिवर्तन हुआ है। 1991 में पूर्व सोवियत संघ प्रमुख उत्पादक देश था. लेकिन इसके अलग अलग देशों में विभाजित होने के कारण इसका उत्पादन प्रतिरूप अत्यधिक परिवर्तित हो गया है। इसका उत्पादन भी धीरे–धीरे कम होता जा रहा है।

दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, गैबन, चीन, यूक्रेन, भारत, मैक्सिको, घाना, जार्जिया आदि देश मिलकर विश्व के कुल उत्पादन का 95 प्रतिशत उत्पादन करते हैं।

1. दक्षिणी अफ्रीका. संचित भण्डार सीमित मात्रा में होते हुए भी उत्पादन की दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका विश्व का प्रथम प्रमुख मैंगनीज उत्पादक देश है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र पोस्टमेसबर्ग, कुसगेर्सडोर्प, सेरेस, आदि हैं। रेनोग, फेगंगा एवं टकूपा महत्वपूर्ण है। इण्डोनशिया वर्तमान समय में टिन उत्पादन की दृष्टि से विश्व में दूसरे–स्थान पर 'है। सुमात्रा के पूर्वी भाग में बर्हिद्वीप बंग्का, विलिटन एवं सिकेप प्रदेश प्रमुख उत्पादक हैं। मलक्का जलडमरूमध्य में सागरीय जमाव भी पाये जाते हैं।

ब्राजील विश्व में उत्पादन की दृष्टि से पाँचवें स्थान पर है। साओ जोआओ क्षेत्र में स्थित खदानें ब्राजील की प्रमुख टिन उत्पादक खदानें हैं। ब्राजील, पेरू एवं बोलिविया के टिन उत्पादक क्षेत्र एण्डिज पर्वत के पूर्वी भाग में 800 किमी. लम्बी एवं 96 किमी. चौड़ी पट्टी में पाए जाते हैं, जहाँ भौगोलिक एवं मानवीय परिस्थितियाँ टिन उत्पादन के अनुकूल पायी जाती हैं।

9.8 कोयला (Coal)

कोयला कार्बनयुक्त काले भूरे रंग का जीवाश्मीय ईंधन है, जो मुख्यतः अवसादी शैलों की परतों में (Revolution) रहा है, इसे काला सोना (Black Gold) भी कहते हैं कोयले को कार्बन की मात्रा तथा जलवाष्प की मात्रा के आधार पर पाँच वर्गों पीट, लिग्नाइट, बिटुमिनस, एन्थ्रेसाइट तथा ग्रेफाइट में विभाजित किया गया है। संसार में सर्वाधिक मात्रा में (85 प्रतिशत) बिटुमिनस कोयले का जमाव है तथा उत्पादन भी हो रहा है। कोयला शक्ति का प्रमुख होने के साथ ही इससे कोक, तारकोल, अमोनिया, नैथ्थीन, कोल गैस, फिनायल आदि पदार्थ भी बनाये जाते हैं।

कोयले का निर्माण कार्बोनीफेरस काल की वनस्पति के भू–गर्भ में दब जाने से उसमें परिवर्तन द्वारा हुआ है। वनस्पति के भू–गर्भ में दब जाने पर उसके विघटन होने एवं बहुत समय बाद उष्मा एवं ऊपरी दबाव के कारण पौधे सर्वप्रथम पीट में परिवर्तित हो जाते है। अत्यधिक दबाव एवं बढ़ती उष्मा के कारण ऑक्सीकरण की क्रिया अत्यधिक तीव्र हो जाती है, जिसके कारण पीट से धीरे–धीरे कोयला उच्च कोटि में परिवर्तित होता जाता है। अति उच्च कोटि जैसे एन्थ्रेसाइट कोयले का निर्माण दबाव एवं उष्मा के साथ वलन, भ्रंशन एवं संपीडन की क्रियाओं के होने के कारण नमी के समाप्त हो जाने

पर होता है। पृथ्वी के अन्दर स्थित कोयले निर्माण की अवधि के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जाता है–

(1) कार्बोनिफेरस युग (Carboniferous Period) में निर्मित कोयला

(2) तृतीयक युग (Tertiary Period) में निर्मित कोयला

कोयला के प्रकार (Types of Coal)

कोयले का निर्माण लकड़ी के भू–गर्भ में दबने और उसके रूप में परिवर्तित होने से होता है अतः लकड़ी के कोयला बनने तक की प्रक्रिया में कोयला विभिन्न किस्मों में परिवर्तित होकर गुजरता है। सर्वप्रथम लकड़ी में केवल 3 प्रतिशत कार्बन सम्पन्नता पायी जाती है। अतः लकड़ी पर दबाव पड़ने और उष्मा में धीरे–धीरे होने से कोयला भिन्न–भिन्न किस्मों में परिवर्तित होता रहता है। कार्बन, वाष्पशील द्रव व नमी की मात्रा के आधार पर कोयला निम्नलिखित प्रकार का होता है–

(i) पीट (Peat)–

पीट लकड़ी से कोयला बनने की प्रारम्भिक अवस्था है। इसमें लकड़ी का थोड़ी मामूली रूप परिवर्तित होता है। अतः इसमें कार्बन की मात्रा बहुत कम पायी जाती है। पीट में जलवाष्प की मात्रा अधिक पायी जाती है। अतः साधारणतया इसे कोयला नहीं कहा जाता है। पीट में 20% से कम कार्बन, 35% ऑक्सीजन और 10 प्रतिशत हाइड्रोजन की पायी जाती है। इनका औद्योगिक प्रक्रियाओं में उपयोग नहीं किया जाता है। केवल थोड़ी बहुत मात्रा में घरेलू ईंधन के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। कभी–कभी इसे विद्युत निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। यह लकड़ी की तरह ही जलता है एवं जलते समय बहुत अधिक धुआँ देता है।

(ii) लिग्नाइट या भूरा कोयला (Lignite or Brown Coal)–

पीट कोयला के बाद अधिक दबाव एवं उष्मा के कारण कोयला लिग्नाइट के रूप में परिवर्तित हो जाता है। कोयला निर्माण की दूसरी अवस्था है। इसका रंग भूरा होता है। इसमें कार्बन 29% जलवाष्प 35% से अधिक पायी जाती है। जलते समय धुआं अधिक देता है एवं जलने के बाद भी अधिक होती है। हवा चलने पर यह प्रायः आसानी से एवं जल्दी जल जाता है। लिग्नाइट के जमाव अधिकतर भू–पर्पटी के नीचे कम गहराई में पाए जाते हैं। अतः खनन कार्य आसानी से किया जाता है। विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 15प्रतिशत कोयला लिग्नाइट दे रूप में प्राप्त होता है। यूरेशिया में इसके जमाव पूर्वी जर्मनी, क्रास्नोयार्स्क (साइबेरिया), मास्को–टूला तथा हंगरी में मिलते हैं।

(iii) बिटुमिनस कोयला (Bituminus Coal)– बिटुमिनस कोयला विश्व में सर्वाधिक पाया जाता है। उत्पादन, संचित भण्डार एवं औद्योगिक प्रक्रिया में सर्वाधिक उपयोग बिटुमिनस कोयले का (कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत) ही किया जाता है। बिटुमिनस काले रंग का चमकदार होता है। जलते समय धुआँ कम देता है और जलने के बाद राख भी बहुत कम होती है। इसमें 40 से 80 प्रतिशत कार्बन, 11% से कम नमी, 15 से 40% वाष्पशील द्रव पाए जाते हैं।

बिटुमिनस कोयले को कार्बन की मात्रा के आधार पर सब– बिटुमिनस कोयला (Sub& Bituminus Coal), बिटुमिनस कोयला (Bituminus Coal) तथा सेमीबिटुमिनस कोयल (Semi bituminus Coal) आदि तीन भागों में विभाजित किया गया है। सब बिटुमिनस घटिया किस्म का बिटुमिनस कोयला है, जिसमें कार्बन की मात्रा कम पायी जाती है। इसे सामान्य भाषा में स्टीम कोयला, बंकर कोयला तथा कनाल कोयला (Canal Coal) भी कहते हैं।

(iv) एन्थ्रेसाइट कोयला (Anthrecite Coal)–

यह कोयला सर्वोत्तम कड़ा, घनीभूत, आबनूस की तरह कठोर, चमकदार, रवेदार एवं भंगुर (Brittle) होता है। एन्फ्रेंसाइट में नमी की मात्रा बहुत कम (1 प्रतिशत से भी कम) पायी जाती है। इसमें वाष्पयुक्त द्रव नहीं पाया जाता है। संसार के कुल कोयले का केवल 5% एन्थ्रेसाइट कोयला पाया जाता है। कार्बन सम्पन्नता 95% तक पायी जाती है। यह कोयला जलते समय धुआँ नहीं देता है तथा इसमें जलने के बाद राख भी नहीं होती है। यह नीली लौ के साथ बहुत लम्बे समय तक जलता रहता है। इसका सर्वाधिक उपयोग इस्पात उद्योग में होता है। एन्थ्रेसाइट को ईंधन या कोक कोयला (Coking Coal) भी कहते हैं। शीत प्रदेशों में स्थित मकानों को गर्म करने में भी एन्थ्रेसाइट कोयले का उपयोग किया जाता है। इसका उत्पादन एवं संचित भण्डार संयुक्त राज्य अमेरिका के पेंसिलवानिया, ग्रेट ब्रिटेन के दक्षिणी वेल्स क्षेत्र में, रूस, जर्मनी, बेल्जियम और चीन आदि देशों में पाया जाता है। इसका संचित भण्डार विश्व में बहुत कम पाया जाता है। कोयले का अधिकतर उपयोग तापीय विद्युत उत्पादन में एवं यांत्रिक ऊर्जा निर्माण में किया जाता है। उपयोग करने से पूर्व कोयला को विभिन्न आकारों में तोड़ना, साफ करना एवं चालना आदि क्रियाएँ की जाती हैं। तापीय ऊर्जा के विद्युत उत्पादन संयंत्रों में उपयोग में लिए जाने वाले कोयले (बियूमिनस) को स्टीम कोयला (Steam Coal) कहते हैं।

(v) ग्रेफाइट (Graphite)–

यह कार्बनीकरण की अन्तिम अवस्था होती है। ग्रेफाइट को काला सीसा (Black Lead) एवं वास्तविक कोयला (Plumbage) भी कहते हैं। ग्रेफाइट का उपयोग जलाने में नहीं करते वरन् इसे पेंसिल बनाने एवं धात्विक वस्तुओं के निर्माण में लेते हैं। इसकी आपूर्ति मैक्सिको, श्रीलंका, जापान, कोरिया, कनाडा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका से होती है।

कोयला खनन की विधियाँ (Methods of Coal Mining)

(i) खुली या धरातलीय खदान (Open Cast Mining) – जहाँ पर कोयले की परतें 60 मीटर से कम गहराई में पायी जाती हैं वहाँ इसका उपयोग किया जाता है। इसमें कोयले की ऊपर की मिट्टी वाली परत हटाकर खुदाई की जाती है।''

(ii) सुरंगी या ड्रिफ्ट खदान (Drift Mining) – पहाड़ी ढाल पर या उसके पास स्थितखदानों में ड्रिफ्ट विधि द्वारा कोयले का खनन कार्य किया जाता है।

(iii) लम्बवत् खदान (Shaft Mining)– अधिकतम गहराई में स्थित कोयले की परतों को उर्ध्वाधर

खुदाई करके बड़ी–बड़ी बाल्टियों द्वारा बाहर निकाला जाता है।

(iv) ढालू खदान (Slope Mining) – पहाड़ी ढालों के निचले भाग में स्थित कोयले .की परतों का सुरंग खोदकर खनन कार्य किया जाता है।

विश्व में कोयले का संचित भण्डार (Coal Deposits in the World)

वर्तमान में विश्व में कोयले के संचित भण्डार नवीनतम आकलन के अनुसार लगभग 100009 करोड़ मीट्रिक टन है जिसका 60,000 करोड़ मिट्रिक टन दोहन योग्य है। इसका वितरण असमान है क्योंकि केवल 14 देशों में ही उच्च एवं मध्यम कोटि के कुल संचित भण्डार 1000 करोड़ मिट्रिक टन से अधिक हैं। विश्व में जमावों की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका (27 प्रतिशत), रूस (17 प्रतिशत), चीन (13 प्रतिशत) तथा भारत (10.1 प्रतिशत) का जमाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। यूरोपीय देशों में 15 है जिनमें जर्मनी (5 प्रतिशत) तथा पौलेण्ड (6 प्रतिशत) उल्लेखनीय है। इसी प्रकार अफ्रीका में 10 प्रतिशत तथा आस्ट्रेलिया में 8 प्रतिशत कोयले का जमाव पाया जाता है।

विश्व में कोयले का संचित भण्डार

देश	सुरक्षित भण्डार	विश्व का प्रतिशत
1सं0रा0अमेरिका	237.29	27.0
2. रूस	157.01	18.0
3. चीन	114.5	13.0
4. आस्ट्रेलिया	76.4	9.0
5. भारत	60.6	6.7
6.जर्मनी	40.7	4.7
7.यूक्रेन	33.82	3.9
8. कजाखस्तान	33.6	3.9
9. कोलम्बिया	6.76	0.1
10. कनाडा	6.82	0.1

कोयले का विश्व में उत्पादन–

कोयला का विश्व में सर्वप्रथम उत्पादन ब्रिटेन में प्रारम्भ किया गया। वर्तमान समय में विश्व के

लगभग सभी देश थोड़ी बहुत मात्रा में कोयले का उत्पादन करते हैं। 1860 में कोयले का विश्व में उत्पादन 20 करोड़ टन था, जो 1960 में बढ़कर 262 करोड़ टन हो गया। 1987 में विश्व में कोयले का उत्पादन लगभग 455 करोड़ टन हुआ, जो बढ़कर 2017 में 750 करोड़ टन हो गया। उत्पादन की दृष्टि से चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, आस्ट्रेलिया, रूस, दक्षिणी अफ्रीका, यूक्रेन, जर्मनी, पोलैण्ड, कनाडा, इण्डोनेशिया, कजाखस्तान, ब्रिटेन, चेकगणराज्य आदि प्रमुख देश हैं जो विश्व के कुल कोयला उत्पादन का 91 प्रतिशत भाग का उत्पादन करते हैं। वर्तमान समय में चीन, भारत आदि देशों का उत्पादन प्रतिवर्ष अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ रहा है, लेकिन अन्य देश जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन आदि जो पहले अधिक उत्पादन करते थे, वर्तमान में इनका उत्पादन या तो स्थिर है या दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। कोयला उत्पादन में कमी के मुख्य कारणों में वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का प्रयोग तथा संसाधन संरक्षण की भावना उल्लेखनीय है।

चीन

विश्व में कोयला उत्पादन की दृष्टि से चीन विश्व का वृहत्तम उत्पादक देश है। लेकिन संचित भण्डार की दृष्टि से विश्व में इसका तीसरा स्थान है। चीन के अधिकांश कोयला क्षेत्र ह्वांगहो तथा यांग्टीसीक्यांग बेसिन में स्थित है। चीन के प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र अग्रलिखित हैं–

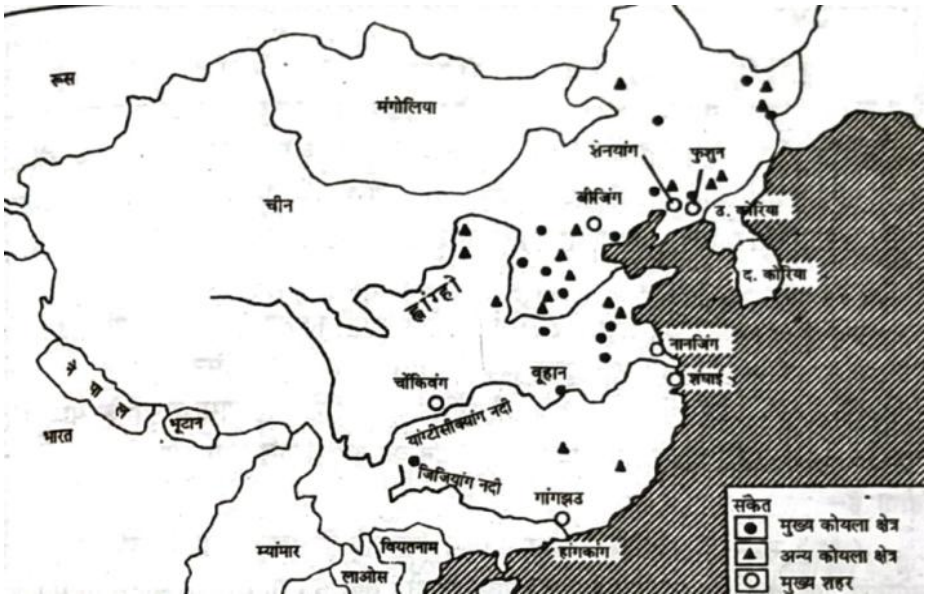

चित्र.9.5 चीन के कोयला क्षेत्र

(i) उत्तर–पश्चिम क्षेत्र–

चीन में संचित कोयले का सर्वाधिक भण्डार इसी क्षेत्र में पाया जाता है। इस क्षेत्र के प्रमुख उत्पादक शांसी–सी–कांसू होनान आदि प्रदेश हैं। यह संयुक्त अमेरिका के पेंसिलवानिया कोयला क्षेत्र के बाद विश्व का दूसरा बड़ा बिटुमिनस का जमाव है। इस क्षेत्र का चीन में कोयला उत्पादन की दृष्टि से दूसरा स्थान है। शांसी लोयस उच्च प्रदेश में स्थित है।

(ii) हुपे–(Hupei)–

हुपे या होनान क्षेत्र में चीन का लगभग 50 प्रतिशत उत्पादन होता है। यह बीजिंग के समीप हैनान नगर से लेकर शांसी के पठार तक फैला है तथा एन्थ्रेसाइट और बिटुमिनस के विशाल भण्डार हैं।

(iii) मंचूरिया क्षेत्र

यहाँ चीन का सर्वाधिक कोयला उत्पादित किया जाता है। यहाँ पर कई अनुकूल दशाएँ हैं, जैसे उच्च कोटि का बिटुमिनस कोयला, कोयले का अधिकांश भाग धरातल के पास ही स्थित है एवं कोयले की मोटी मोटी परतें (120 मीटर तक) पायी जाती हैं। अतः कोयला उत्पादन में लागत भी कम आती है। इस क्षेत्र के प्रमुख उत्पादक प्रदेश कुशुन, फुहाशिन एवं पेसिह है। फुशुन में विश्व की सबसे मोटी कोयले की परत पायी जाती है। जिसकी मोटाई 120 मीटर है।

(iv) शांतुंग कोयला क्षेत्र–

यह क्षेत्र शांतुग प्रायद्वीप पर स्थित है तथा यहाँ उच्चकोटि के बिटुमिनस के भण्डार हैं। लूघ एवं चूंगसिंग इस क्षेत्र के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। (अ) अन्य क्षेत्र – अन्य क्षेत्रों में अन्हवी, चुगकिंग, चेगडू (Chengdu or Chengtu), क्वीशेव, क्यांग्सी, यूनान एवं जेचवान प्रदेश प्रमुख कोयला उत्पादक प्रान्त हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका–

विश्व में कोयला उत्पादन की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका तृतीय वृहत्तम उत्पादक देश है। संयुक्त राज्य के कोयला उत्पादक क्षेत्र मांग क्षेत्रों के मध्य में या उनके समीप स्थित है। अतः यहाँ प्रादेशिक सन्तुलन पाया जाता है। अधिकतर कोयला उत्पादक क्षेत्र अप्लेशियन पर्वत के पश्चिमी भाग में एवं महान झीलों के दक्षिण भाग में स्थित हैं। यहाँ लगभग 2707 करोड़ मीटरी टन कोयला के भण्डार हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रमुख कोयला क्षेत्र हैं–

(i) अप्लेशियन कोयला क्षेत्र–

संयुक्त राज्य अमेरिका का लगभग 50 प्रतिशत कोयला इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। यहां मुख्य रूप से उत्तम कोटि का बिटुमिनस कोयला पाया जाता है। यह क्षेत्र अमेरिका के उत्तरी–पश्चिमी पेंसिलवानिया से अलबामा राज्य के मध्य 10 किमी. लम्बाई में स्थित है। इस प्रदेश में उत्पादन का अधिकतम भाग अग्र तीन क्षेत्रों से प्राप्त होता है–

(अ)उत्तरी अप्लेशियन क्षेत्र–

इसका विस्तार पेंसिलवानिया के पश्चिम में, पूर्वी ओहियो एवं वर्जीनिया का पूर्वी एवं समीपवर्ती क्षेत्र तक है। यहाँ स्थित पीट्सबर्ग में विशाल कोयले की परतें पायी जाती हैं, अतः इसे पिट्सबर्ग कोयला क्षेत्र भी कहते हैं। पीट्सबर्ग यंग्सटाउन यहाँ के प्रमुख कोयला उत्पादक केन्द्र हैं पेंसिलवानिया राज्य के उत्तरी–पूर्वी भाग में संयुक्त राज्य अमेरिका का एन्थ्रेसाइट कोयला उत्पादक क्षेत्र स्थित है जहाँ से संयुक्त राज्य का 98 प्रतिशत एन्थ्रेसाइट कोयले का उत्पादन किया जाता है। पेंसिलवानिया का स्क्रेटन प्रमुख उत्पादक केन्द्र है।

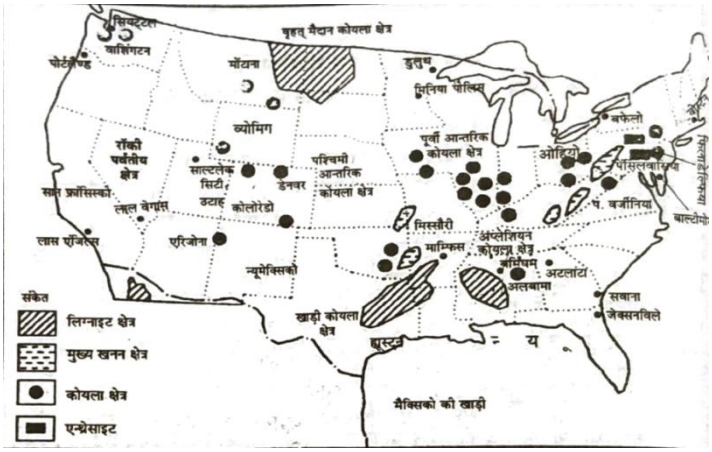

चित्र.9.6 : संयुक्त राज्य अमेरिका के कोयला क्षेत्र

(ब) मध्य एवं दक्षिणी अप्लेशियन क्षेत्र–

यहाँ उत्तम बिटुमिनस कोयले का उत्पादन किया जाता है। यह क्षेत्र टेनेसी, वर्जीनिया एवं केंटुकी राज्यों में विस्तृत है।

(स) अलबामा कोयला उत्पादन क्षेत्र

इसके अलावा इस प्रदेश के अन्य छिटपुट पर भी कुछ मात्रा में कोयले का उत्पादन किया जाता है।

(ii)मध्यवर्ती या आन्तरिक कोयला क्षेत्र–

आन्तरिक कोयला उत्पादन क्षेत्र का लगभग शत–प्रतिशत क्षेत्र मिसीसिपी मिसौरी नदियों की घाटियों में पाया जाता है। इस क्षेत्र का विस्तार में स्थित मिशीगन राज्य से दक्षिण में टेक्सास, पूर्व में केंटुकी राज्य से पश्चिम में इकोटा एवं नेब्रास्का राज्यों में पाया जाता है। इस क्षेत्र में पाया जाने वाला कोयला निम्न कोटि का बिटुमिनस कोयला है।

(iii)खाड़ी तटीय क्षेत्र–

संयुक्त राज्य के दक्षिण–पूर्वी भाग में स्थित मैक्सिको खाड़ी के तटीय भाग में स्थित अलबामा का दक्षिणी भाग अरकसांस एवं टेक्सास राज्य में बिटुमिन्स तथा निम्न कोटि का लिग्नाइट कोयला पाया जाता है।

(iv)उत्तरी मैदान क्षेत्र–

इसका विस्तार प्रेयरी प्रदेश के उत्तरी भाग में कनाडा तक पाया जाता है। यहाँ मुख्य रूप से डकोटा राज्य के उत्तरी भाग में लिग्नाइट एवं मोंटाना, वायोमिंग कोलोरैडो राज्यों में निम्न कोटि का सब बिटुमिनस कोयला पाया जाता है।

(v)रॉकी पर्वतीय कोयला क्षेत्र–

रॉकी पर्वत के पूर्वी ढाल क्षेत्र में कोयले का बृहत संचित भण्डार पाया जाता है। रॉकी पर्वत के पूर्वी भाग में स्थित मोटांना, वायोमिंग, कोलोरेडो एवं न्यू मैक्सिको राज्य प्रमुख उत्पादक है। यहाँ अधिकतर निम्न कोटि का बिटुमिनस कोयला जाता है। लेकिन औद्योगिक क्षेत्र में स्थित होने के कारण इसका अधिक महत्व है।

(vi) प्रशान्त महासागर का तटीय क्षेत्र–

इस क्षेत्र में अधिकांश कोयले का उत्पादन कोलम्बिया नदी की घाटी में होता है, जो संयुक्त राज्य के उत्तरी–पश्चिमी भाग में तटीय क्षेत्र में स्थित है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक राज्य वाशिंग्टन, ऑरेगन एवं कैलिफोर्निया हैं। यहाँ अधिकतर निम्न किस्म का लिग्नाइट कोयला पाया जाता है।

कनाडा

कनाडा में उत्पादित कोयले का अधिकांश भाग बिटुमिनस किस्म का एवं लगभग एक तिहाई भाग लिग्नाइट किस्म का पाया जाता है। कनाडा के उत्पादित कोयले का अधिकतर भाग अलबर्टा राज्य से प्राप्त होता है। सस्केचवान, नोवास्कोशिया एवं ब्रिटिश कोलम्बिया अन्य उत्पादक राज्य हैं। लेकिन कनाडा के अधिकांश कोयले के भण्डार मांग क्षेत्रों से दूर पाए जाते हैं तथा शीतकाल में सेंट लारेन्स नदी के जल मार्ग के जम जाने के कारण अपनी आवश्यकता का अधिकांश भाग संयुक्त राज्य अमेरिका से आयात करता है।

भारत–

भारत में कोयले के जमाव क्षेत्र दो प्रकार की चट्टानों से जुड़े हैं। प्रथम चट्टान निम्न गोंडवाना युग (20 करोड़ वर्ष प्राचीन) की चट्टान है जो सामान्यतया आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, ओडिशा एवं पश्चिम बंगाल में है। कुल उत्पादन का 98 प्रतिशत इन्हीं चट्टानों से प्राप्त होता है। टर्शियरी युग (लगभग 5.5 करोड़ पुराना) की चट्टानों में कोयले के भण्डार चार राज्यों से प्राप्त हैं जिनमें असम, जम्मू–कश्मीर राजस्थान एवं तमिलनाडु आदि प्रमुख हैं। 113 ज्ञात कोयला क्षेत्रों में से 80 निम्न समूह में स्थित हैं। जहाँ देश के 96 प्रतिशत कोयला भण्डार है तथा 98 प्रतिशत हो उत्पादन रहा है। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण 2013 के अनुसार 1200 मीटर की गहराई तक पायी जाने वाले कोयले के कुल अनुमानित भण्डार 606 करोड़ टन था, जो विश्व के अनुमानित जमावों का लगभग 6% प्रतिशत है।

भारत में प्रमुख जमाव क्षेत्र कई नदी घाटियों से सम्बन्ध रखते हैं, ये निम्न हैं–

(i)दामोदर नदी घाटी–इस नदी घाटी क्षेत्र में पश्चिम बंगाल के बर्द्धवान, पूर्णिया एवं बाकुंड़ा तथा झारखण्ड के धनबाद एवं हजारीबाग जिले सम्मिलित हैं।

(ii)सोन नदी घाटी–इस नदी घाटी पर मध्य प्रदेश के सिंगरौली, उमरिया, सोहागपुर, – तातापानी तथा झारखण्ड के डाल्टनगंज, हुतार एवं औरंगाबाद स्थित हैं।

(iii) महानदी घाटी में ओडिशा– के तलचर एवं संभलपुर, मध्य प्रदेश का कोरबा, सिनहर झिलमिली, चिरमिरी, रामपुर स्थित हैं।

(iv) गोदावरी नदी– घाटी तेलंगाना के सिंगरेनी एवं तंदुरी, महाराष्ट्र के बेलारपुर, प्रमुख हैं।

(v) नर्मदा पर मध्य प्रदेश का छिंदवाड़ा जिला महत्त्वपूर्ण है।

(vi) सतपुड़ा क्षेत्र–यह मध्यप्रदेश में सतपुड़ा पर्वत के समीपवर्ती भाग में स्थित है।

यहाँ मोहपानी, पथखेड़ा, कान्हन घाटी व पेंचघाटी में कोयला मिलता है।

राज्यानुसार कोयले का उत्पादन

(i) झारखण्ड–

यहाँ भारत का सर्वाधिक कोयला (देश का 26.01 प्रतिशत) उत्पादित किया जा रहा है। यहाँ झरिया, बोकारो, कर्णपुरा, गिरिडीह रामगढ़ डाल्टनगंज, औरंगाबाद, हुतार तथा ललमटिया प्रमुख

कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं। इनमें झरिया एवं लालमटिया से सम्पूर्ण राज्य का 50 प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है।

(ii) पश्चिम बंगाल–

1970 में इसकी भागीदारी 6.1 प्रतिशत थी जो वर्तमान में 5.81 प्रतिशत रह गयी है। इसका दूसरा स्थान है, यहाँ रानीगंज प्रमुख क्षेत्र है। रानीगंज का कुछ भाग झारखण्ड में स्थित है।

(iii) ओडिशा–

ओडिशा का कोयला भण्डारों में दूसरा तथा उत्पादन में में तीसरा स्थान है। यहाँ देश के 24. 11 प्रतिशत कोयला भण्डार हैं तथा 14.83 प्रतिशत उत्पादन होता है तालचर और रामपुर प्रमुख कोयला क्षेत्र हैं।

(iv) मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़–

सोहागपुर, उमरिया, झिलमिली, रामकोला, बनास, पेंच कन्हान, मोहपानी, सिंगरौली आदि मध्यप्रदेश के तथा छत्तीसगढ़ में कोरबा, तत्तापानीविश्रामपुर, लखनपुर, हसदो आरंद, सोनहट, चिरमिरी, झगड़खण्ड, जोहिला आदि प्रमुख क्षेत्र है। सिंगरेनी महाराष्ट्र, बलारपुर, चौदा, बाँदा तथा यवतमाल आदि प्रमुख है। लिगनाइट एवं पीट में तमिलनाडु प्रथम स्थान रखता है। यही कारण है कि वहाँ ''नेवेली **लिग्नाइट परियोजना''** है।1774 में भारत में जब प्रथम बार उत्पादन प्रारम्भ हुआ तो कोयला रानीगंज (पश्चिम बंगाल) क्षेत्र से प्राप्त हुआ था। उत्पादन की दृष्टि से झारखण्ड प्रथम स्थान रखता है। टर्शियरी काल के कोयला उत्पादक क्षेत्रों में तमिलनाडु का वेल्लौर, असोम, मेघालय में गारो, खासी, जयन्तियाँ की पहाड़ियाँ (माकूम क्षेत्र), चिनाब नदी क्षेत्र में कालाकोट, मेटा (जम्मू–कश्मीर) तथा राजस्थान का पलाना क्षेत्र (बीकानेर) प्रमुख हैं।

रूस

वर्तमान समय में रूस का कोयला उत्पादन बहुत घट गया है। वर्तमान समय में कोयला उत्पादन की दृष्टि से रूस विश्व का पाँचवाँ वृहत्तम उत्पादक देश है। जमाव क्षेत्र असन्तुलित एवं माँग क्षेत्रों से दूर स्थित है। लगभग कोयला का 90 प्रतिशत संचित भण्डार एशियाई प्रदेशों में पाए जाते हैं, जबकि अधिकांश जनसंख्या यूरोपीय क्षेत्रों में पायी जाती है। अतः भौगोलिक असन्तुलन पाया जाता है। यहाँ के प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

(i) कुजबास क्षेत्र (कुजनेत्स्क)–

रूस का सर्वाधिक संचित कोयला इसी क्षेत्र में पाया जाता है। यह यूराल पर्वत के पूर्व में है। यहाँ कोयले की परतें धरातल के समीप 15–20 मीटर की गहराई पर पायी जाती हैं। अतः खनन कार्यसरलता से किया जाता है। लेकिन इस्पात केन्द्रों से दूर स्थित होने के कारण परिवहन लागत अधिक लगती है। यह ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग के सहारे स्थित होने से नोवोसिबिर्स्क एवं केमेरोवो के

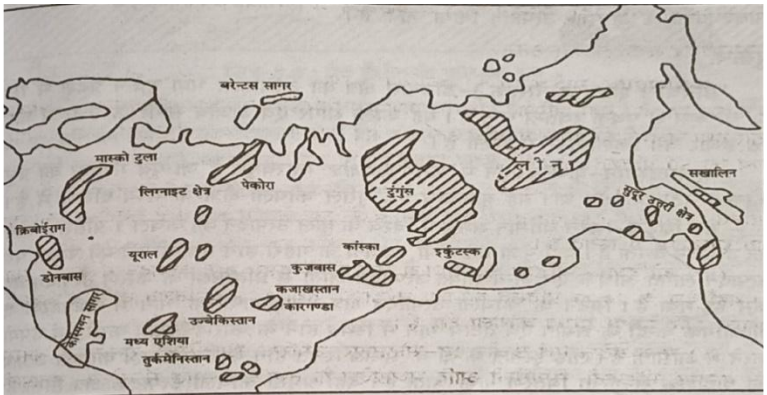

चित्र-8.7 : रूस, कजाकिस्तान (कारागण्डा) तथा यूक्रेन (डोनबास) के कोयला क्षेत्र

धात्विक उद्योगों के लिए भेजा जाता हैं।

(ii) मास्को–टुला क्षेत्र–

यह रूस के मध्यवर्ती भाग में स्थित है। यहाँ निम्न किस्म घटिया लिग्नाइट कोयला पाया जाता है। लेकिन रूस के इस्पात उद्योगों के पास स्थित होने के कारण इसका अधिकतम महत्त्व है। नजदीक ही मास्को–टूला में स्थित इस्पात औद्योगिक इकाइयों की आवश्यकता की पूर्ति यहीं से होती है।

(iii) यूराल प्रदेश–

इस प्रदेश में यद्यपि कोयला भण्डार सीमित पाया जाता है, लेकिन अन्य कोयला उत्पादक केन्द्रों के दूर स्थित होने के कारण यहाँ भी कोयले के संचित का पता लगाया जा रहा है। यूराल प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित किजेल बेसिन स्वेर्डलोव्स्क क्षेत्र यहाँ के प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं।

(iv) साइबेरिया क्षेत्र–

इस प्रदेश में भी कोयला का संचित भण्डार अधिकतम है, लेकिन वर्तमान में अभी तक इस क्षेत्र में उत्पादन बहुत कम होता है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक में मध्य साइबेरिया के क्रैस्नोयार्स्क, कास्क, मिनुसिंस्क, आचिस्क प्रदेश एवं पूर्वी साइबेरिया के छिटपुट स्थानों (ब्लाडीवोस्टक, इर्कुटस्क, सखालीन) में उत्पादन होता है। टुंगुस एवं लोग बेसिन में भी कोयला है।इनके अतिरिक्त

(v) इर्कुट्स्क बेसिन,

(vi) पैकोरा बेसिन,

(vii) आमूर घाटी, लीना बेसिन (i) तैमिर आदि क्षेत्र भी प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं जिनमें स्थान विशेष आवश्यकता के अनुसार उत्पादन किया जाता है। यूक्रेन डोनवास क्षेत्र (डोनेत्सक)– डोनवास क्षेत्र का अधिकांश भाग यूक्रेन प्रदेश में स्थित है, जो रूस से पृथक् स्वतन्त्र राष्ट्र है। यह काला सागर एवं अजोव सागर के उत्तर में करीब 26 हजार वर्ग किलोमीटर में फैला है।

कजाखस्तान कजाखस्तान में कारगण्डा क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है जो पूर्व में रूस का प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र था। यह कुजबास एवं यूराल कोयला क्षेत्रों के मध्य दक्षिण में है।

ग्रेट ब्रिटेन– ब्रिटेन वर्तमान समय में विश्व के कुल उत्पादन का केवल 1 प्रतिशत कोयले उत्पादन करता है। यहाँ पूँजी की कमी, खदानों के गहरी होने एवं कोयले की पतली उत्पादन लागत अधिक एवं अन्य शक्ति उत्पादित स्रोतों से प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादन बहुत कम हो गया है। ब्रिटेन के कोयला उत्पादित क्षेत्र मध्य आन्तरिक भाग में व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्रों के समीप एवं तटीय भाग में स्थित होने के कारण निर्यात करने एवं उपयोग करने में आसानी है। लौह इस्पात केन्द्रों के समीप स्थित होने के कारण यहाँ कोयला उत्पादन का प्रादेशिक सन्तुलित वितरण पाया जाता है। यहाँ प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र निम्न है –

(i) यार्कशायर–डर्बी शायर–नाटिंघमशायर क्षेत्र–पिनाइन के दक्षिणी भाग के पूर्वी

चित्र–8.8 : ग्रेट ब्रिटेन के कोयला क्षेत्र

ढालों पर स्थित ब्रिटेन का यह प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ ब्रिटेन के कुल उत्पादन का 33 प्रतिशत कोयले का उत्पादन होता है। लीड्स एवं बैडफोर्ड प्रमुख उत्पादक केन्द्र हैं। हल एवं हम्बर एस्चुरी बन्दरगाहों द्वारा निर्यात किया जाता है।

नार्थम्बरलैण्ड – डरहम क्षेत्र

ब्रिटेन के उत्तरी–पूर्वी भाग में पिनाइन पर्वत के पूर्व में स्थित है। यहाँ उत्पादित कोयले का न्यू कैंसिल बन्दरगाह द्वारा निर्यात किया जाता है।

(iii) दक्षिणी वेल्स क्षेत्र–

यह कोयला क्षेत्र मॉनमशायर के पश्चिमी भाग से ग्लोमोरशायर तक लगभग 1000वर्ग मील क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ अधिकांश बिटुमिनस एवं एन्थ्रेसाइट कोयला पाया जाता है।

(iv) क्लाइड घाटी

ग्लासगो–एडिनबरा के मध्य स्काटलैण्ड की मध्य घाटी में क्लाइड कोयला उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ कोयला उत्पादन की अनुकूल भौगोलिक दशाएँ पायी जाती हैं। ग्लासगो औद्योगिक क्षेत्र का विकास क्लाइड घाटी कोयला क्षेत्र के कारण ही हुआ है।

(v) मिडलैण्ड कोयला क्षेत्र–

मध्य में स्थित कोयला क्षेत्र पेनाइन्स श्रेणी के दक्षिण स्थित है। बर्मिघम औद्योगिक क्षेत्र में सर्वाधिक उत्पादन होता है। बर्मिंघम कोयला उत्पाद क्षेत्र में स्थित होने के कारण ही ब्रिटेन का प्रमुख इस्पात उत्पादक केन्द्र बन गया है के अतिरिक्त वार्विकशायर, लिसेस्टर एवं डर्बीशायर भी प्रमुख कोयला उत्पादन केन्द्र है। खनन कार्य, बाजार केन्द्रों के समीप स्थित एवं अधिकांश उत्खनन कार्य मशीनों द्वारा होने कारण उत्पादन तीव्र गति से बढ़ रहा है।

(vi) लंकाशायर क्षेत्र पेनाइन्स श्रेणी के पश्चिमी भाग में मरसी नदी के समीप लंकाशायर क्षेत्र भी ब्रिटेन का प्रमुख कोयला उत्पादन केन्द्र है।

(vii) उत्तरी एवं दक्षिणी स्टैफोर्डशायर,

(viii) कम्बरलैण्ड,

(ix) फारेस्ट आप डीन

(x) इस्ट कट,

(xi) ब्रिस्टल कोयला क्षेत्र आदि अन्य प्रमुख कोयला उत्पादन करने वाले हैं।

जर्मनी

जर्मनी कोयला उत्पादन की दृष्टि से विश्व का आठवा उत्पादक देश है के बाद यद्यपि जर्मनी के कोयला उत्पादन में धीरे–धीरे गिरावट आती जा रही है। जर्मनी प्रमुखतया बिटुमिनस एवं लिग्नाइट कोयला पाया जाता है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक के अग्रलिखित हैं–

(i) रूर क्षेत्र–

यह क्षेत्र वेस्टफेलिया प्रदेश में राइन नदी की सहायक रूर (Ruhar) लिप्प नदियों के दोआब एवं घाटियों में विस्तृत रूप से फैला हुआ है। अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियाँ, उच्च किस्म का कोयला, मोटी परतें, औद्योगिक प्रदेश के मध्य में स्थित, नदियों द्वारा यातायात की सुविधा आदि परिस्थितियों के कारण यहाँ जर्मनी का लगभग 3/4 का उत्पादन होता है।

(ii) सार एवं आखेन क्षेत्र–

यहाँ प्रमुखतया सार में बिटुमिनस एवं आखेन में लिग्नाइट कोयला पाया जाता है। यह क्षेत्र बोन और कोलोन (बवेरिया) से लेकर आखेन विस्तृत है।

(iii) सैक्सनी क्षेत्र–

सैक्सनी क्षेत्र जर्मनी के पूर्वी भाग में स्थित है, यहाँ पाया जाने वाला कोटि का लिग्नाइट कोयला है सैनी क्षेत्र में हल्ले, मेगडेबर्ग एवं लिपजिग प्रमुख उत्पादन केन्द्र हैं।

पोलैण्ड–

कोयला उत्पादन में पोलैण्ड का विश्व में नवाँ स्थान है। पोलैण्ड का लगभग शत प्रतिशत कोयले का उत्पादन उत्तरी साइलेशिया के पूर्वी भाग में स्थित दोम्ब्रावा एवं क्राकाओ प्रमुख कोयला

उत्पादन केन्द्र हैं। पोलैण्ड का वालब्रिश जिला एथ्रेंसाइट का प्रमुख बिटुमिनस केंद्र है। इनके अतिरिक्त ऑफर एवं कोनिन क्षेत्रों में भी कोयले का उत्पादन होता है। ऊपरी साइलेशिया कोयला क्षेत्र का कुछ भाग पूर्व चेकोस्लोवाकिया देश में विभाजित करते समय आ गया था। अब ये देश चेक गणराज्य एवं स्लोवाकिया में विभक्त हैं, जहाँ लिग्नाइट मिलता है।

फ्रांस–फ्रांस की कोयला उत्पादन पेटी जर्मनी, नीदरलैण्ड–बेल्जियम कोयला उत्पादनपेटी का ही उत्तरी–पश्चिमी भाग है जहाँ अधिकतम बिटुमिनस किस्म का कोयला पाया जाता है। यहाँ कोयला उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र फ्रांस के उत्तरी–पश्चिमी भाग में स्थित हैं, जिनमें

मुख्य है–

(i) नोद–पास दे केलिस बेसिन

(ii) असा लारेन क्षेत्र

(iii) फ्रांस के मध्य पठारी भाग (Central Masil) में स्थित सी क्रयूजोत, सेंट ऐतिने क्षेत्र यह बेल्जियम के फ्रांको बेल्जियम क्षेत्र से हुआ है। फ्रांस के उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित मोसेल क्षेत्र भी प्रमुख कोयला उत्पादक केंद्र है। यह क्षेत्र जर्मनी के सार बेसिन का हिस्सा है।

स्पेन–

उत्तरी स्पेन में ओविड़ो के आसपास कोयले का खनन होता है। यहाँ आस्ट्रियास एवं लियोन (Austrais and Leon) प्रमुख कोयला क्षेत्र हैं।

बेल्जियम

बेल्जियम में साम्ब्रेम्यूज घाटी (Sambre meuse Valley) में फ्रांको बेल्जियम कोयला क्षेत्र है जो बेल्जियम के दक्षिणी भाग में स्थित है, लगभग 130 किमी. लम्बाई में फैला हुआ है। यहाँ प्राप्त कोयला मुख्यतया निम्न किस्म का है, अतः यहाँ अनेक कठिन भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्पादन प्रतिवर्ष घटता जा रहा है। लीज (Liege), चारलेरोई (Charieroi), मोन्स एवं नेमूर प्रमुख कोयला खानें हैं। बेल्जियम के उत्तरी भाग में स्थित केम्पाइन क्षेत्र (Kepenland or Campine coal field) अपेक्षतया नया कोयला उत्पादक क्षेत्र है जो 130किमी. लम्बाई और 20किमी. चौड़ाई में फैला हुआ है।

नीदरलैण्ड

प्रमुख कोयला उत्पादन क्षेत्र निम्न हैं– (i) लिम्बर्ग बेसिन, (ii) पील बेसिन इन दोनों क्षेत्रों से ही नीदरलैण्ड का लगभग पूरा कोयला उत्पादित होता है।

आस्ट्रेलिया–

आस्ट्रेलिया विश्व के कुल कोयला के संचित भण्डार 8.7 प्रतिशत उत्तम कोटि एवं 8.8 प्रतिशत निम्न कोटि के कोयले के साथ उत्पादन की दृष्टि से चौथा वृहत्तम उत्पादक देश है। आस्ट्रेलिया के प्रमुख कोयला उत्पादक प्रान्त न्यूसाउथवेल्स, क्वींसलैण्ड एवं विक्टोरिया हैं जहाँ सिडनी –न्यूकाशल, न्यूकैंसल, लिथगो एवं कम्बा आदि प्रमुख कोयला खनन क्षेत्र हैं। मध्य क्वींसलैण्ड के हंटर बेसिन में स्थित ब्लेपर एथॉल खदान तथा इप्सविच भी प्रमुख कोयला खदान है जहाँ कोयले की परतें 30 मीटर मोटी हैं। विक्टोरिया प्रान्त की लेट्रोबे घाटी (जिप्सलैण्ड) में तथा तस्मानिया के फिंगल (Fingal) में भी कोयले का उत्पाद होता है लेकिन यहाँ अधिकतर लिग्नाइट कोयला पाया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका–

दक्षिणी अफ्रीका अफ्रीका महाद्वीप का प्रमुख उत्पादक देश है जिसका कोयला उत्पादन में विश्व में सातवाँ स्थान है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक राज्य ट्रांसवाल, नेटाल, आरेंज फ्री स्टेट, प्रिटोरिया के पूर्व में मिडिलबर्ग एवं विटबैंक क्षेत्र, जोहांसबर्ग के दक्षिण में वेरीनिगिंग प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त जिम्बाब्वे के वैंकी, जायर के ल्यूना, मोजाम्बिक के मेनियाबा जाम्बिया के न्कान्टवे, माम्बा तथा नाइजीरिया के इन्गू में भी कोयला खनन होता है।एशिया के अन्य देशों में पाकिस्तान के क्वेटा एवं कालाबाग, ईरान के करमनशाह, जापान के उत्तरी क्यूशू (शिकुगो), होक्केडो (इशिकारी) तथा होंशू (जोबान व उबे), दक्षिणी कोरिया के चुशु, इण्डोनेशिया में सुमात्रा के ओम्बिलिन, कालिमंतान (बोर्नियो) में सर्माग्दा, फिलीपींस के सेबूद्वीप, थाइलैण्ड के क्रा प्रायद्वीप में क्रबी तथा मलाया प्रायद्वीप के टू अरांग में भी कोयला खनन होता है।

9.9 प्राकृतिक गैस (Natural Gas)

वर्तमान समय में प्राकृतिक गैस का उत्पादन तीव्र गति से बढ़ रहा है क्योंकि गैस पूर्णतया ज्वलनशील ईंधन है। कोयला तथा पेट्रोलियम की तुलना में गैस का उत्पादन, उपयोग एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन कार्य बहुत आसान है। गैस आसानी से लगातार उष्मा प्रदान करती है और सरलता से बिना कठिनाई के जलती है।

सारिणी–9.5: विश्व के प्रमुख देशों में प्राकृतिक गैस का भण्डार 2016

देश	अरब घन मीटर	विश्व का प्रतिशत
1. रूस	47800	26.0
2. ईरान	33500	18.2
3. कतर	24300	13.0
4 . संयुक्त राज्य अमेरिका	8714	10.0
5. सऊदी अरब	8602	5.0
6. तुर्कमेनिस्तान	7504	4.0
7. संयुक्त अरब अमीरात	6091	3.1
8. वेनेजुएला	5701	2.1
9. नाइजीरिया	5284	2.0
10. अल्जीरिया	5194	2.0

करती है और सरलता से बिना कठिनाई के जलती है। प्राकृतिक गैस का निर्माण पैराफिन युक्त कार्बनों के मिश्रण से होता है। विश्व में प्राकृतिक गैस का अधिकांश भाग रूस, ईरान, संयुक्त राज्य

अमेरिका, अल्जीरिया, सऊदी अरब, कतर, तुर्कमेनिस्तान, नाइजीरिया, वेनेजुएला एवं कनाडा में संचित है। ग्रेट ब्रिटेन, मैक्सिको, इण्डोनेशिया जर्मनी, अर्जेन्टाइना, इटली, रोमानिया, पोलैण्ड और फ्रांस आदि देशों में भी प्रचुर भण्डार हैं।

विश्व में उत्पादन एवं वितरण

वर्तमान समय में 50 से अधिक देशों में प्राकृतिक गैस का उत्पादन किया जाने लगा है। उत्पादन की दृष्टि से रूस विश्व का वृहत् उत्पादक है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, नीदरलैण्ड्स, अल्जीरिया, ग्रेट ब्रिटेन, इण्डोनेशिया एवं नार्व आदि अन्य प्रमुख उत्पादक देश है।

संयुक्त राज्य अमेरिका–

अमेरिका विश्व के कुल उत्पादन का 20.24 प्रतिशत उत्पादित कर गैस के उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान रखता है। संयुक्त राज्य में स्थित प्राकृतिक गैस का 90 प्रतिशत संचित भण्डार टैक्सास, लुइजियाना, कसांस, न्यू मैक्सिको, कैलिफोर्निया आदि प्रांतों में है।टैक्सास की पैन हैण्डल फील्ड (Texas Pan Handle Field) तथा लुइजियाना की सीमा पर न्यू कार्थेज फील्ड टेक्सास के प्रमुख गैस उत्पादक क्षेत्र है। लुइजियाना में मोनरो सांस के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में हयुगाटन प्रसिद्ध प्राकृतिक गैस उत्पादक क्षेत्र है। कैलिफोर्निया में लॉस एंजिल्स बेसिन तथा सान ज्वैकिन घाटी में प्राकृतिक गैस मिलती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 5.6 लाख किमी. लम्बी पाइप लाइनें बनी हैं जिनसे प्राकृतिक गैस की आपूर्ति होती है। कैलिफोर्निया से देश के दक्षिणी–पश्चिमी भाग तथा कस्स एवं ओक्लाहोमा के पश्चिमी भागों को इन पाइप लाइनों द्वारा गैस पहुंचायी जाती है।कुल उत्पादन का 69 प्रतिशत भाग टेक्सास एवं लुइजियाना प्रांतों से प्राप्त होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 10644 किमी. लम्बी गैस पाइप लाइनें बिछी हुई हैं।

रूस

रूस विश्व की कुल प्राकृतिक गैस उत्पादन का 12.51 प्रतिशत उत्पादन कर विश्व का दूसरा वृहत्तम उत्पादक देश है। रूस प्राकृतिक गैस का अधिकांश उत्पादन वोल्गा, मारिया के पूर्वी एवं पश्चिमी भाग में, मध्य एशियाई क्षेत्र में एवं बुखारा, खीवा बेसिन आदि प्रदेशों से होता है। रूस में गैस के वितरण के लिए पाइप लाइनों का जाल बिछा हुआ है। साइबेरिया के यामबर्ग (Yamburg), उरेनगोई एवं मेडवेझी (Medvezhye) प्रमुख गैस क्षेत्र हैं। मेरिया का नगोई विश्व का दूसरा बड़ा प्राकृतिक गैस का भण्डार है।

रूस से अलग हुए देशों में भी प्राकृतिक गैस का उत्पादन होता है। इनमें उज्बेकिस्तान में गाजली क्षेत्र में, यूक्रेन में खारकोव के दक्षिण में स्थित शैबेलिंक क्षेत्र में काकेशस पर्वत के उत्तर में स्टाम्रोपोल में प्राकृतिक गैस मिलती हैं।

कनाड़ा–

कनाड़ा विश्व में उत्पादित प्राकृतिक गैस का लगभग 3.56 प्रतिशत गैस का में उत्पादन करता है लेकिन कनाड़ा में उत्पादित प्राकृतिक गैस का 75 प्रतिशत भाग शुष्क गैस का है। दक्षिणी अल्बर्टा, ब्रिटिश

सारिणी–9.6: विश्व के प्रमुख देशों में प्राकृतिक गैस का उत्पादन, 2017

देश	उत्पादन (BCM)

1. संयुक्त राज्य अमेरिका	762
2. रूस	471
3 चीन	238
4. कनाडा	134
5. जापान	129
6. नार्वे	128
7. अल्जीरिया	95
8. नीदरलैण्ड	44
9. जर्मनी	94
10. ब्रिटेन (यूके)	79
11. इटली	75
12. इण्डोनेशिया	71
13. मलेशिया	73
14. सऊदी अरब	98
15. मैक्सिको	74
16. अर्जेण्टाइना	42
17. ऑस्ट्रेलिया	99
18. संयुक्त राज्य अमीरात	71
19. ईरान	20
विश्व (अरब घन मी.)	3763

BCM= Billion Cubic Meter

source : Global Energy Statistics Year book, ENERDATA, 2018

कोलम्बिया प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। कोलम्बिया प्रांत को पीस नदी की घाटी में वृहत संचित भंडार हैं।

यूरोप– यूरोप महाद्वीप में विश्व की कुल प्राकृतिक गैस के उत्पादन का 21 प्रतिशत गैस का उत्पादन होता है। रोमानिया का ट्रांसिल्वानिया बेसिन, फ्रांस का पिरेनीज पर्वतीय क्षेत्र, नीदरलैण्ड का ग्रोइनिंग क्षेत्र, ब्रिटेन में उत्तरी सागर के तटवर्ती भाग में स्थित क्षेत्र आदि प्रमुख उत्पादक देश हैं।

लैटिन अमेरिका–दक्षिणी अमेरिका में मैक्सिको के पोजारिका, सिडडाड, पेमेक्स, रेनोज, ताबास्को क्षेत्र, वेनेजुएला के माराकाइबो पेट्रोल उत्पादक क्षेत्र में, अर्जेन्टाइना के पश्चिमी भाग में एवं चीली,

कोलम्बिया, ब्राजील, ट्रिनिडाड टुबेगो आदि प्रमुख उत्पादक देश हैं।वेनेजुऐला में अनाको बरांकास, गूकल प्लेस, प्लेटफोर्मा, डेल्टाना, मार्सिकल सुक्रे एवं ब्लैक्विला– टोर्चूगा प्रमुख प्राकृतिक गैस क्षेत्र हैं।

एशिया– एशिया महाद्वीप विश्व की कुल प्राकृतिक गैस उत्पादन का 27 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। पाकिस्तान का सुई क्षेत्र जो बलूचिस्तान में स्थित है। भारत में असम के पेट्रोलियम उत्पादन क्षेत्र में एवं राजस्थान के मरुस्थलीय भाग में भी प्राकृतिक गैस का उत्पादन होता है। ईरान, इण्डोनेशिया, कुवैत, अफगानिस्तान, इराक, ब्रुनेई, जापान आदि अन्य उत्पादक देश हैं।

ईरान में दक्षिण पार्स सबसे बड़ा गैस क्षेत्र है। उत्तरी पार्स, किश एवं कंगन अन्य प्रमुख गैस क्षेत्र हैं।

कतर में उत्तरी अपतटीय क्षेत्र में प्राकृतिक गैस मिलती है। यहाँ वर्जन गैस प्रोजेक्ट प्रारंभ किया है। **तुर्कमेनिस्तान** में आमू दरिया बेसिन में एवं ड्यूलेटाबाद क्षेत्र कैस्पियन बेसिन में मर्गेब प्रमख गैस क्षेत्र हैं। **सऊदी अरब** में करन गैस क्षेत्र, अरबियाह एवं हस्वाह प्रमुख गैस क्षेत्र हैं।

संयुक्त अरब अमीरात में आबू धाबी, शारजाह एवं दुबई प्रमुख प्राकृतिक गैस क्षेत्र हैं।

अफ्रीका महाद्वीप में **नाइजीरिया** एवं **अल्जीरिया** में प्राकृतिक गैस पायी जाती है। **नाइजीरिया** में अमेनाम–क्योनो, बोंगा एवं अप्को प्रमुख प्राकृतिक गैस क्षेत्र हैं जो पेट्रोलियम क्षेत्रों के साथ हैं। ये सभी नाइजर डेल्टा में स्थित हैं। ग्बेरान, उबी (Gbaran-Ubie) यहाँ का नवीनतम प्राकृतिक गैस एवं तेल प्रोजेक्ट है। अल्जीरिया का सबसे बड़ा गैस क्षेत्र **हसी आर 'मेल** (Hassi R'mel) है। रोउर्डे, अलरार एवं हमरा अन्य प्रमुख प्राकृतिक गैस क्षेत्र

9.10 बॉक्साइट (Bauxite)

बॉक्साइट खनिज एक मृतिकामय खनिज है, जिसमें एल्यूमिना की मात्रा अधिकतम पायी जाती है। न्यूनाधिक मात्रा में इसमें सिलिका भी पाया जाता है। अतः बॉक्साइट एल्यूमिनियम उद्योग का आधार है। यह उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय भाग में अधिकतम पाया जाता है। एल्यूमिनियम धातु अधिकतर धरातल के पास ही पाए जाते हैं। विश्व में 2018 तक बाक्साइट के कुल भण्डार अफ्रीका (32.1), ओसेनिया (23.1), दक्षिणी अमेरिका एवं केरिबियन (21.1), एशिया (18.1) तथा अन्य (6.1) में 55 से 75 बिलियन टन आकलित किया गया है।

बॉक्साइट उत्पादन का विश्व में वितरण प्रतिरूप

1990 से पूर्व बॉक्साइट का उत्पादन विश्व में अधिक तीव्र गति से नहीं होता था, लेकिन 1990 के बाद विमान उद्योग में एवं अन्य उद्योगों में एल्यूमिनियम की बढ़ती माँग के कारण बॉक्साइट के उत्पादन में अत्यधिक तीव्रता आयी है। वर्तमान में विश्व में बॉक्साइट का कुल उत्पादन 16.5 करोड़ टन होता है, जिसका 1/3 भाग अकेला आस्ट्रेलिया उत्पादित करता है।

आस्ट्रेलिया–

विश्व में कुल बॉक्साइट उत्पादन का 35.1 प्रतिशत भाग उत्पादित करके आस्ट्रेलिया प्रथम वृहत्तम उत्पादक देश है। आस्ट्रेलिया में बॉक्साइट के उत्पादन एवं संचित भण्डार की दृष्टि से क्वींसलैण्ड प्रान्त के केपयार्क प्रदेश में स्थित वाइपा क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व में महत्त्वपूर्ण हैं। वाइपा क्षेत्र के समीप स्थित आर्नहेम लैण्ड क्षेत्र के मध्य स्थित गीव थान क्षेत्र भी बॉक्साइट उत्पादन की दृष्टि से प्रमुख है।

चित्रः 9.9 विश्व से बॉक्साइट उत्पादक क्षेत्र

देश	संचित भण्डार	उत्पादन हजार मीट्रिक टप में	
		2016	2017
1 आस्ट्रलिया	6000	82.0	83.0
2. ब्राजील	2600	34.4	36.0
3. चीन	1000	65.0	68.0
4. गिनी	7400	31.5	54.0
5. भारत	830	23.9	27.0
6. जमैका	2000	8.54	8.1
7.रूस	500	4.43	5.6

8. वियतनाम	3700	1.2	2.0
9.कजाखस्तान	160	5.0	5.0
10. यूनान	250	1.8	1.8
11. गुयाना	850	1.7	1.5
12 इण्डोनेशिया	1000	1.4	3.6
13.मलेशिया	110	1.0	1.0
14.सउदी	210	3.84	3.9
15. अन्य देश	3200	3.1	2.7
विश्व	30,000	275	300

मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका–दक्षिण अमेरिका महाद्वीप का ब्राजील 10.9 प्रतिशत उत्पादन के साथ बॉक्साइट उत्पादन में विश्व में इसका वृहत्तम उत्पादक देश है। ब्राजील के आन्तरिक भाग में स्थित मैदानी प्रदेश में ब्राजील का अधिकांश बॉक्साइट उत्पादित किया जाता है ।

सुरीनाम विश्व के कुल बॉक्साइट उत्पादन का 2.7 प्रतिशत उत्पादन करता है। इसके प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक क्षेत्र सूरीनाम एवं कोहिका नदियों के प्रवाहित मार्ग में पाया जाता है। इनके अलावा कैरीबियन सागर के तटवर्ती भाग में भी बॉक्साइट की कुछ मात्रा पायी जाती है। जमैका विश्व के कुल उत्पादन का 8.5 प्रतिशत बॉक्साइट का उत्पादन करके विश्व में छठा वृहत्तम उत्पादक बन गया है। जमैका के बॉक्साइट उत्पादक क्षेत्र तटवर्ती भाग एवं आन्तरिक भाग में स्थित हैं।

गुयाना का उत्पादन विश्व का 0.57 प्रतिशत है। इसके उत्पादक प्रदेश समुद्र तटीय भाग में एवं मध्य आन्तारिक भाग में देमेरारा एवं बरविश नदियों की घाटियों में परतों के रूप में पाया जाता है। गुयाना अपने उत्पादित बॉक्साइट के अधिकतम भाग को निर्यात कर देता है। पूर्व सोवियत संघ के यूराल प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित स्वेर्डलोवस्क से ओर्स्क तक का प्रदेश मध्य यूराल में सेरोव, कर्मेस्क क्षेत्र, मास्को, तिखविन, यूक्रेन आदि प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक प्रदेश हैं।

अफ्रीका महाद्वीप में स्थित गिनी विश्व में चौथा बृहत्तम उत्पादक देश है। गिनी में बॉक्साइट उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र कोनाकी बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश एवं कास्या क्षेत्र में होता है। गिनी का लगभग सम्पूर्ण बॉक्साइट का उत्पादन इसी क्षेत्र में होता है।

घाना भी विश्व का प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक देश है। घाना के आन्तरिक भाग में स्थित पट्टिनुमा पेटी में घाना का सम्पूर्ण बॉक्साइट उत्पादित होता है। आन्तरिक भाग में स्थित येनाहिन क्षेत्र, कुमासी के दक्षिण–पश्चिम भाग में स्थित अफोह क्षेत्र प्रमुख बॉक्साइट उत्पादक प्रदेश हैं। कैमरून का डौनाला एवं सियरालिओ क्षेत्र तथा जायरे का आन्तरिक भाग भी मुख्य उत्पादक प्रदेश है।

भारत, चीन, मलेशिया आदि भी बॉक्साइट के छोटे उत्पादक देश हैं। भारत में बॉक्साइट के संचित भण्डार 830. हजार टन हैं। प्रमुख उत्पादक क्षेत्र मध्य प्रदेश में सरगुजा, शहडोल, जबलपुर क्षेत्र, झारखण्ड–ओडिशा, गुजरात में जामनगर, कच्छ, सूरत क्षेत्र, कर्नाटक में बेलगाँव एवं बाबाबदून की पहाड़ी क्षेत्र प्रमुख एल्यूमिनियम उत्पादक क्षेत्र हैं।

इण्डोनेशिया के सुमात्रा की बहिद्वीप में स्थित विन्टम द्वीप में देश का सम्पूर्ण बॉक्साइट संचित है। चीन में हुनान, ग्वेचो एवं जेचवान प्रदेश उत्पादन एवं संचित भण्डार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

विश्व के अन्य बॉक्साइट उत्पादक देश– अन्य बॉक्साइट उत्पादक देशों में रूस का यूराल पर्वत पूर्वी भाग में उर्स्क तक बॉक्साइट के भण्डार मिलते हैं। यहाँ सरोव प्रमुख क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त साइबेरिया का कोला प्रायद्वीप, फ्रांस का टूलोन के उत्तर में स्थित ब्रिग्नोल्स क्षेत्र, यूगोस्लाविया में एड्रियाटिक सागर के डालमेशिनय तट का इस्त्रीयन अन्तरीप, हंगरी के उत्तर–पश्चिम में बरटैस पर्वत तथा बैकौनी फारेस्ट, यूनान में कोरिथ की खाड़ी के उत्तर में माउण्ट पेरानासस आदि क्षेत्रों में बॉक्साइट का उत्पादन होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार– विश्व के विकासशील देशों में ही बॉक्साइट के अधिकांश जमाव पाए जाते हैं, लेकिन तकनीकी एवं प्राविधिक उन्नति के अभाव में ये देश अपने उत्पादित बॉक्साइट का अधिकांश भाग निर्यात कर देते हैं।जमैका, सुरीनाम, गुयाना, गिनी, घाना आदि प्रमुख बॉक्साइट निर्यातक देश हैं, जबकि संयुक्त राज्य, जापान, जर्मनी, रूस, इटली, ब्रिटेन आदि प्रमुख आयातक देश हैं।

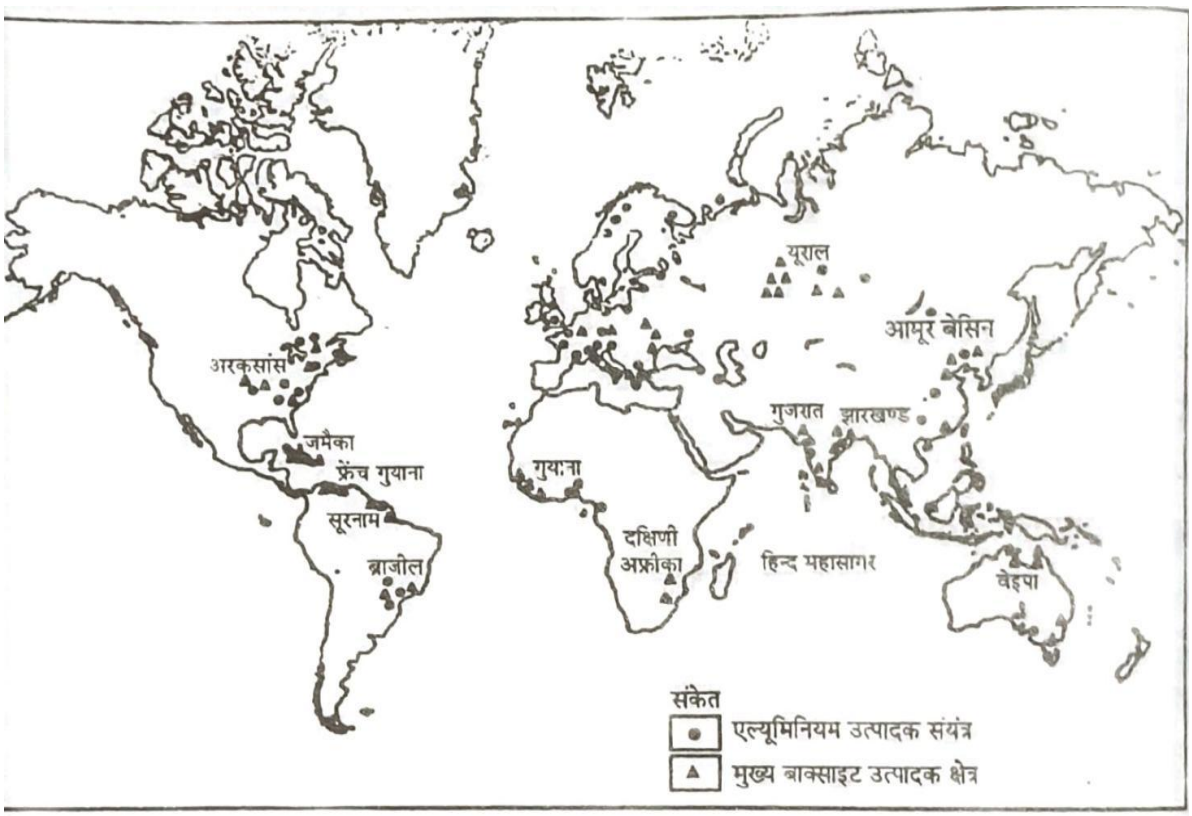

चित्र-7.8 : विश्व के बॉक्साइट उत्पादक क्षेत्र

अधात्विक खनिज–ये खनिज पदार्थ जिनमें धातु का अंश प्रायः नहीं पाया जाता है, अधात्विक खनिज कहलाते हैं। इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं–

देश	उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)	
	2016	2017
1. संयुक्त राज्य अमेरिका	841	740
2. आस्ट्रेलिया	1630	1490
3. बहरीन	931	960
4. ब्राजील	793	800
5. कनाडा	3210	3210
6. चीन	31900	32600
8. आइलैण्ड	855	870
7. भारत	2720	3200
8. मलेशिया	620	760
9. नार्वे	1220	1220
10. रूस	3560	3606
11. संयुक्त अरब अमीरात	8100	2600
12 अन्य देश		7800
विश्व	41400	

Source : U.S. Geologiccal Survey, Mineral Commodity Summary, 2018

9.11 पेट्रोलियम (Petroleum)

वर्तमान समय में पेट्रोल का परिवहन की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण स्थान विश्व के जिन देशों में पेट्रोलियम का संचित भण्डार अधिकतम पाया जाता उन देशों का वर्तमान समय में प्रमुख स्थान है। इसलिए अन्य विकसित देश राजनीतिक आर्थिक दृष्टि से इन देशों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं। वर्तमान समय में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारी अधिकतर दैनिक क्रियाएँ, पेट्रोलियम के प्रमुख उत्पादों एवं सह उत्पादों से सम्बन्धित है। इनके अलावा प्रकाश करने में, उद्योगों की मशीनों आदि में स्नेहक के रूप में, कृत्रिम रबर के निर्माण में, प्लास्टिक, नायलोन, खाद्य सामग्रियों आदि के निर्माण में भी पेट्रोलियम का उपयोग किया जाता है। भू– गर्भ से प्राप्त पेट्रोल

कुओं द्वारा बाहर निकाला जाता है। कुओं से निकलने वाला तेल गाढ़ा होता है। पेट्रोल का निर्माण पृथ्वी के आन्तरिक भाग में हाइड्रो कार्बनों के तत्त्वों के विभिन्न अनुपातों में मिश्रित होने से होता है। भू–गर्भ से प्राप्त पेट्रोल में अवांछित पदार्थो की मात्रा पायी जाती है, जिनको विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा शुद्ध रूप में परिवर्तित किया जाता है।'' कुओं से निकलने वाले तेल में अनेक प्रकार की अशुद्धियों के सम्मिलित रहने के इसे अशुद्ध तेल कहा जाता है। अशुद्ध तेल में विभिन्न अवांछित तत्त्वों की मात्रा के इसे हल्का तेल (जिसमें हाइड्रोकार्बन की मात्रा सर्वाधिक होती है) एवं भारी तेल (की मात्रा अधिकतम पायी जाती है) दो भागों में विभाजित किया जाता है।वर्तमान समय में कोयला की अपेक्षा पैट्रोलियम का ऊर्जा संसाधन के रूप में अधिक उपयोग किया जाता है क्योंकि पेट्रोलियम को कोयले की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक आसानी एवं सावधानी से संचय एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया जा सकता है पेट्रोलियम से कोयले की अपेक्षा अधिकतम ऊष्मा एवं ज्वलनशीलता प्राप्त होती है। प्राचीनकाल में जिन कार्यों के लिए कोयले का उपयोग होता था वहाँ आजकल पेट्रोल अधिकतम उपयोग होने लगा है।

पेट्रोलियम की उत्पत्ति–

पेट्रोलियम (petroleum) शब्द लैटिन भाषा के दो Petra + Oeumसे मिलकर बना है। जिसका अर्थ है Petra Rock oleum Oil(तेल) पेट्रोलियम का लगभग शत–प्रतिशत उत्पादन बलुआ एवं चूना पत्थर जैसी अवसादी चट्टानों के बीच में पाए जाने वाले अनुच्छेदों, रन्ध्रों एवं जोड़ों में संचित भाग से होता है। पेट्रोलियम की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त हैं,लेकिन कार्बनिक सिद्धान्त ही वर्तमान समय में सर्वमान्य माना जाता है। इसके अनुसार कालान्तर में वनस्पतियाँ पृथ्वी के नीचे दब गईं। ऑक्सीजन की कमी के कारण इनके सड़ने–गलने रूप परिवर्तित होने के कारण पेट्रोलियम की उत्पत्ति हुई है।

वर्तमान समय में भी परतदार चट्टानों के नीचे दबे जीव एवं वनस्पति धीरे–धीरे पेट्रोलियम के उत्पादन की ओर परिवर्तित हो रही है एवं यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। व्यापारिक दृष्टि से हाइड्रोमीटर द्वारा तेल का गेज मापा जाता है, जिसकी इकाई बाउम मापनी (Baume Scale) कहलाती है। कुओं से अशोधित तेल (Crud Oil) निकाला जाता है, जिसे शोधित करते हैं। शोधित तेल को निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभाजित करते है–

(i) गैसोलिन या पैट्रोल (Gasoline or Petrol) यह सबसे अधिक शुद्ध व हल्का होता है जिसका प्रयोग वायुयान तथा मोटर कारों में होता है।

(ii) डीजल (Diesel)– यह मध्यम भार वाला होता है जिसे सामान्यतः बस, ट्रक, इंजन व जलयान आदि में काम लेते हैं।

(iii) कैरोसिन (Kerosine) – इसे मिट्टी का तेल भी कहते हैं, जो घरेलू कार्यों में उपयोग में लिया जाता है।पेट्रोलियम का संचित भण्डार संयुक्त राष्ट्र संघ के नवीन आकलन के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में लगभग 7460 करोड़ मीट्रिक टन पेट्रोलियम के संचित भण्डार हैं जिसका लगभग 50प्रतिशत मध्य पूर्व में, 12प्रतिशत उत्तरी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका तथा यूरोपीय देश में, 10 प्रतिशत उत्तरी अमेरिका

में, 18 प्रतिशत रूस में, 10–8प्रतिशत दक्षिणी–पूर्वी तथा पूर्वी एशिया में संचित है।

पेट्रोलियम संचित राशि, 2017

देश	संचित भण्डार (मिलियन बैरल में)
1.वेनेजुएला	300878
2. सउदी अरब	266458
3. कनाडा	169709
4.ईरान	158400
5.इराक	142503
6. कुवैत	101503
7. संयुक्त अरब अमीरात	97800
8. रूस	80000
9. लीबिया	48363
10. संयुक्त राज्य अमेरिका	39230
11. नाइजीरिया	37062
12. कजाखस्तान	30000
13. चीन	25620
14. कतर	25244
15. ब्राजील	12999
16. इक्वेडोर	8273
17. मैक्सिको	7640
18. अजरबेजान	7000

स्पष्ट है कि विश्व का दो–तिहाई पेट्रोलियम एशिया महाद्वीप में जमा है। दक्षिणी–पश्चिमी एशिया में सऊदी अरब में विश्व का एक–चौथाई जमाव है। इसके अतिरिक्त ईरान, इराक, कुवैत तथा संयुक्त अरब अमीरात में भी पेट्रोलियम के विशाल भण्डार हैं। यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे तथा कुछ पूर्वी देशों में पेट्रोलियम के भण्डार हैं।

विश्व में पेट्रोलियम का उत्पादन(Production of Petroleum in World)

पेट्रोलियम की प्राप्ति सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के पेन्सिलवानिया क्षेत्र की अलधनी नदी

बेसिन से सन् 1848 में सेम्यूल कीर को हुई। इसे सभ्युल ने सेनका तेल का नाम दिया इस समय व्हेलमछली के तेल के घरेलू प्रकाश के काम में लिया जाता था। लेकिन अब इसका प्रयोग होने लगा जिससे इसकी माँग बढ़ी। फलस्वरूप सेनेका ऑयल कम्पनी के कर्नल एडविन एल. ड्रेक ने पेन्सिलवानिय 'टिट्सविले' (Titusville) में तेल उत्पादन के लिए कुआ खोदने का कार्य किया तथा अगस्त, 1859 में ड्रेक ने एक 21.2 मीटर गहरे कुए से पेट्रोलियम प्राप्त किया। इसके उपरान्त शीघ्र ही इसका व्यापारिक स्तर पर दोहन प्रारम्भ हो गया। टिट्सविले में ड्रेक मेमोरियल पार्क भी स्थापित किया गया है।

विश्व में पेट्रोलियम संचित भण्डार

देश	संचित भण्डार(मिलियन बैरल में)
1. संयुक्त राज्य अमेरिका	580
2. सउदी अरब	560
3. रूस	547
4. कनाडा	240
5. ईरान	216
6. चीन	194
7. संयुक्त अरब अमीरात	176
8. कुवैत	152
9. ब्राजील	140
10. वेनेजुला	119
11. मैक्सिको	108
12. ब्रिटेन	47
13. इराक	195
14. मिश्र	31
15. अल्जीरिया	64
16. इण्डोनेशिया	40
17. नाइजीरिया	98

18. मलेशिया	33
19. भारत	42
20. अर्जेण्टाइना	28
विश्व	4364

सन् 1880 तक रूस, जर्मनी, पोलैण्ड, कनाडा, जापान तथा भारत (1867) में भी पेट्रोलियम का दोहन प्रारम्भ हुआ। सन् 1930 तक विश्व में पेट्रोलियम का उत्पादन लगभग 130 करोड़ बैरल हुआ जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस का भाग क्रमशः 63 प्रतिशत 10 प्रतिशत था। इसके उपरान्त मध्य पूर्व में पेट्रोलियम के उत्पादन में तेजी आयी जिससे एवं यूरोपीय वर्चस्व कम हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त (1948 से 1980 के मध्य पेट्रोलियम उत्पादन में सात गुना वृद्धि हुई है। इस दौरान सोवियत संघ वृहतम पेट्रोलियम राष्ट्र बना। लेकिन 1990 के दशक में विघटन के उपरान्त पुनः पिछड़ गया। कच्चे तेल का उत्पादन सन् 2017 में स्थिर रहा है। 30 नवम्बर, 2016 को ओपेक देशों के मध्य के सउदी अरब, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात एवं अल्जीरिया में कटौती की गयी है। वर्तमान में पेट्रोलियम उत्पादन करने वाले राष्ट्रों का विवरण निम्न है

1. दक्षिणी–पश्चिमी एशिया

विश्व के कुल संचित भण्डार का 67 प्रतिशत तेल दक्षिण–पश्चिम एशिया में जमा है। यहाँ अनुकूल भगर्भिक परिस्थितियों, सस्ते श्रमिक, परिवहन के लिए पाइप लाइनों का जाल फैला हुआ है, विदेशों से प्राप्त अधिकतम पूँजी, एक या दो कम्पनियों का उत्पादन में एकाधिकार आदि दशाएँ पायी जाती हैं। इराक, ईरान, कुवैत, बहरीन, सऊदी अरब, आबुधावी, अरब अमीरात, ओमान, कतर आदि देश यहाँ के प्रमुख उत्पादक देश हैं। दक्षिणी–पश्चिमी के सभी देशों ने मिलकर पेट्रोलियम निर्यातक संघ, ओपेक (OPEC) का निर्माण किया , पेट्रोलियम के निर्यात एवं उत्पादन को नियन्त्रित करता है। पश्चिमी एशिया के पेट्रोलियम के उत्पादक देशों के लगभग सभी उत्पादन क्षेत्र फारस की खाड़ी के चारों ओर स्थित भू एवं जलमग्न तटीय क्षेत्र में स्थित हैं। केवल टर्की, इजराइल एवं उत्तरी इराक के तेल उत्पादक क्षेत्र ही फारस की खाड़ी क्षेत्र से अलग स्थित है।

(i) सउदी अरब –

यह विश्व का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश रहा है परन्तु 2017 में उत्पादन में कटौती करने से यह द्वितीय स्थान पर आ गया है। यहाँ वेनेजुएला के बाद सबसे अधिक तेल के भण्डार हैं। सउदी अरब में प्रथम तेल कूप दरहान में खोदा गया। इसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्र निम्नांकित हैं– (1) दम्मान, (2) दरहान, (3) घावर, (4) कातिफ, (5) प्रज्ञाकिक, तथा (6) आइनेदार। इनसे तेल पाइपलाइन द्वारा फारस की खाड़ी तट पर स्थित रासतनुरा शोधनशाला को पहुँचाया जाता है। यहाँ से शोधित तेल पश्चिमी में भूमध्य सागर तट बन्दरगाह सिदोन को भेजा जाता है जहाँ से इसे निर्यात किया जाता है।

(ii) ईरान

ईरान विश्व का पाँचवाँ तथा एशिया का दूसरा बड़ा तेल उत्पादक देश है। विश्व के कुल भण्डार का 8 प्रतिशत यहाँ जमा है। ईरान में सर्वप्रथम सन् 1908 में मस्जिदे सुलेमान क्षेत्र में पेट्रोलियम का उत्पादन हुआ। वर्तमान में यहाँ निम्नलिखित क्षेत्रों में पेट्रोलियम का उत्पादन हो रहा है– (i) मस्जिदे सुलेमान,(ii) हफ्त केल,(iii) नफ्त सफेद, (iv) कामनशाह, (v) गचसरन, (vi) आगाजारी,

तथा (vii) लाली। यहाँ अबादान में पेट्रोलियम शोधन का कार्य होता है। यह एक समुद्रीपत्तन भी है, जहाँ से पेट्रोलियम का निर्यात होता है ।

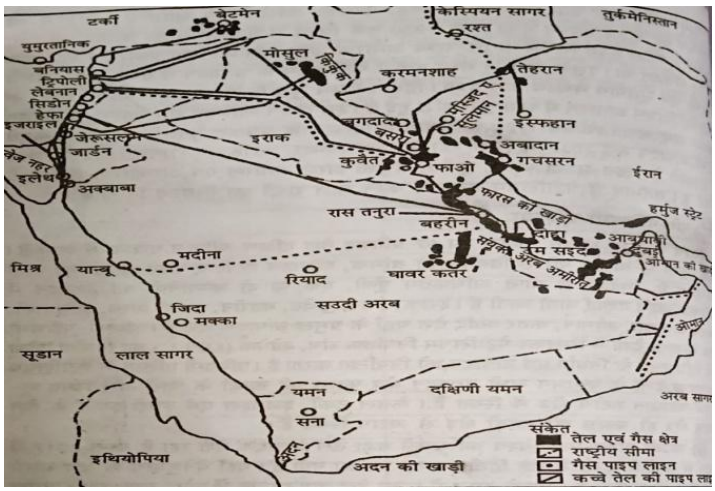

(iii) कुवैत– कुवैत एक छोटा–सा मरु परिस्थितियों वाला देश है, जो फारस की खाडी के शीर्ष पर स्थित है पेट्रोलियम संचय भण्डार की दृष्टि से छठवाँ तथा उत्पादन की दृष्टि से आठवां स्थान है। बुरमान (Burghan) पहाड़ी क्षेत्र सबसे बड़ा तेल क्षेत्र है, जहाँ सर्वप्रथम सन् 1946 में का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। कुवैत से तेल का निर्यात मिना बन्दरगाह से किया जाता है।

(iv) इराक–

यह मध्य पूर्व का तेरहवाँ बड़ा तेल उत्पादक देश है, जहाँ विश्व का लगभग चार प्रतिशत जमाव है। इराक का अधिकांश तेल उत्तरी भाग में बागा गागुर में स्थित किरकुक व मोसुल तथा दक्षिणी भाग में स्थित जुबेर क्षेत्र से प्राप्त होता है। किरकुक के पास नफ्तखान

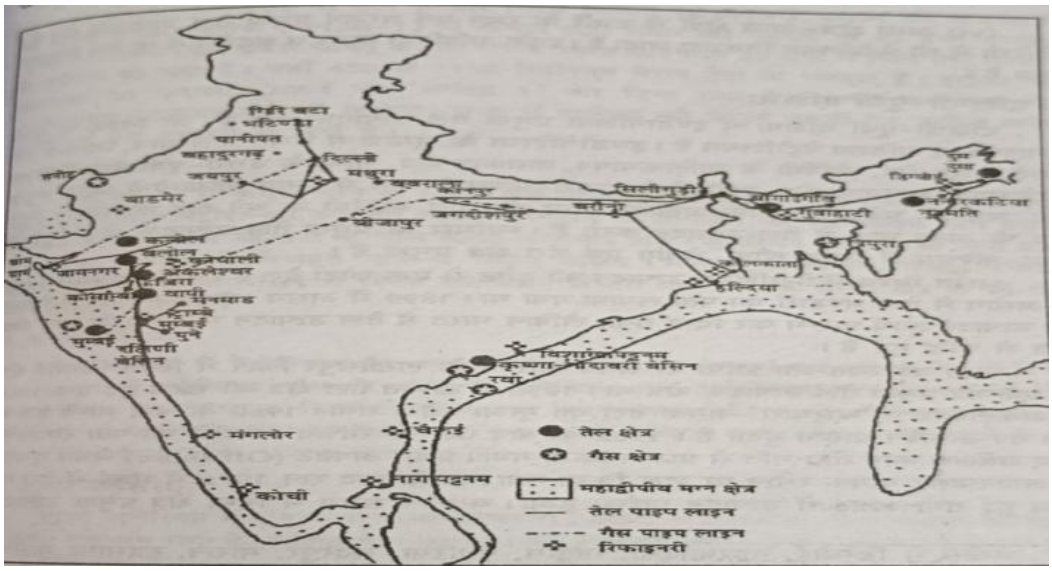

चित्र– 9.2: भारत के प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र

व बुटमाह तथा जुबेर के समीप स्माइला क्षेत्रों में भी पेट्रोलियम का दोहन होता है। निर्यात के लिए लिबिया के त्रिपोली तथा सीरिया के बनियास सागरीय पत्तनों को भेजा जाता है। दक्षिण में जुबेर से तेल फारस की खाड़ी स्थित फाओ (Fao) बन्दरगाह को भेजते हैं। इराक में सन् 1927 से तेल निकाला जा रहा है।

(v) संयुक्त अरब अमीरात –

यह मध्य पूर्व का तीसरा प्रमुख तेल उत्पादक देश है। पेट्रोलियम भण्डार की दृष्टि से इसका विश्व में सातवॉ स्थान है। आबूधाबी, दुबई तथा शारजाह इसके प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र हैं। संयुक्त अरब अमीरात की अर्थव्यवस्था मूलतः पेट्रोलियम निर्यात पर निर्भर रहती है।

(vi) अन्य क्षेत्र अन्य क्षेत्रों में टर्की के रमन एवं वरजन प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र सीरिया में भी पेट्रोलियम निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त कतर व बहरीन में भी तेल निकाला जाता है।

2. दक्षिणी–पूर्वी एशिया

दक्षिणी–पूर्वी एशिया में इण्डोनेशिया प्रमुख तेल उत्पादक देश हैं, जो विश्व के कुल जमाव का 2 प्रतिशत पेट्रोलियम है। इण्डोनेशिया के सुमात्रा में स्थित पालेम्बाग, जाम्बल उत्तरी मैदान क्षेत्र, बोर्नियों के बालियापन, ताराका क्षेत्र के उत्तरी–पूर्वी काबेनगान, खुराबापा क्षेत्र, न्यूगिनी के उत्तरी–पश्चिमी भाग में स्थित कियामोनो आदि प्रमुख तेल उत्पादक प्रदेश हैं। इनके अलावा सेरामू द्वीप एवं बोर्नियो के बुने क्षेत्र का सेरिया मिरी क्षेत्र भी अल्प मात्रा में तेल उत्पादन करते हैं। म्यांमार के प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र यंगून दे उत्तर–पश्चिम में स्थित चौक, येनांग एवं डंग क्षेत्र प्रमुख हैं।

भारत विश्व में पेट्रोलियम उत्पादन की दृष्टि से एक छोटा देश है। यहाँ सर्वप्रथम में असम में तेल भण्डारों का पता लगाया गया था। 1899 में असम ऑयल कम्पनी ने पेट्रोल का उत्पादन कार्य प्रारम्भ कर दिया गया, लेकिन भारत में तेल उत्पादन में 1962 के बाद तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय आरम्भ के लखीमपुर जिले में स्थित डिग्बोई ही एकमात्र प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र था। 1958 में खंभात तेल क्षेत्र की खोज हुई तथा 1960 में अंकलेश्वर में 'वसुधारा' नामक तेल का कुआ खोदा गया। 1960 के बाद बाम्बे हाई में तेल का उत्पादन प्रारम्भ हुआ है। 1962 के बाद तेल के संचित भण्डारों का पता लगाने के लिए सर्वेक्षण कार्य तीव्र गति से प्रारम्भ किया गया। प्रथम अपतट (Off shore) वेधन गुजरात के आलियाबेट नामक स्थान पर शुरू किया गया। इसके बाद सन् 1975 में मुंबई में तेल की खोज हुई तथा 1976 में उत्पादन प्रारम्भ हुआ। वर्तमान समय में निम्न क्षेत्र प्रमुख उत्पादक हैं–

असम में डिग्बोई, नहरकटिया, माकुम, पथरिया, बदरपुर, मोरान, रुद्रसागर, गालेकी, हुगरीजन एवं लकवा प्रमुख क्षेत्र हैं। गुजरात में अंकलेश्वर, कलोल, नवगाँव, कोसाम्बा, कठना बरकोल, मेहसाना, सननंद, लूनोज, काम्बे एवं गांधार में वर्तमान समय में तेल उत्पादन हो रहा है। सौराष्ट्र के भावनगर से 45 किमी. दूर पश्चिम में अलियाबेट द्वीप में भी तेल का उत्पादन हो रहा है। पंजाब के होशियारपुर एवं ज्वालामुखी क्षेत्र में, उत्तर में हिमालय के दक्षिण में स्थित तराई क्षेत्र आदि प्रमुख हैं। महाराष्ट्र के अरबसागर के तटीय भाग पर स्थित बाम्बे हाई में मग्न तटीय भाग में तेल के विशाल भण्डारों का पता चला है। यहाँ सन् 1975 से उत्पादन हो रहा है। राजस्थान में सन् 1999 में पहली बार बाड़मेर जिले में गुढा के पास मग्गा की ढाणी के धोरों के नीचे 1910 मीटर की गहराई पर तेल भण्डार मिला इसका नाम 'सरस्वती आयल फील्ड' रखा गया। इसी क्रम में सन् 2002 में बाड़मेर के कोसलू व साढाझुण्ड में 1400 मीटर की गहराई पर तेल भण्डार मिला। फरवरी, 2003 में गुडामलानी के नगर

गाँव में 1241 मीटर की गहराई पर तेल भण्डार मिला लेकिन 18 जनवरी, 2004 को बाड़मेर के ही बायतू कवास ब्लाक (एन. बी–1) में केवल 900 मीटर की गहराई पर ही उच्च गुणवत्ता वाला तेल मिला। इस प्रकार बायतू कवास ब्लाक भारत के विगत 25 वर्षों में मिले तेल भण्डारों में शामिल हो गया है। यहाँ 450 से 1150 मिलियन बैरल तेल के भण्डार हैं। इसका नाम बदलकर 10 फरवरी, 2004 को 'मगंला 1' कर दिया गया है। अगले वर्ष तक यहाँ उत्पादन शुरू हो जायेगा। राज्य में हालैण्ड की केव एनर्जी लि. सहित अनेक तेल खोजने में लगी है।

3. पूर्वी एशिया

पूर्वी एशिया में केवल चीन ही प्रमुख तेल उत्पादक देश है, जो विश्व के कुल उत्पादन का 4. 6%पेट्रोल का उत्पादत करता है चीन के उत्पाद का अधिकतम् भाग में रूसी सीमान्त के पास स्थित कारामाई क्षेत्र (जुंगेरियन बेसिन) से प्राप्त होता है। इसके अलावा थोड़ा–बहुत मात्रा में सैदाम बेसिन (मानराई) सिक्यांग, शेंसी जेचवान प्रदेश हो नदी के बेसिक में स्थित लाग्यांऊ जेचांग एवं नदी के डेल्टा क्षेत्र से भी तेल का उत्पादन होता है।

4. मध्य एशिया

मध्य एशिया में पेट्रोलियम के भण्डार केस्पियन सागर के पूर्व एवं दक्षिण क्षेत्र में स्थित है। ये पूर्व में सोवियत संघ के भाग थे, लेकिन अब तुर्कमेनिस्तान (फरगना घाटी), कजाखस्तान, उज्बेकिस्तान, किरगिजस्तान तथा अजरबेजान में स्थित हैं। केस्पियन सागर के पूर्व में एम्बा एवं नेवितदाथ (कजाखस्तान) तथा मौगिक्लाक तथा दक्षिण पश्चिम में स्थित बाकू (अजरबेजान) के प्रसिद्ध तेल क्षेत्र हैं।

5. उत्तरी अमेरिका

उत्तरी अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका सन् 2017 में विश्व का तेल उत्पादन की दृष्टि से प्रथम देश बन गया है, बल्कि तेल उत्पादन का नियन्त्रणकर्ता भी है। इसके प्रमुख उत्पादन क्षेत्र निम्नांकित हैं–

(i) मध्य महाद्वीपीय प्रदेशइसमें प्रमुख तेल उत्पादक राज्य मध्य एवं पूर्वी टेक्सास, ओक्लाहोमा, कसांस, लुइजियाना का उत्तरी भाग आदि हैं। यहाँ पेट्रोलियम निर्यात के लिए पाइप लाइनों का जाल बिछा हुआ है।

(ii) मेक्सिको खाड़ी का तटीय प्रदेश खाड़ी के तटीय जलमग्न भाग में एवं टेक्सास एवं लुइजियाना राज्य का दक्षिणी भाग प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र हैं।

(iii) पश्चिमी प्रदेश–कैलिफोर्निया की सान ज्वेकिन घाटी, समुद्र तटीय भाग एवं लास एंजिल्स आदि क्षेत्र।

(iv) **मध्यवर्ती वृहत्त–** मैदान, रॉकी पर्वतीय प्रदेश में मोटांना, वायोमिंग, उत्तरी डकोटा एवं कटा राज्य प्रमुख उत्पादक हैं।

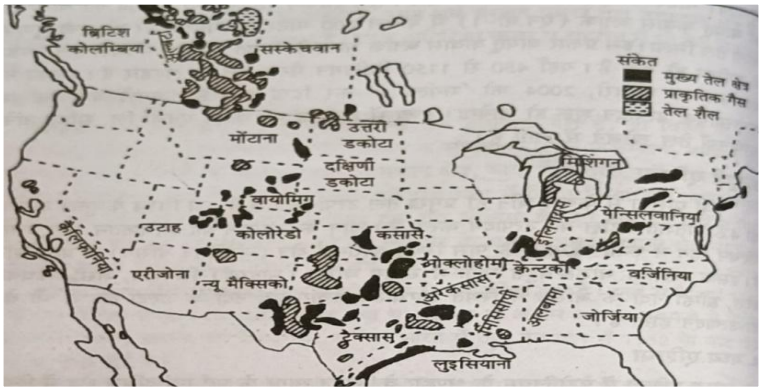

चित्र – 9.3: उत्तरी अमेरिका के तेल एवं प्राकृतिक गैस उत्पादक क्षेत्र

(v) झीलों के समीपवर्ती भाग में इलिनायज, इण्डियाना, ओहियो, मिशिगन राज्य

(vi) अपलेशियन पर्वत के तलस्थ भाग में न्यूयार्क एवं कैटंकी ।

(vii) संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी–पश्चिमी भाग में स्थित अलास्का में भी स्थानों पर तेल प्राप्त होता है।

कनाड़ा–

कनाड़ा विश्व के कुल उत्पादन का 5.49 प्रतिशत तेल का उत्पादन करता है। कनाडा के कुल उत्पादन का 95 प्रतिशत तेल अलबर्टा प्रान्त में स्थित लेड्यूक क्षेत्र से प्राप्त होता है। सस्केचवान, मैनीटोबा, ब्रिटिश कोलम्बिया आदि अन्य उत्पादक राज्य हैं।

6. रूस

रूस वर्तमान समय में विश्व के कुल उत्पादन का 12.53 प्रतिशत तेल उत्पादित करता है। यह जमाव की दृष्टि से विश्व में आठवें स्थान पर तथा उत्पादन की दृष्टि से पुनः प्रथम स्थान पर है। यहाँ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र निम्न हैं–

(i) वोल्गा यूराल प्रदेश...यह प्रदेश चतुर्भुजाकार रूप में मास्को से 1600 किमी. पश्चिम में स्थित है। यहीं से रूस के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत प्राप्त होता है। यह वोल्गा एवं यूराल नदियों के मध्य स्थित है। यहाँ के प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र एवं तेलशोधक केंद्र उफा, पर्म (टटरिया एवं बश्किरा), कुइबीशेव एवं आरेनबर्ग हैं। यहाँ से ओमस्क के लिए–

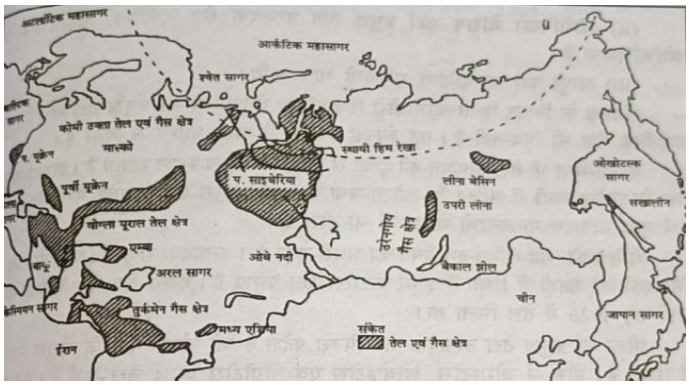

चित्र 9.4: रूस एवं समीपवर्ती देशों के प्रमुख पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस

क्षेत्र 1500 किमी. तथा इर्कुटस्क के लिए 3700 किमी. लम्बी पाइप लाइन बिछाई गई है। इर्कुटस्क सेनोसिबिस्क तक भी तेल पाइप लाइन बिछायी गई है। वोल्गा यूराल तेल क्षेत्र को द्वितीय बाकू के नाम से भी जाना जाता है।

(i) काकेशस प्रदेश–केस्पियन सागर के पश्चिम में स्थित बाकू क्षेत्र, अजरबेजान में चला गया लेकिन काकेशस पर्वत के उत्तर में ग्रोजनी एवं दक्षिणी भाग में स्थित मैकप क्षेत्र एवं सागर तटीय भाग की मग्न तट भूमि प्रमुख तेल उत्पादक प्रदेश हैं।

(ii) साइबेरियाई क्षेत्र – यहाँ रूस के पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस के विपुल भण्डार हैं। पश्चिमी साइबेरिया में ओबे नदी बेसिन तथा येनेसी बेसिन प्रमुख है। यहाँ प्रतिकूल पर्यावरण के कारण पर्याप्त दोहन नहीं हुआ केवल शीशम तथा सुरगटम तेलकूप खोदे गये हैं।

(iv) **खालीन द्वीप–रूस के सुदूर–** पूर्व में स्थित सखालीन द्वीप में स्थित है। इनके अलावा ट्यूमेन (1964) एवं टोमस्क प्रदेश भी प्रमुख तेल क्षेत्र है।

7. लैटिन अमेरिका

लैटिन अमेरिका का प्रमुख तेल उत्पादक देश वेनेजुएला है, जो विश्व के कुल उत्पादन का 2. 72 प्रतिशत तेल उत्पादित कर दसवें स्थान पर है। वेनेजुएला का सम्पूर्ण तेल निम्न भागों में संचित है–

(i) माराकाइबो झील एवं समीपवर्ती प्रदेश– वेनेजुएला के कुल उत्पादन का 70% तेल यहाँ से उत्पादित होता है। लागू–निल्लास, टिआ जुआना, मेनेग्राण्डे, मर्रा तथा तर्रा आदि इस प्रदेश के प्रमुख उपक्षेत्र हैं।

(ii) ओरोनिको बेसिन यहाँ प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र जुसेविन, किरियापर ओफिसियाना है।

(iii) आपुरे नदी का दक्षिणी–पश्चिमी भाग आदि। मेंडोना के निकट स्थित कोमोडोरो रिवाडेविया वेनेजुएला का प्रमुख तेल क्षेत्र है। प्राकृतिक गैस भी निकलती है। यह ब्यूनस आयर्स से पाइप लाइन से जुड़ा है।

कोलम्बिया भी तेल उत्पादन की दृष्टि से विश्व में प्रमुख स्थान रखता है। इसका तेल मेग्डालेना घाटी में संचित है। कोलम्बिया में ऊपरी, मध्य एवं निचली मेण्डालिना एवं कुछ उत्पादन माराकाइबो बेसिन में भी होता है।

मैक्सिको –यह लैटिन अमेरिका का सबसे बड़ा तेल उत्पादक राष्ट्र है। यहाँ के तेल मैक्सिको की खाड़ी में स्थित हैं इनमें केटारेल क्षेत्र प्रमुख है। दूसरा क्षेत्र शिकटिक जहाँ सन् 1926 में तेल मिला था।

पेरू–का प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र पिउरा प्रदेश है जो उत्तरी भाग के सेचुरामह में स्थित है। पीरू में जोराइटोस, लोबोइटोस एवं नीग्रोटोस प्रमुख तेल कुआ है तलायव ग्रांजोअजुल में तेल शोधन होता है।

अर्जेन्टाइना– यहाँ का चतुर क्षेत्र प्रमुख है। इसके अतिरिक्त चिलीका लका सांता एलेना प्रायद्वीपीय क्षेत्र प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं।

8. अफ्रीका

अफ्रीका महाद्वीप में 1920 के बाद तेल के उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। लॉक (1957), नाइजीरिया (नाइजर डेल्टा), मिश्र एवं अल्जीरिया (1956) जो अफ्रीका के उ0 भाग में स्थित सहारा

प्रदेश में स्थित है, प्रमुख उत्पादक देश है। लीबिया के तेल उत्पाद क्षेत्र सिटें की खाड़ी (Gulf of sirte) में स्थित दहरा, बेडा व जेल्टेन क्षेत्र है।

नाइजीरिया अफ्रीका का प्रमुख तेल उत्पादक बन गया है।यहाँ पोर्ट डकॉर्ट में तेल गैस शोधन होता है। **मिश्र** का ब्लायन क्षेत्र जो मरुस्थलीय भाग में स्थित है।

अल्जीरिया का

हासीमसूद, हास्सी आर, मेल एवं एडजेल क्षेत्र भी प्रमुख उत्पादक बन गये हैं। हास्सी आर मेल में प्राकृतिक गैस भी निकलती है अर्जेव में गैस को पाइप लाइन से भेजते हैं।

बोलीविया के केमिरी, रियो बर्मेजो एवं सनांदिता में तेल मिलता है। यहाँ सुक्रे (Sucre) एवं कोचाबाम्बा (तेल शोधनशाला) के मध्य तेल पाइप लाइन है।

चिली में पुंटा अरेनास व रियरा डेल फ्यूगो में तेल खनन एवं वालपरैजो में तेल शोधन होता है।

यूरोप–

यूरोप में तेल का भण्डार तो कम है (2%) तथा खपत अधिक है। उत्तरी पश्चिम यूरोप में नावें और ग्रेट ब्रिटेन प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक देश हैं। पूर्वी यूरोप में रोमानिय यूक्रेन, काकेशस क्षेत्र के देशों में पर्याप्त मात्रा में तेल के संचित भण्डार हैं। रोमानिया के कार्पोथियन पर्वत पर प्लोएस्ती (Ploesti) में तेल खनन एवं शोधन किया जाता है। केस्पियन सागर के पश्चिम में स्थित अजरबेजान का बाकू क्षेत्र प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्र है जो पूर्व में रूस का प्रमुख तेल क्षेत्र रहा है। इसके दक्षिण में मैकम तथा पश्चिमी यूक्रेन बोरिस्लाव क्षेत्र से पेट्रोलियम निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त फ्रांस के लाके , जर्मनी के बवेरिया, स्कूनबेक, पोलैण्ड के गेलिसिया में भी तेल निकाला जाता है।

पेट्रोलियम का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–

1950 से पूर्व तेल निर्यात का अधिकांश भागसंयुक्त राज्य अमेरिका, केस्पियन देश, मध्य पूर्व के देश तथा हिन्देशिया से ही आता था। लेकिन इसके उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दिशायें एवं मात्रा में परिवर्तन हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे बड़ा आयातक बन गया है। वर्तमान समय में दक्षिणी पश्चिमी एशियाई देश अरब, कुवैत, ईरान, इराक, संयुक्त अरब अमीरात तथा इण्डोनेशिया, वेनेजुएला , कोलम्बिया, अल्जीरिया, लीबिया निर्यातक बन गये हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, कोरिया, जर्मनी, इटली, रूस, नीदरलैण्ड, स्पेन, भारत, ग्रेट ब्रिटेन, दक्षिणी अफ्रीका तथा अस्ट्रेलिया आदि देश आयातक बन गये हैं। दक्षिणी–पश्चिमी एशिया सउदी अरब, कुवैत, ईरान, इराक, कतर, संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन, यमन आदि की अर्थव्यवस्था पूर्णतया , पेट्रोलियम के निर्यात पर निर्भर करती है।

9.12 सारांश

किसी भी संसाधन के उपयोग की एक अवधि होती है कुछ न्यून अवधि के अंदर समाप्त हो जाते है जबकि कुछ का सतत उपयोग किया जा सकता है। जो से जल, पवन लम्बे समय तक एवं कोयला, पेट्रोलियम सीमित आधार है। इस इकाई के अध्ययन मैं खनिज संसाधनों के विश्व विवतरण, उनके उत्पादन एवं महत्व का अध्ययन किया गया है। खनिज में संसाधनों का प्रयोग किसी भी देश की आर्थिक, सामाजिक प्रगति में सहायक है। लेकिन संसाधनों के अत्यधिक दोहन से आनेवाली पीढ़ियों के लिए समाप्त हो रहे है।

9.13 पारिभाषिक शब्दावली

मिनास मेराम– ब्राजील का प्रमुख लौह उत्पादक राज्य है।

स्टीम कोयला– विटामिनस को स्टीमकोयला भी कहते है क्योंकि इसका उपयोग विधुत संयत्रों में किया जाता है।

कोक कोयला– एन्थ्रेसाइट को कहते हैं।

9.14 बोध प्रश्न :

प्र0 9.14..1 दीर्घ उत्तरीय प्रसार–

प्र01 लौह अयस्क के बारे मे विस्तार में समझााइये।

प्र02 पेट्रोलियम के बारे में विस्तार से समझाइये ।

9.14.2 लघुउत्तरीय प्रश्न–

प्र01 बक्साइट के बारे मे संक्षिप्त में बताइये,

प्र02 कोयला के प्रकारो के बारे में लिखिए।

9.14..3 बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्र0 1– मेसाबी रेंज लौह उत्पादक क्षेत्र किस देश में स्थित है?

(अ) संयुक्त राज्य अमेरिका **(ब)** कनाडा

(स) आस्ट्रेलिया **(द)** ब्राजील

प्र0 2– बावाबूदन की पहाड़ी लौह अयस्क उत्पादक क्षेत्र किस देश में स्थित है?

(अ) भारत (ब) पाकिस्तान

(स) आस्ट्रेलिया (द) जापान

प्र0 3– रूर कोयला उत्पादक क्षेत्र अवस्थित है

(अ) जर्मनी **(ब)**फ्रांस

(स) आस्ट्रेलिया **(द)** बेल्जियम

प्र0 4–चीन के सांसी–शैसी क्षेत्र प्रसिद्ध है

(अ) कनाडा **(ब)** कोयला उत्पादन में

(स) लौट धयाक मे ताँका में **(द) जस्ता में**

प्र0 5–क्रिबोईराग कुजवास से प्राप्त होता है –

(अ) लोहा **(ब)** पेट्रोलियम

(स) अभ्रक **(द)** कोयला

9.15 संदर्भ ग्रम पृथ्वी

1. डॉ. वी.सी जाट ''संसाधन भूगोल'' मलिक बुककम्पनी जयपुर
2. प्रो. जगदीश सिंह '' संसाधन भूगोल'' ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई–10 वननाशन, जैवविविधता, भारत मे वन संरक्षण

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 वनोन्मूलन

10.4 वनोन्मूलन के पर्यावरण पर प्रभाव

10.5. वन संरक्षण

10.6 भारत में वन संरक्षण

10.7 सारांश

10.8 पारिभाषिक शब्दावलीः–

10.9 बोध प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.1 प्रस्तावना

वन प्राकृतिक वनस्पति संसाधन है। वृक्षों एवं झाड़ियों से अवतरित बड़े भूभाग को बन कहते है। वनों का दुरुपयोग या वनोंन्मूलन प्राकृतिक एवं मानवीय दोनो कारणों से होता है लेकिन मानवीय कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों का अन्धाधुंध दोहन करता है। वनोंन्मूलन के कारण पर्यावरण पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ रहा है जैसे जलवायु परिवर्तन, विश्वव्यापी तापन, बाढ़, जल संसाधनों की कमी इस इकाई के अध्ययन में वनों दुरुपयोग, उससे होने वाले दुष्प्रभाव एवं संरक्षण के बारे में अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई में वनोन्मूलन, संरक्षण, जैव विविधता का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) वनोंमूलन व जैवविविधता की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) विद्यार्थी वनों के महत्व उनके विनाश के दुष्प्रभाव को व्याख्या कर सकेंगे।

(स) संरक्षण के नियमों को समझकर वन संरक्षण की अपील कर सकेंगे।

(द) प्राकृतिक वनस्पति एवं जैवविविधता को नुकसान न पहुचाकर संरक्षण की जन चेतना का प्रसार कर सकेगे।

10.3 वनोन्मूलन (Deforestation)

प्रकृति में वनोन्मूलन कई प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिए किया जाता है यद्यपि वन विनाश प्राकृतिक कारणों से भी होता है, किन्तु मानवीय क्रियाओं की गतिशीलता तीव्र एवं लम्बी होती है। अतः स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्वस्तर पर वन विनाश के अग्र प्रमुख कारण हैं–

(1) कृषि कार्य (Agriculture)–प्रारम्भिक काल में मानव वन उपजों से ही अपना जीवन निर्वाह करता था, किन्तु जैसे–जैसे कृषि का विकास आरंभ हुआ, विस्तृत पैमाने पर वनों को साफ करके कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण यह कार्य और भी तीव्र हो गया। कृषि एक अत्यावश्यक क्रिया है लेकिन वन संसाधन के साथ सामंजस्य करके किया जाना चाहिए। वनों की सर्वाधिक हानि स्थानान्तरित कृषि (Shifting cultivation) द्वारा होती है। यह प्राचीनतम कृषि पद्धति है जो उष्ण प्रदेशों के वर्षा प्रचुर वन एवं अर्द्धमरुस्थलीय क्षेत्रों में प्रचलित है। इसका विस्तार अफ्रीका, एशिया एवं दक्षिणी अमेरिका में है। यह कार्य विकसित तथा विकासशील दोनों श्रेणी के देशों में हो रहा है। अफ्रीका के सवाना घास प्रदेश, यूरेशिया के स्टेपी, उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी, दक्षिणी अमेरिका के पम्पास, लानोज तथा दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड प्रदेशों में घासों एवं वृक्षों को साफ करके कृषि कार्य हेतु उपलब्ध कराया है। इसी प्रकार भूमध्य सागर के तटीय प्रदेशों में उद्यान कृषि के अनुकूल जलवायु परिस्थितियाँ हैं, अतः यहाँ भी वृहद स्तर पर वनोन्मूलन करके बागाती कृषि का विकास किया गया है। स्थानान्तरित कृषि को स्थानीय रूप से मलेशिया व इण्डोनेशिया में लदांग (Ladang), फिलीपिन्स में केगीन (Caigin), मध्य अमेरिका, मैक्सिको तथा जिम्बाब्वे में मिल्पा (Milpa), वियतनाम मे रे (Ray), वेनेजुएला में कानुको (Konuco), ब्राजील में रोका (Roc), जायरे में मोसले (Mosale), श्रीलंका में चेना, सूडान में नगासु (Nagsu), इण्डोनेशिया में हूमाह (Humah) तथा म्यांमार में टोंग्या (Tongy) कहते हैं।भारत में विगत दो दशकों में लगभग 35 लाख हेक्टेयर वन भूमि को कृषि भूमि में परिवर्तित किया जा चुका है। कृषि कार्य हेतु वनोन्मूलन की सर्वाधिक दर ओडिशा में है जबकि कुल कृषि क्षेत्र के सन्दर्भ में स्थानान्तरण कृषि का अनुपात उत्तरी–पूर्वी राज्यों असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड, मेघालय तथा मणिपुर में है। यहाँ की जाने वाली स्थानान्तरी कृषि को झूमकृषि (Jhumming) कहते हैं। इस प्रकार की कृषि पद्धति को केरल में पोनम (Ponam), आन्ध्र प्रदेश व ओडिशा में पोडू (Podu), मध्य प्रदेश में बेवर (Bewar), पेंडा (Pand), डाया (Dahy) तथा बीरा (Beer), पश्चिमी घाट में कुमारी (Kumari), हिमाचल प्रदेश में खील (Khil) तथा दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान में वालरा (Vaira) आदि कई भिन्न–भिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है। स्थानान्तरी कृषि में पहाड़ी ढालों पर वन क्षेत्रों को काटकर तथा जलाकर भूमि को साफ किया जाता है। वहाँ कुछ वर्षों तक कृषि कार्य करने के उपरान्त जब उर्वरता कम हो जाती है, तो आगे स्थानान्तरण कर नये क्षेत्र साफ कर लिये जाते हैं। इस प्रकार कृषि हेतु वनोन्मूलन किये जाने से पर्यावरण अवनयन होता है जिसकी पूर्ति कई वर्षों में संभव हो पाती है।

(2) वनों का चरागाहों में परिवर्तन (Forest Areas Converting to Pasture)–

बढ़ती जनसंख्या एवं घटते चरागाहों की स्थिति में वन क्षेत्र को साफ करके चरागाहों में रूपान्तरित कर लिया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों (Temperate zones) में वृहत् स्तर पर वन भूमि पर चरागाह विकसित किये गये हैं। डेयरी फार्मिंग व्यवसाय के अन्तर्गत विकसित देश भी ऐसा कर रहे हैं। अतः इस क्रिया के उपरान्त भी पर्यावरण अवनयन को गति मिलती है।

(3)निर्माण कार्यों के लिए वन विनाश (Deforestation for Construction)–

1860 के दशकों में औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त वन क्षेत्र को भी संभावना का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र माना गया तथा वन आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास किया गया। बढ़ती जनसंख्या, नगरीकरण तथा आवासीय आवश्यकताओं के लिए वन आधारित निर्माण कार्य तीव्र हुए हैं। शहरी क्षेत्र वनों को साफ कर तीव्रता से प्रसार कर रहे हैं, जबकि सड़क निर्माण, आवास निर्माण, रेलवे लाइनों

आदि के लिए भी वनोन्मूलन किया जाता है। विगत तीन दशकों के दौरान भारत में सड़क निर्माण के लिए 73 हजार हेक्टेयर, उद्योगों के 14.6 लाख हैक्टेयर तथा अन्य कार्यों हेतु 99 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र साफ किया गया है। बहुउद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओं तथा छोटे बाँधों के निर्माण के लिए भी वृहत् स्तर पर वन विनाश किया गया है जबकि कुछ भाग जलमग्न भी हुआ है। अकेले नर्मदा सागर परियोजना तथा टिहरी बाँध परियोजना में क्रमशः 40322 हैक्टेयर तथा 3600 हैक्टेयर वन क्षेत्र का विनाश किया गया है। इसलिए ये बड़े बाँध, सड़कें, रेलवे मार्ग, शहर आदि एक ओर महत्त्वपूर्ण हैं तो दूसरी ओर पर्यावरण सन्तुलन की दृष्टि से अभिशाप भी हैं।

(4) **घरेलू एवं व्यापारिक उद्देश्यों हेतु वन विनाश**(Deforestation for Domestic and Commercial Purpose)–

वर्तमान प्रौद्योगिक मानव अपने घरेलू एवं व्यापारिक प्रयोजनों हेतु भी वन विनाश कर रहा है, क्योंकि तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या के कारण लकड़ी की माँग बढ़ रही है। विषुवत् रेखीय क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 20 मिलियन हैक्टेयर की दर से वन विनाश हो रहा है। आर्थिक लाभ हेतु उन्मुख भौतिकवादी मनुष्य व्यापक वन विनाश कर रहा है। ईंधन के अतिरिक्त भवन निर्माण, फर्नीचर आदि हेतु भी वन विनाश कर रहा है। कनाडा के लम्बरजेक व्यापारिक वन कटाई करते हैं। व्यापारिक स्तर पर लकड़ी काटने का कार्य, कागज एवं लुग्दी उद्योग, दियासलाई निर्माण, इमारतें बनाने, पुल, रेल के डिब्बे, नावों तथा अन्य निर्माण कार्यों हेतु होता है।

सारिणी–10.1: भारत में वनावरण के कारण

राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश	**परिवर्तन के कारण**
आन्ध्र प्रदेश	वन विभाग द्वारा पौधरोपण गतिविधियों को बढावा देने के कारण अनन्तपुर, चित्तूर, पूर्वी गोदावरी, गुंटूर, कृष्णा, विजयनगरम, विशाखापट्नम एवं प0 गोदावरी जिलों में वनावरण में वृद्वि हुई
अरूणाचल प्रदेश	स्थानांतरी कृषि से कमी एवं कुछ क्षेत्रों में बाँस रोपण से वन वृद्धि ।
असोम	वनभूमि पर अतिक्रमण, जैविक दबाव, स्थानान्तरित कृषि से कमी ।
बिहार	पौधरोपण से आंशिक वृद्धि ।
छत्तीसगढ	अतिक्रमण, वन्यजीव क्षेत्रों में पुनर्वास से वन अवनयन, खनन, सिंचाई परियोजनाओं के विकास के कारण वनावरण में कमी

दिल्ली	वनरोपण एवं वन सुरक्षा से वनावरण में वृद्धि
गोवा	मैंग्रोव क्षेत्रों में वृद्धि से वनावरण में वृद्धि
गुजरात	मैंग्रोव क्षेत्रों में वृद्धि एवं पौधरोपण द्वारा वृद्धि ।
हरियाणा	वन भूमि का गैर–वन उद्देश्यों में परिवर्तन से कमी।
हिमाचल प्रदेश	पौधरोपण एवं संरक्षण गतिविधियों द्वारा वनावरण में वृद्धि।
जम्मू एवं कश्मीर झारखण्ड	झाड़–झंखाडक्षेत्रों में वृद्धि ।
कर्नाटक	पौधरोपण से वृद्धि ।
केरल	व्यापारिक पौधरोपण से वृद्धि ।
मध्य प्रदेश	अतिक्रमण, खनन, चक्रीय क्रिया के असफल होने से कमी।
महाराष्ट्र	चक्रीय क्रिया असफल, अतिक्रमण एवं गैर–वन उद्देश्यों कोप्राथमिकता से कमी ।
मणिपुर	पौधरोपण एवं संरक्षण से वृद्धि ।
मेघालय	स्थानान्तरी कृषि एवं जैविक दबाव से कमी।
मिजोरम	स्थानान्तरी कृषि एवं जैविक दबाव से कमी।
नगालैण्ड	स्थानान्तरी कृषि एवं जैविक दबाव से कमी।
ओडिशा	पौधरोपण के बेहतर संरक्षण से वनावरण में वृद्धि

पंजाब	चक्रीय क्रिया असफल, होने से कमी।

राजस्थान	संरक्षण, पौधरोपण एवं खेजड़ी के **पुर्नस्थापन** से वनावरण में वृद्धि ।
सिक्किम	सड़क निर्माण, स्थानान्तरी कृषि एवं भूस्खलन से कमी।
तमिलनाडु	सफल कृषि वानिकी से बेहतर संरक्षण से वृद्धि।
तेलंगाना	व्यापारिक वृक्षों को काटना, अतिक्रमण व जैविक दबाव से कमी।
त्रिपुरा	स्थानान्तरी कृषि एवं वन भूमि पर अतिक्रमण।
उत्तर प्रदेश	पौधरोपण एवं बेहतर संरक्षण।
उत्तराखण्ड	वन भूमि के विकास गतिविधियों में रूपान्तरण से वनावरण में कमी।
पश्चिमी बंगाल	वृक्षारोपण गतिविधियों में वृद्धि, व्यापारिक पौधरोपण, चाय बागानों शेड ट्री बनाने तथा मैंग्रोव वृद्धि से वनावरण में वृद्धि।
अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	मंग्रोव आवरण में संरक्षण से वृद्धि ।
चण्डीगढ़	पौधरोपण एवं संरक्षण से वनावरण में वृद्धि।
दादरा एवं नगर हवेली	भारी जैविक दबाव से वनावरण में कमी।
दमन एवं दीव	व्यापारिक पौधरोपण से वनावरण में वृद्धि।
पुदुचेरी	पौधरोपण से वनावरण में वृद्धि।

(5) खनिज खनन के कारण वन विनाश(Deforestation due to Mining)–

खनिजों के खनन हेतु वनों को साफ किया जाता है। व्यापारिक स्तर पर किये जाने वाले खनन के दौरान तीव्र वन विनाश होता है। विनाश के उपरान्त खनन करते हैं तथा खनन हेतु वृहद् खड्डों का निर्माण हो जाता है, जिनका पुनः उस रूप में विकसित किया जाना संभव नहीं है, यदि

पुनस्थापित कर भी देते हैं तो बहुत समय लगता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पेंसिलवानिया कोयला क्षेत्र, रूस के क्रिबोईराग (कुजनेत्स्क) लौह क्षेत्र में खनन कार्य द्वारा वृहद स्तर पर वन विनाश हुआ है। भारत में पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, ओडिशा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा उत्तराखण्ड में खनन के लिए वनोन्मूलन हो रहा है। दून घाटी में चूना पत्थर के खनन द्वारा 3,90,000 हैक्टेयर क्षेत्र प्रतिवर्ष प्रभावित हो रहा है। राजस्थान के अरावली पर्वतीय क्षेत्रों में संगमरमर तथा **ताँबा** एवं अन्य खनिजों के खनन के लिए वन विनाश किया जा रहा है।

(6) वनाग्नि (Forest Fire)–

वनाग्नि द्वारा भी वन विनाश होता है, जिसकी उत्पत्ति प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों कारणों से हुई है। प्राकृतिक कारणों में वायुमण्डलीय बिजली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मानवीय कारणों में मानव सोद्देश्य वनों को जलाता है। कृषि एवं चरागाह विकास हेतु भूमि साफ करने के लिए भी वनों को जलाता है। पशु चरवाहे भी आग का कारण बन जाते हैं। आग लगने से वन पारिस्थितिकी तन्त्र की जैव विविधता नष्ट होकर प्रतिकूलप्रभाव उत्पन्न करती है। एक और जंगलों में कई प्रकार के जीव जन्तु निवास करते हैं तो दूसरो और वनों से प्राप्त पत्तियों द्वारा मृदा को जीवांश) प्राप्त होता है।

(7) जीवीय कारकों द्वारा वन विनाश (Deforestation by Animals)–

जीवीय कारकों द्वारा भी वनों का विनाश होता है, जिनमें पालतू जानवर तथा सूक्ष्म जीवाणु प्रमुख हैं। जानवर स्वतंत्र विचरण करके वनों का विनाश करते हैं, जबकि सूक्ष्म जीवाणु जैसे दीमक, कीट आदि विभिन्न प्रकार के हानिकारक प्रभाव डालते हैं। उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय तथा शुष्क प्रदेशों में पशुओं के अतिचारण पर भारी वन विनाश हुआ है। इन वनों में पशुओं के बड़े–बड़े झुण्ड सूक्ष्म वनस्पति को नष्ट करके मृदा के ऊपरी आवरण को भी क्षयित कर देते हैं, जिससे वनविनाश हो जाता है। उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त भूस्खलन एवं हिमस्खलन के द्वारा भी वन विनाश होता है।वन विनाश द्वारा उपरोक्त कारकों के कारण पर्यावरण असन्तुलित हो रहा है।

10.4 वनोन्मूलन के पर्यावरण पर प्रभाव (Impact of Deforestation on Environment)

वन संसाधन जलवायु सन्तुलन के प्रमुख तत्त्व माने जाते हैं। वन विनाश का प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र पर दृष्टिगोचर होता है जिसके उपरान्त जीव जन्तु भी प्रभावित होते हैं। तीव्र मृदा अपरदन, बाढ़, सूखा आदि क्रियाओं में तीव्रता आती है। वन विनाश के निम्नलिखित दुष्प्रभाव प्रमुख हैं:–

(1)जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव– थार्नथ्वेट महोदय के अनुसार वर्षा की क्रियाशीलता में वनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्षा के उपरान्त आर्द्रता में वृद्धि होती है जो तापमान को नियन्त्रित करती है। यदि वर्षा की मात्रा में भी कमी होती चली जाएगी तो शुष्क अवस्था उत्पन्न हो जाएगी जिसके परिणामस्वरूप मरुस्थल जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वनोन्मूलन के कारण भूजैवरसायनिक चक्र बाधित होते हैं। जल चक्र में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। साथ ही कार्बन तथा नाइट्रोजन चक्रों की क्रियाशीलता भी अव्यवस्थित होती है क्योंकि पौधे भूमिगत जल का वाष्पोत्सर्जन करते हैं तथा वर्षा जल को रोककर निस्यन्दित (Infiltrate) करने में सहायता करते हैं। प्राणवायु में भी कमी आती है। वनों में व्याप्त नमी विश्वव्यापी गर्मी (Global Warming) को नियन्त्रित करते हैं।

(2) बाढ़ों की पुनरावृत्ति– जलग्रहण क्षेत्रों में वनोन्मूलन के उपरान्त बाढ़ों की पुनरावृत्ति अधिक होती है। वर्षा से प्राप्त जल को मृदा में सोखने से वनस्पति आवरण सहयोग करते हैं। किन्तु यदि वृक्षविहीन क्षेत्र है तो सूक्ष्म नालियों द्वारा वर्षा जल मुख्य धारा में मिश्रित होकर बाढ़ का रूप धारण

कर लेता है। वन वर्षा जल की तीव्रता को कम कर देते हैं जिससे बाढ़ों पर नियंत्रण रहता है। भारत में बिहार राज्य में आयी बाढ़ें अधिकांशतया वन विनाश के कारण ही आयी हैं।

(3) जल संसाधनों की मात्रा पर प्रभाव—वन विनाश के कारण वर्षा की मात्रा कम हो जाती है एवं तापमान बढ़ जाता है जिससे सतही जलस्रोत सूख जाते हैं एवं भूजल स्तर नीचे चला जाता है। वृक्षों द्वारा वातावरण नम रहता है जबकि वृक्षविहीन क्षेत्र में वाष्पीकरण अधिक है। विगत तीन सौ साल में पहली बार 1999 में राजस्थान की राजसमन्द झील सूख गई। भूजल तोव्रता से घटता जा रहा है। मसूरी, देहरादून के समीपवर्ती क्षेत्रों में वन विनाश के कारण अधिकांश जलस्रोत सूख गये हैं। वन विनाश के कारण चूना प्रधान शैलों वाले चेरापूंजी क्षेत्र में भी ग्रीष्मकाल में भयंकर जलाभाव रहता है।

(4) मृदा अपरदन में वृद्धि—वृक्ष मृदा को बाँधकर रखने का कार्य करते हैं। वन विनाश के कारण वर्षा जल की बूँदें पूर्ण गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) के साथ धरातलीय भाग पर तीव्र प्रहार करती हैं, जबकि वनावरण के कारण ये गति कम हो जाती है। पेड़—पौधे धरातलीय प्रवाह को भी धीमा करके भूमिगत करने में सहायता करते हैं। वृक्षविहीन क्षेत्रों में जलग्रहण क्षेत्रों के तेज ढाल वाले भागों से जल तीव्रगति से मृदा को काटता हुआ प्रवाहित होता है जिसके उपरान्त नदियों में अवसाद भार में वृद्धि हो जाती है, जिससे मृदा अपरदन के साथ ही बाद का प्रकोप पनपता है। वृक्षविहीन थार के मरुस्थल में तीव्र मृदा अपरदन हो रहा है।

(5) जैव विविधता का ह्रास— वन पारिस्थितिक तन्त्र में जैव विविधता का अस्तित्व रहता है, जबकि वनोन्मूलन के उपरान्त इस पर संकट आ जाता है। वन्य जीव विलुप्त हो जाते हैं। कई संकटापन्न प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं, जिसका दुष्प्रभाव पर्यावरण सन्तुलन पर पड़ता है। दुनिया भर में जीव—जन्तुओं एवं पेड़—पौधों की लगभग 100 लाख प्रजातियाँ हैं जिनमें से 14 लाख प्रजातियाँ मानसूनी जलवायु वाले वनों में मिलती हैं। वर्तमान समय में प्रतिवर्ष 170 लाख हैक्टेयर जंगल साफ हो रहे हैं। यदि यही दर रही तो 2040 तक इन प्रजातियों की 25 से 75 प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त हो जायेंगी अतः वन संरक्षण आवश्यक है।

उपर्युक्त प्रभावों के अतिरिक्त वन विनाश के कारण भूमि संसाधन भी विकृत होते हैं। मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया को ऊर्जा मिलती है तथा भूमि बंजर होती है। वन विभिन्न प्रकार के उद्योगों से निसृत कार्बन—डाई—ऑक्साइड (CO^2) को अवशोषित करते हैं। वन विनाश के कारण प्रकृ त्ति में प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ने के साथ ही विश्वव्यापी तापन (Global Warming) की समस्या उभरेगी। इन सभी क्रियाओं के उपरान्त पर्यावरण अवनयन को गति मिलती है।फ्रांस के दक्षिणी—पश्चिमी भाग में, स्पेन तथा पुर्तगाल के पश्चिम में स्थित यूरोप महाद्वीप के अन्य कारक उत्पादक क्षेत्र हैं।

10.6 वन—संरक्षण(Forest Conservation)

मनुष्य कितना भी भौतिक प्रवृत्ति का क्यों न बने, फिर भी उसके मस्तिष्क में स्वस्थ एवं सन्तुलित पर्यावरण की कल्पना रहती है जिसमें वह निरन्तर संलग्न रहता है। पृथ्वी तल पर किसी भी राजनीतिक प्रदेश के लिए वन सम्पदा का संरक्षण आवश्यक भी है। सामान्यतया वन संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं :—

(1) वनों की पोषणीय सीमा तक कटाई

प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन के दोहन की एक सीमा होती है जिसे पोषणीय या जीवनधारणीय सीमा (Sustainable limit) कहते हैं। मनुष्य के विवेकपूर्ण उपयोग द्वारा वनों का दोहन उसी सीमा

तक किया जाये जिस सीमा तक उनका पुनर्भरण (Regeneration) हो सके अर्थात् वन काटने और वृक्षारोपण की दरों में अनुपात होना चाहिए। लगाये गये वृक्षों का उस समय तक दोहन आरंभ न हो जब तक से पूर्ण परिपक्य न हों

(2) वनाग्नि से सुरक्षा

वृक्षों की आग से सुरक्षा की जानी चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1955 से 1964 के दौरान वन अग्नि से 10 लाख हैक्टेयर वन नष्ट हो गये। अतः केम्प फायर, शिखर आग तथा माचिस आग से सुरक्षा की जानी चाहिए।

(3) वनों का हानिकारक कीटों से रक्षण

मनुष्य के अतिरिक्त जीवों में वनों को अनेक हानिकारक कीट नष्ट करते हैं, इनमें दीमक, सूंडी, झींगुर, गुबरैला आदि प्रमुख हैं। इन कीटों को जैविक नियन्त्रण विधियों द्वारा नष्ट करना चाहिए। कीट प्रभावित वृक्ष शीघ्र सूख जाता है अतः अन्य वृक्षों में इसके कीटाणु विसरण होने से पूर्व ही ऐसे वृक्षों को हटा देना चाहिए। एक सीमा तक कीटाणुनाशक दवाइयों द्वारा भी कीट नियंत्रण किया जा सकता है।

(4) चयनात्मक कटाई

1.चयनात्मक कटाईकी जानी चाहिए 2.उन्हीं वृक्षों की कटाई की जाय जिनकी वास्तव में माँग हो। 3.सम्पूर्ण वृक्ष को काटने के बजाय उसकी शाखाएं काटी जायें 4. पारिस्थितिक सन्तुलन एकाएक विकृत न हो।

(5) ईंधन के लिए वनोन्मूलन नहीं किया जाये वरन् अन्य वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध कराये जायें।

(6) घरेलू उपयोग हेतु इमारती लकड़ी के स्थान पर कुछ वैकल्पिक वस्तुओं से निर्मित भी उपयोग करना चाहिए।

(7) पुनः वनीकरण को व्यवस्थित विधि से विकसित किया जाये। ऐसे वृक्ष लगाये जायें जो बहुउद्देश्यीय व शीघ्र बढ़ने वाले हों। बहुउद्देश्यीय वृक्षों के अन्तर्गत बागवानी विकास को बढ़ावा दिया जाये।

(8) पारिस्थितिकी के अनुकूल दशाओं वाले वृक्षों का रोपण किया जाये ताकि जीवितता प्रतिशत सर्वाधिक हो ।

(9) वनों के लाभ एवं हानियों के बारे में जन–चेतना फैलाई जाये।

(10) सामाजिक वानिकी व कृषि वानिकी जैसी योजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाये।

(11) राष्ट्रीय वन नीति के अनुरूप वन विकास किया जाये।

(12) वन संरक्षण से सम्बन्धित नियमों का कठोरता से पालन किया जाये।

उपरोक्त उपायों के साथ ही बड़े पौधों एवं बहुउद्देश्यीय योजनाओं का क्रियान्वयन करते समय वन संसाधनों की महत्ता को मद्देनजर रखा जाये तथा चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन, अप्पिको आन्दोलन तथा राजस्थान के जोधपुर जिले की अमृता देवी द्वारा चलाये गये संरक्षणात्मक आन्दोलन को भी जन समर्थन मिलना चाहिए। इन आन्दोलन के तहत वृहत् स्तर पर वनों को बचाया गया है।

भारत में वन संरक्षण

वृक्षों द्वारा वातावरण नम रहता है जबकि वृक्ष–विहीन क्षेत्र में वाष्पीकरण अधिक होता है। विगत तीन सौ साल में पहली बार 1999 में राजस्थान की राजसमन्द झील सूख गई। भूजल तीव्रता से घटता जा रहा है। मसूरी, देहरादून के समीपवर्ती क्षेत्रों में वन विनाश के कारण अधिकांश जलस्रोत सूख गये हैं। वन विनाश के कारण चूना प्रधान शैलों वाले राजी क्षेत्र में भी ग्रीष्मकाल में भयंकर जलाभाव रहता है।

(4)मृदा अपरदन में वृद्धि–वृक्ष मृदा को बाँधकर रखने का कार्य करते हैं। वन विनाश के कारण वर्षा जल की बूंदें पूर्ण गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) के साथ धरातलीय भाग पर तीव्र प्रहार करती हैं, जबकि वनावरण के कारण ये गति कम हो जाती है। पेड़–पौधे धरातलीय प्रवाह को भी धीमा करके भूमिगत करने में सहायता करते हैं। वृक्षविहीन क्षेत्रों में जल के तेज ढाल वाले भागों से जल तीव्रगति से मृदा को काटता हुआ प्रवाहित होता है जिसके उपरान्त नदियों में अवसाद भार में वृद्धि हो जाती है, जिससे मृदा अपरदन के साथ ही बाढ़ का प्रकोप पनपता है। वृक्षविहीन थार के मरुस्थल में तीव्र मृदा अपरदन हो रहा है।

(5) जैव विविधता का ह्रास–वन पारिस्थितिक तन्त्र में जैव विविधता का अस्तित्व है, जबकि वनोन्मूलन के उपरान्त इस पर संकट आ जाता है। वन्य जीव विलुप्त हो जाते हैं। कई संकटापन्न प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं, जिसका दुष्प्रभाव पर्यावरण सन्तुलन पर पड़ता है। दुनिया भर में जीव–जन्तुओं एवं पेड़–पौधों की लगभग 100 लाख प्रजातियाँ हैं जिनमें से 14 लाख प्रजातियाँ मानसूनी जलवायु वाले वनों में मिलती हैं। वर्तमान समय में प्रतिवर्ष 170 लाख हैक्टेयर जंगल साफ हो रहे हैं। यदि यही दर रही तो 2040 तक इन प्रजातियों की 25 से 75 प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त हो जायेंगी अतः वन संरक्षण आवश्यक है।

उपर्युक्त प्रभावों के अतिरिक्त वन विनाश के कारण भूमि संसाधन भी विकृत होते हैं। मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया को ऊर्जा मिलती है तथा भूमि बंजर होती है। वन विभिन्न प्रकार के उद्योगों से निसृत कार्बन–डाई–ऑक्साइड (CO_2) को अवशोषित करते हैं। वन विनाश के कारण प्रकृत्ति में प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ने के साथ ही विश्वव्यापी तापन (Global Warming) की समस्या उभरेगी। इन सभी क्रियाओं के उपरान्त पर्यावरण अवनयन को गति मिलती है।

10.7सारांश

इस इकाई कार्य में वनों के विनाश व संरक्षण के विषय में अध्ययन करने के बाद वन संसाधनों की महत्ता को मद्देनजर रखते हुए वनों को बचाया जाये। वनों के उपयोग के स्थान पर वैकाल्पिक वस्तुओं का प्रयोग किया जाय, इस विषय की अध्ययन करने के बाद वन संसाधनो की महन्ता को मद्देनजर रखते हुए वनो कों बचाया जाये। वनों यह इकाई अध्ययन वन संरक्षण, जैव विविधता व वन विनाश के दुष्प्रभावों को समझने में सहायक होगी जो–

10.8. पारिभाषिक शब्दावली

पोनम —केरल में की जाने लानेवाली स्थानान्तरित कृषि।

पोंडू—आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा में स्थानान्तरीत कृषि ।

कुमारी— पश्चिमी घाट में स्थानान्तरीत कृषि।

10.9'बोध प्रश्नः –

1.दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तरा–

प्रश्न–1 वनो के दुरुपयोग के बारे मे विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न– 2 वनो के संरक्षण नियमो के बारे में बताइये?

2. लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न– 1 भारत में वनों के प्रकार बताइये,

प्रश्न– 2 स्थानान्तरित कृषि के बारे मे बताइये ।

प्रश्न– 3 विश्वतापन के बारे मे बताइये।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्रश्न–1 सुमेलित नहीं है

(सूची i)		(सूची ii)	
(अ) इण्डोनेशिया	–––––	लदांग	
(ब) पिलीपिन्स	––––––केगीन		**(द)**
(स) मैक्सिको	–––––	मिल्पा	
(द) वियतनाम	–––––	रोका	

प्रश्न–2 वालरा कृषि की जाती है –

(अ) राजस्थान	(ब) मध्यप्रदेश	**(अ)**
(स) उत्तर प्रदेश	(द) उणीसा	

प्रश्न–3 सुमेलित नहीं है

(सूची i)		(सूची ii)	
(अ) ब्रजील	–––––	रोका	
(ब) सूडान	–––––––	नगपसु	**(द)**
(स) मध्यप्रदेश	–––––	बेवर	
(द) म्यांमार	––––––––	हूमह	

10.10 सन्दर्भ सूची ग्रन्थ

1. डॉ बी.सी जाट ''संसाधन एवं आर्थिक भूगोल मलिक जयपुर कम्पनी जयपुर
2. Dr. Alka Gauautam-'' Resoucees Geograpy!
3. प्रो जगदीश, सिहं संसाधन भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई–11 जल संसाधन, विश्व स्तर पर सुलभता व जल का उपयोग

इकाई की रूपरेखा

11.1प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 जल साधन

11.4 विश्व स्तर पर सुलभताव जल का वितरण

11.5 भूजल का संचयन

11.6 भूजल के स्रोत

11.7 जल का उपयोग

11.8 सारांश

11.9 पारिभाषिक शब्दावली

11.10 बोध प्रश्न

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.1 प्रस्तावना– जल संसाधन

जल सम्पूर्ण जीव मण्डल को आधार प्रदान करता है। जल एक अमूल्यप्राकृतिक संसाधन है। पृथ्वी का सम्पूर्ण जलीय भाग जलमण्डल कहलाता है जिसमें द्रव, जलवाष्प, बर्फ, हिम को सम्मिलित किया जाता है। जल सम्पूर्ण पृथ्वी पर महासागरों, नदियों, झीलों, तालाबों, हिमआवरण, हिमनद, हिमक्षेत्रो, भूमिगत रूप मे पाया जाता है। जल का अधिकांश भाग 97.39, लवणीय रुप मे सागरों में वितरित होता है. जबकि स्वच्छ जल बहुत कम मात्रा मे मिलता है। जल सदैव गतिशील रहता है। हम इस इकाई में पृथ्वी तल पर पाये जाने वाले जल संसाधन की सुलभता, मानवीय उपयोग एवं जल संरक्षण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई में जल संसाधन का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। जल संसाधन की सुलभता एवं उपयोग के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) जल संसाधन की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) जल संसाधन की गतिशीलता, वितरण, एवं जल चक्र के बारे में स्पष्ट करना

(स) विद्यार्थी जल संसाधन के विषय को स्पष्ट कर सकेंगे ।

(द) विद्यार्थीयों को जल संसाधन के महत्ता एवं संरक्षण के बारे में अवगत करना

11.3 जल संसाधन

जल पृथ्वी पर पाया जाने वाला वह अमूल्य प्राकृतिक संसाधन है जो प्रकृति की रचना में सहभागी होकर सम्पूर्ण जीवमण्डल को आधार प्रदान करता है। यह प्रकृति में विभिन्न स्थानों में भिन्न

भिन्न रूपों में वितरित है तथा सदैव गतिशील रहता है। प्रकृति में किसी स्थान पर इसकी स्थिरता भिन्न–भिन्न समयावधियों में रहती है। इसका स्वरूप तथा आकार भी परिवर्तनशील है। यह कहीं जलवाष्प में तथा कहीं हिम अथवा द्रव रूप में पाया जाता है। जलवायु एवं स्थिति के अनुसार इसका स्वरूप निर्धारित होता है तथा इसके स्वरूप परिवर्तन में सूर्य से प्राप्त ऊष्मा की प्रमुख भूमिका होती है। स्थलमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल में विद्यमान जल विभिन्न अवस्थाओं (ठोस, द्रव, गैस) में अपनी भौगोलिक स्थिति बदलता रहता है। यह परिवर्तन जलीय चक्र के माध्यम से पूर्ण हो पाता है।.

पृथ्वी पर उपलब्ध जल का लगभग 1 प्रतिशत भाग जलीय चक्र में भाग लेता है। तापमान जलीय चक्र में ऊर्जा का कार्य करता है। इस प्रकार धरातल पर स्थित विभिन्न जल स्रोतों, झील, तालाब, नदियाँ, पेड़–पौधों तथा समुद्रों में उपलब्ध जल का वाष्पीकरण होगा एवं यह जल वायुमण्डल में प्रवेश करेगा, इसके उपरान्त तापमान कम होने के कारण संघनन होकर यह वाष्पीकृत जल वर्षा के रूप में पुनः धरातल पर आ जाता है। इस प्रकार जल का जो चक्र पूरा होता है उसे जलीय चक्र (Hydrological Cycle) कहते हैं।

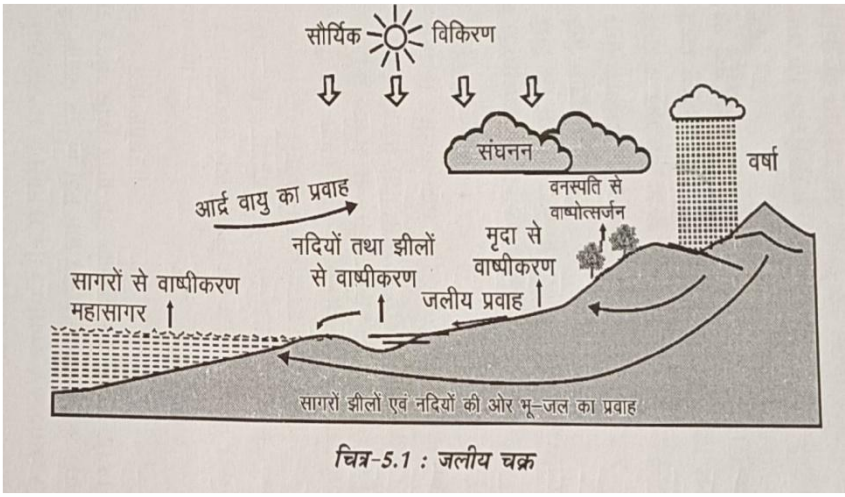

चित्र-5.1 : जलीय चक्र

जलीय चक्र की क्रिया–विधि (Mechanism of Hydrological Cycle)

पृथ्वी पर संचालित होने वाले जल चक्र के मध्य अनेक ऐसे अभिकरण हैं जो इसकी गतिशीलता को प्रभावित करते हैं। नमी की अवस्था तथा अवस्थिति में निरन्तर सम्बन्धित परिवर्तन होते रहते हैं यथा जो नमी वायुमण्डल को प्राप्त होती है वह जल, ओस, हिम, पाले आदि किसी भी रूप में धरातल या समुद्रों को पुनः प्राप्त हो सकती है। अतः अवस्था एवं अवस्थिति में होने वाले इन परिवर्तनों के फलस्वरूप जलीय चक्र की प्रक्रिया में बाधाएँ आती है।

सूर्य से प्राप्त ऊर्जा (तापमान) के कारण महासागरों का जल जलवाष्प का रूप धारण कर वायुमण्डल में प्रवेश करता है। महासागरों से स्थल की ओर चलने वाली पवन इस जलवाष्प को गति देती है तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करती है। इसके उपरान्त इस जलवाष्प का जब भी संघनन (Condensation) होता है, तो भूसतह पर वर्षा होती है तथा वर्षा से धरातल को प्राप्त होने वाला यह जल नदी नालों के रूप में पृष्ठ पर बहता है और अन्त में महासागरों में प्रवेश कर जाता है। सौर ऊर्जा से यह जल चक्र गति करता है। इस प्रकार वर्षा से प्राप्त जल का कुछ भाग वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन होने से ह्रास हो जाता है तथा कुछ जल नदियों, तालाबों, झीलों

आदि से वाष्पीकरण द्वारा पुनः वायुमण्डल में पहुँच जाता है। धरातल पर होने वाली जलवर्षा के कुछ भाग का जल भूसतह के नीचे अन्तः स्पदम (Infiltration) हो जाता है। मृदा में स्थित इस जल भण्डार को मृदा (Tran जल भण्डार कहते हैं। इसका भी पौधों से वाष्पोत्सर्जन द्वारा ह्रास होता रहता है। कुछ जल स्रोतों (Springs)के रूप में पुनः धरातल पर आ जाता है तथा मृदा जल भण्डार से कुछ भाग नीचे की ओर संचरित हो जाता है। धरातल के नीचे संग्रहीत इस जलीय भाग को भूमिगत जल कहते हैं।

जल के रूप (Forms of Water)

प्रकृति में जल विभिन्न रूपों में पाया जाता है जो कहीं विशाल रूप में तो कहीं द्रव अवस्था में मिलता है तो कहीं हिमावरण के रूप में पाया जाता है। वायुमण्डल में पाया जाने वाला जल गैसीय रूप (जलवाष्प) में मिलता है। इस प्रकार जलमण्डल में पाये जाने वाले जल का 97.39 प्रतिशत भाग विशाल महासागरों में पड़ा है जिसका अधिकांश भाग द्रव अवस्था में मिलता है। कुल जल संसाधन का 2.01 प्रतिशत भाग हिम टोपियों (Ice Caps),हिमखण्डों(Icebergs)तथाहिमनदों(Glacier के रूप में मिलता है।

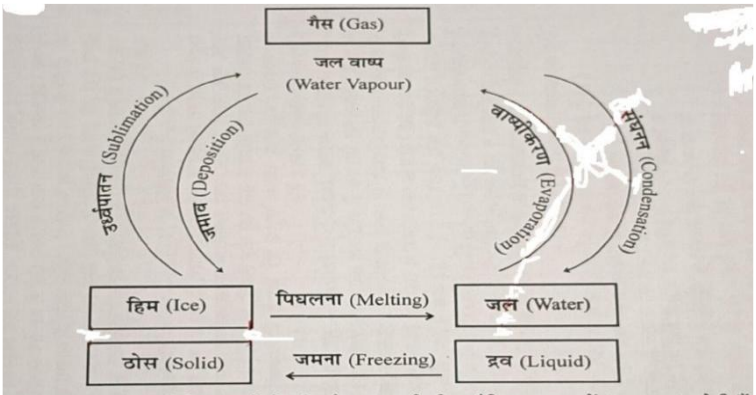

चित्र-5.2 : जल का विभिन्न रूपों में परिवर्तन, जल की तीन भौतिक अवस्थायें (Phages) होती हैं- गैस (जल वाष्प), ठोस (हिम) तथा द्रव (जल)। (Park C, 1997)

पृथ्वी पर बदलती वायुमण्डलीय व्यवस्थाओं तथा अवस्थितिक भिन्नता के कारण जल विभिन्न रूपों में पाया जाता है। जल की तीन अवस्थायें प्रकृति में विद्यमान हैं–

प्रथम, ठोस (Solid) – सूक्ष्म हिमकरणों के रूप में। ''द्वितीय, द्रव (Liquid)–जल बूँदों के रूप में तथा तृतीय, गैस (Gas) जलवाष्प के रूप में। तापमान में परिवर्तन के कारण जल की विभिन्न अवस्थायें भी बदल जाती हैं जो मौसमी प्रतिरूप को नियंत्रित करती हैं। उपर्युक्त तीन दशाओं के मध्य अग्रलिखित छः परिवर्तन क्रम पाये जाते हैं–

(i) ठोस से द्रव – पिघलने के कारण (By Melting)

(ii) द्रव से ठोस – जमने के कारण (By Freezing)

(iii) द्रव से गैस वाष्पीकरण द्वारा (By Evaporation)

(iv) गैस से द्रव संघनन द्वारा (By Condensation)

(v) ठोस से गैस–पिघलने तथा वाष्पीकरण द्वारा (By Melting and Evaporation)

(vi) गैस से ठोस – वाष्प के ठण्डे होने से अर्थात् उर्ध्वपातन द्वारा (By Sublimation) (Hydrosphere) जलमण्डलपृथ्वी का सम्पूर्ण जलीय भाग जलमण्डल कहलाता है, जिसमें द्रव जल,

जलवाष्प, बर्फ (Ice), हिम (Snow) को सम्मिलित किया जाता है। महासागरों, नदियों, झीलों तथा तालाबों, हिम आवरण, हिमनद, हिम क्षेत्रों (Snow fields), भूमिगत क्षेत्र के संतृप्त तथा असंतृप्त भाग तथा भूसतह से ऊपर वायु में विद्यमान जलीय मात्रा जलमण्डल के भाग हैं। अनेक बार वायुमण्डलीय जल को जलमण्डल में सम्मिलित नहीं करते हैं जबकि यह इसका प्रमुख भाग है। जलमण्डल में वर्तमान में

जल		
सम्पूर्ण जल		
महासागर	1,348,000,000	97.39
हिम टोपियाँ, हिमखण्ड, हिमलद	227,820,000	2.01
भूजल एवं मृदा नमी	8,062,000	0.58
झीलें तथा नदियाँ	225,000	0.02
वायुमण्डल	13,000	0.001
कुल योग	13,84,120,000	100.00
शुद्व जल (सम्पूर्ण जल का 2.6 प्रतिशत)		
हिम टोपियाँ, हिमखण्ड, हिमनद	27,818,246	77.23
भूजल, 0–0.8 किमी तक	3,551,572	9.86
भूजल 0.8किमी तक	4,448,470	22.21
मृदा नमी	61,234	0.17
स्वच्छ जलीय झीलें	126,070	0.35
नदियाँ	1,080	0.003
पृथ्वी के जलीकृत खनिज	360	0.001
वयुमण्डल	14,408	0.04
जीवन	1081	0.003
योग	36,020,00	100.00

लगभग 13,84,120,000 घन किमी. जल विभिन्न दशाओं में (सारिणी 11.1) पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा भाग महासागरों में स्थित है। सम्पूर्ण जल मण्डल का 2.6 प्रतिशत भाग शुद्ध जल (Fresh Water) के रूप में पाया जाता है। इसका 77.23 प्रतिशत भाग हिम टोपियों (Ice Caps), हिमखण्डों (Iceberg) तथा हिमनदों (Glaciers) के रूप में है। 22.21 प्रतिशत जल भूजल के रूप में 4 किमी. गहराई तक स्थित है। शेष जल अल्प रूप में मृदा, झीलों, जीवमण्डल तथा वायुमण्डल में पाया जाता है।

महाद्वीपों पर 1,11,100 घन किमी. जल की वर्षा होती है जिसमें से 71,400 घन किमी. वाष्पीकृत हो जाता है तथा शेष 39,700 घन किमी. प्रवाहित हो जाता है। इसी तरह महासागरों पर 3,85,000 घन किमी. जल वर्षा के रूप में प्राप्त होता है, जबकि 4,24,700 घन किमी. जब वाष्पीकृत होता है। जल का यह संतुलन पृथ्वी पर जलीय चक्र द्वारा बना रहता है।

11.4 विश्व स्तर पर सुलभताव जल का वितरण

जलमण्डल में पाया जाने वाला जल पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में वितरित है। इसका अधिकांश भाग (97.39) लवणीय रूप में सागरों में वितरित है जबकि स्वच्छ जल बहुत कम मात्रा में मिलता है। जलवाष्प वायुमण्डल का महत्त्वपूर्ण घटक है जो ऊर्जा चक्र में अपनी भूमिका रखता है। इस प्रकार सामान्यतः जलीय वितरण में धरातलीय, भूमिगत तथा महासागरीय जल को सम्मिलित करते हैं जबकि वायुमण्डलीय जलवाष्प अनेक क्रियाओं को पूर्ण करती है। जल का विश्वव्यापी वितरण जलीय चक्र के माध्यम से पूर्ण सन्तुलित रहता है जिसमें जल वाष्प का अपना भौगोलिक महत्त्व होता है।

सारिणी–11.2प्रकृति में विभिन्न दशाओं में जल का स्थायित्व

स्थान	**आकार (Km^3)**	**1 सप्ताह**
पादप एवं जीव जन्तु	700	1 सप्ताह
वायुमण्डल	13,000	8–10 दिन
नदियाँ	1,700	2 से 4 सप्ताह
मृदा	61,234	2 सप्ताह से 1 वर्ष
झील,भण्डारगृह (Reserviors)आर्द्र भूमि	125,000	वर्षो तक
शैलें	70,000,00	कुछ दिनो से हजारों वर्षो तक
हिम एंव हिमनद	26,000,000	हजारों वर्षो तक
महासागर एंव सागर	13,48,000,000	4000 वर्ष

जल का वितरण प्राचीनकाल से समान रूप में नहीं रहा है। हिमकालों के दौरान यह वायुमण्डलीय नमो तथा सागरीय जल का बड़ा भाग बर्फ बन गया था जो जलवायु परिवर्तन के बाद पुनः द्रव अवस्था में आया। इस प्रकार समय के परिवर्तित रूप में वितरित हुआ जल संसाधन पृथ्वी पर वर्तमान में निम्नलिखित रूपों में मिलता है–

(1) धरातलीय जल (Surface Water)

(2)भूजल (Ground Water)

(3)महासागर (Oceans)

धरातलीय जल (Surface Water)

पृथ्वी के धरातल पर जल राशि स्थिर एवं गतिशील दोनों रूपों में पायी जाती है। जलीय स्वरूप (Forms of Water) के आधार पर भी जल विभिन्न रूपों में मिलता है। उच्च पर्वतीय क्षेत्रों मे हिम टोपियों तथा हिमनदों के रूप में तथा निम्नवर्ती भागों में द्रव अवस्था में मिलता है। धरातलीय जल महाद्वीपीय भागों पर वितरित है। संसार में सात महाद्वीपों में से अण्टार्कटिका महाद्वीप को भौगोलिक स्थिति अन्य से भिन्न है जिस पर दो–तिहाई से भी अधिक स्वच्छ जल हिम के रूप में जमा है जबकि आस्ट्रेलिया में स्थायी हिमक्षेत्र नहीं है। अण्टार्कटिका एवं ग्रीनलैण्ड के अतिरिक्त अन्य स्थलीय भागों में जो हिमराशि पायी जाती है वह हिम रेखा (Snow Line) के ऊपर मिलती है। ऊर्ध्वाधर रूप में हिम रेखा ऊँचाई के साथ सामान्य ताप दर ($6.5^0C/1000^m$.)पर निर्भर करता है। यह दशा सापेक्षिक रूप में भूमध्य रेखा से दूरी द्वारा भी नियन्त्रित होती है।

सारिणी–11.3पृथ्वी के महाद्वीपीय क्षेत्रों का औसत जल सन्तुलन

महाद्वीप	वार्षिक वर्षा(सेमी.)	वार्षिक वाष्पीकरण (सेमी.)	वार्षिक प्रवाह (सेमी.)
एशिया	60	31	29
अफ्रीका	69	43	26
उत्तरी अमेरिका	66	32	34
दक्षिणी अमेरिका	163	70	93
यूरोप	67	39	25
अण्टार्कटिका	16	3	14
आस्ट्रेलिया	47	42	5
कुल स्थलीय क्षेत्र	73	42	31

हिम रेखा की ऊँचाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न मिलती है। यह विषुवत् रेखा पर 5600 से 6000 मीटर पर, हिमालय में 4300 से 5300 मीटर पर, आल्पस में 3000 मीटर पर, दक्षिणी अलास्का तथा नार्वे में 1666 मीटर पर तथा दक्षिणी चिली एवं दक्षिणी ग्रीनलैण्ड में 666 मीटर पर मिलती है इस प्रकार भूसतह पर जल विभिन्न दशाओं में वितरित है जिसका सामान्य विवरण निम्नलिखित है–

1. नदियाँ (Rivers)

धरातलीय जल स्रोतों में नदियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये उच्च पर्वतीय क्षेत्रों, हिमाच्छादित चोटियों, झीलों आदि से निकलकर विस्तृत भूभाग में प्रवाहित होती है। स्वतन्त्र प्रवाह के अतिरिक्त अनेक स्थानों से अन्तः प्रवाह (Interflow), अन्तःस्रवण (Percolation) द्वारा प्राप्त तथा भूजल के झरनों (Springs), प्राकृतिक मृदा लाइनों तथा निष्पन्दन (Seepage) द्वारा नदियों को प्राप्त होता है।

इस प्रकार विभिन्न धारायें परस्पर मिलकर एक नदी का रूप लेती हैं तथा अन्त में किसी सागर में गिर जाती हैं। कुछ नदियाँ झीलों में भी गिरती हैं जैसे वोल्गा एवं यूराल नदियाँ कैस्पियन सागर में गिरती हैं जबकि कुछ नदियाँ अन्तः स्थलीय भी होती हैं। हिमालय से निकलने वाली घग्घर नदी थार के रेगिस्तान में विलीन हो जाती है। नदियों का प्रवाह अपवाह बेसिन के क्षेत्रफल, अपवाह बेसिन की आकृति, कुल वर्षा, वर्षा की तीव्रता तथा अपवाह बेसिन की सतही दशाओं द्वारा नियन्त्रित होता है।

निष्पन्दन एवं अन्तःस्रवण (Seepage and Percolation)

भूमिगत जल का किसी भ्रंश से होकर भूसतह पर मन्द गति से प्रवाहित (रिसाव) होना निष्यन्दन कहलाता है जबकि शैलकणों या छिद्रों में जल का परागमन अन्तः स्पन्दन (Infiltration) कहलाता है। दूसरी ओर मृदा एवं शैल संहति (Rock Mass) में उपस्थित रन्ध्रों, भ्रंशों तथा विदरों (Fissures) से होकर नीचे की ओर बहने की गति को अन्तः स्रवण (Percolation) कहते हैं। इसके साथ अनेक घुलनशील खनिज भी नीचे चले जाते हैं तो इसे निक्षालन (Leaching) कहते हैं। जल की यह गति भूमि के नीचे प्राकृतिक रूप में विकसित द्रवस्थैतिक दाब के प्रभाव मेंहोता है।

2. झीलें (Lakes)

झीलें पृथ्वी तल पर पाये जाने वाली प्रमुख स्थिर जल राशियाँ हैं 1 झीलें जलीय गुणवत्ता एवं प्रकृति के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं। इस दृष्टि से अलवणीय या स्वच्छ जलीय झीलें, लवणीय या खारे पानी की झीलें तथा हिम झीलें प्रमुख हैं।

सारिणी –11.4 : विश्व की प्रमुख नदियाँ

क्र. सं.	नाम	उद्गम	अन्त	लम्बाई (कि.मी.)
1.	नील नदी	युगाण्डा कीनिया–तंजनिया	भूमध्यसागर	6695
2.	अमेजन नदी	लैगो बलिफेरी	दक्षिणी अटलांटिक महासागर	6570
3.	यांग्टीसीक्यांग (चांग जियांग)	तिब्बत का पठार	पूर्वी चीन सागर	6300
4.	मिसीसिपी	द.मोन्टाना(सं.रा. अमेरिका)	मैक्सिको की खाड़ी	6020
5.	येनीसी	मंगोलिया	करा सागर	5540
6.	ओब–इर्तिश	मंगोलिया	ओब की खाड़ी	5600
7.	ह्वांगहो	जारिंग नोर (चीन)	पीला सागर	5600

8.	पराना	ब्राजील का पठार	रियो–डि–ला प्लास्टा	5464
9.	जायरे (कांगो)	जांबिया एवं जायरे का सीमावर्तीक्षेत्र	द. अटलांटिक	4500
10.	आमूर	खिंगन श्रेणी	ओखोटस्क सागर	4416
11.	लीना	रूस का पठार	लैप्टेव सागर	4400
12.	मीकांग	तिब्बत का पठार	द. चीन सागर	4425
13.	मेकेन्जी	टाट्लाई झील (राकी पर्वत)	ब्यूफोर्ट सागर	4240
14.	नाइजर	कीनिया	अटलांटिक महासागर	4185
15.	डार्लिग	ग्रेट डिवाइडिंग रैंज (क्वींसलैण्ड)	एनकाउंटर खाड़ी	3750
16.	वोल्गा	रूस	कैस्पियन सागर	3685
17.	दजला–फरात	पूर्वी तुर्की	फारस की खड़ी	3600
18.	जाम्बेजी	जाम्बिया	द.हिन्द महासागर	3540
19.	यूक्रेन	ब्रिटिश कोलम्बिया	बेरिंग सागर	3185
20.	सेंटल लारेंस	मिनसोटा(यू.एस.ए.)	उ. अटलांटिक महासागर	3130
21.	रियो ग्रांडं	सानजुआन श्रेणी	मैक्सिको की खाड़ी	3033
22.	सिन्धु नदी	तिब्बत (मानसरोवर)	अरब सागर	3180
23.	ब्रहम्पुत्र	तिब्बत (मानसरोवर)	बंगाल की खाड़ी	2900
24.	डेन्यूब	ब्लैक फॉरेस्ट (जर्मनी)	काला सागर	2850
25.	साल्वीन	तिब्बत	मर्तबान की खाड़ी	2810

26.	ओरोनिको	वेनेजुएला	अटलांटिक महासागर	2740
27.	सीक्यांग	यूनान पठार	द. चीन सागर	2650
28.	आमू दरिया	पामीर एवं थ्यानशान पर्वत (ताजीकिस्तान)	अरल सागर	2575
29.	मर्रे	माउँट कोंसिस्को	डार्लिग नदी में (वेंटवर्थ, आस्ट्रेलियन आल्पस)	2575
30.	यूराल नदी	यूराल पर्वत	कैस्पियन सागर	2540
31.	गंगा नदी	गंगोत्री (हिमालय पर्वत)	बगाल की खाड़ी	2510

नील नदी नीली नील एवं श्वेत नील के रूप में निकलती हैं, जिनके उद्‌गम स्त्रोत (क्रमशः) इसकी इयोपिया की टाना झील (नीली नील) तथा विक्टोरिया की झील (श्वेत नील) है ये दोनों खार्तूम (सूडान) के मास मिलती हैं। श्वेत नील इसका प्राथमिक स्रोत है।फरात नदी पूर्वी टकी से निकलती है तथा दजला मध्यवर्ती टर्की से निकलकर बसरा (इराक) के निकट फरात में मिलती है फिर ये दोनों शत अल अरब नाम से फारस की खाड़ी के ऊपरी मात्रा में गिरती हैं। दजला की लम्बाई 1600 तथा फरात की 3600 किमी है।

क. सं. (क्षेत्रफल के अनुसार)	**नाम**	**स्थिति / देश**	**क्षेत्रफल (कि.मी.^{2})**	**अधिकतम गहराई (मी.)**
1.	कैस्पियन सागर	रूस, कजाखस्तान, ईरान, अजरबेजान, तुर्कमेनिस्तान	31000	980
2.	सुपीरियर झील	कनाड़ा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका	82100	406
3.	विक्टोरिया झील	यूगान्डा,कीनिया, तंजानिया	68800	80
4.	अरल सागर	कजाखस्तान,उज्बेकिस्तान	66458	68

5.	हूरन झील	कनाडा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका	60000	229
6.	मिशिगन झील	संयुक्त राज्य	58000	282
7.	टैंगानिका	कांगो(जायर),मलावी, मोजाम्बिक	34000	1435(2)
8.	ग्रेट–बियर	कनाडा	31732	445
9.	बैकाल झील	रूस	31500	1637(1)
10.	न्यासा	मलावी, तंजामियां मोजाम्बिक	30500	70614
11.	ग्रेट–स्लेव झील	कनाडा	28438	614
12.	ईरी	कनाडा एंव संयुक्त राज्य अमेरिका	25720	64
13.	विनीपेग	कनाडा	24530	28
14.	ओटेरियो	कनाडा एवं अमेरिका	19200	244
15.	लैडोगा	रूस	18400	225
16.	बाल्खश	कजाखस्तान	17000	26
17.	चाड	नाइजर, नाइजीरिया द.कैमरून	16300	8
18.	माराकैबो	वेनेजुऐला	14343	50
19.	ओनेगा	रूस	9600	124
20.	आयर	आस्ट्रेलिया	9500	20
21.	टिटिकाका	पेरू, बोलीविया	8100	304
22.	अथाबास्का	कनाडा	8020	60

23.	गार्डनर	आस्ट्रेलिया	7000	—
24.	रेंडियर झील	कनाडा	6330	—
25.	इसिक कुल	रूस	6200	702(5)
26.	रिसेह(डर्मिया)	ईरान	5930	—
27.	टोंरेंस झील	आस्ट्रेलिया	5776	—
28.	वेनर्न	स्वीडन	5546	89
29.	विनियेगोइस	कनाडा	5447	12
30.	मबूतो–सीसी –सेको (अल्बर्ट झील)	कांगो एवं यूगांडा	5300	48

के अनुसार, पर्वतीय, पठारी तथा मैदानी झीलें होती हैं। उत्तरी– पश्चिमी रूस की लाडोगा, ओनेगा, अरब सागर तथा बेकाल आदि मैदानी भागों की तथा मध्य एशिया की कोरोनार, अफ्रीका की टाना, दक्षिणी अमेरिका की टीटीकाका पर्वतीय व तिब्बत को मानसरोवर झीलें महत्त्वपूर्ण हैं।

झीलों की उत्पत्ति हिमनदों से, ज्वालामुखी से भ्रंशन क्रिया तथा सम्पीडन आदि से होती है। इस क्रम में पूर्वी अफ्रीका की रिफ्ट घाटी में रूडोल्फ, अल्बर्ट तथा टंगानिका ताजा पानी की सबसे लम्बी तथा बेकाल सबसे गहरी झील है। केस्पियन सागर लवणीय जल की सबसे लम्बी झील है। सांभर तथा चिल्का भारत की खारे पानी की विशाल झीलें हैं। महाराष्ट्र की लोनार झील क्रेटर झील है।

रूस की ब्रातस्क (Bratask) झील (बाँध) विश्व की सबसे बड़ी मानव निर्मित झील है, जिसे अंगारा घाटी में बनाया गया है। आस्ट्रेलिया की आयर झील (Eyre Lake) पूर्णतया शुष्क झील है, जिसकी तली में लवणों की परत जमा है। मृतसागर (इजराइल एवं जोर्डन) एक अत्यधिक लवणीय (238)झील है, जो सागर तल से 384 मीटर नीचे है। झीलों के निर्माणकारी प्रक्रम के अनुसार हिमानीकृत झीले स्केण्डेनेविया (नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, डेनमार्क) प्रदेश में उत्तरी कनाडा, इंग्लैण्ड का लेक डिस्ट्रिक्ट, इटिलियन आल्पस, हिमालय पर्वत आदि में अधिक मिलती है। न्यूयार्क राज्य की फिंगर झीलें (Finger Laks) ऐसी ही झीलें हैं। इसी प्रकार घुलन क्रिया से निर्मित झीलें यूगोस्लाविया, अल्बानिया क्षेत्र में मिलती हैं।

महान् झीलें (Great Lakes)

उत्तरी अमेरिका की पाँच विशाल झीलों की एक श्रृंखला महान् झीलों के नाम से जानी जाती है जो संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाड़ा में स्थित हैं। सुपीरियर, मिशिगन, ह्यूरन, इरी तथा ऑटेरियो आदि पाँचों झीलें एक–दूसरे से परस्पर अतर्सम्बद्ध रूप में फैली हुई हैं। सुपीरियर झील इनमें सबसे बड़ी है तथा ओंटेरियो सबसे छोटी झील है। महान् झीलें लगभग 3,55,650 वर्ग किमी. क्षेत्रफल में

फैली हुई हैं। इन झीलों में स्वच्छ ताजा जल पाया जाता है। सुपीरियर झील विश्व की सबसे बड़ी स्वच्छ जल की झील है, जिसका क्षेत्रफल 82,100 वर्ग किमी. है। संयुक्त राज्य अमेरिका के मिनिसोटा, विस्कॉन्सिन तथा मिशिगन राज्यों में सुपीरियर झील के कुल क्षेत्रफल का 53,600 वर्ग किमी. क्षेत्र पाया जाता है। इस झील का शेष क्षेत्र कनाड़ा में फैला हुआ है।

भूगोलवेत्ताओं के मतानुसार इन महान् झीलों का निर्माण आज से लगभग 15,000 वर्ष पूर्व विस्तृत हिमानियों की बर्फ के पिघलने के कारण हुआ। वर्तमान समय तक इन झीलों के आकार में पृथ्वी की विभिन्न आकस्मिक शक्तियों के कारण परिवर्तन हो गया है। वर्तमान समय में आन्तरिक जल परिवहन के रूप में इन झीलों का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। सुपीरियर एवं ह्यूरन के मध्य सू (Soo) तथा इरी एवं ओण्टोरियो के मध्य वैलेण्ड नहर बनाकर संयोजित किया गया है। इन झीलों के तट पर अनेक नगर एवं बन्दरगाह विकसित हो गए हैं। परिवहन एवं जल की उपलब्धता के कारण यहाँ इस्पात उत्पादक केन्द्र स्थापित हो गए हैं इरी झील के तट पर वफैलो, क्लीवलैण्ड, डेट्रायट एवं मिशिगन झील के तट पर शिकागो, गैरी आदि प्रमुख औद्योगिक नगर तथा मिलवाउकी प्रमुख बन्दरगाह तथा ओण्टेरियो टोरण्टो बन्दरगाह पर विकसित हो गए हैं। सुपीरियर झील के तट पर स्थित डुलुथ एवं मिनीसोटा प्रमुख इस्पात उत्पादक केन्द्र हैं।

सारिणी 11.6 उत्तरी अमेरिका की महान् झील

झील का नाम	क्षेत्रफल	गहराई (मीटर में)	
		सगर तल से	अधिकतम
सुपीरियर	82,100	183	406
मिशिगन	58,000	176	281
ह्यूरन	60,000	177	229
इरी	25,720	174	64
ओण्टेरियो	19,200	45	244

इरी तथा ओण्टेरियो झीलों के मध्य प्रवाहित नियाग्रा नदी पर विश्व प्रसिद्ध नियाग्रा प्रपात स्थित है, जो जल शक्ति का प्रमुख स्रोत है।

नहरें (Canal)

परिवहन, सिंचाई तथा जल–विद्युत उत्पादन के लिए नहरों का निर्माण करते हैं, जिनमें धरातलीय जल भण्डारित रहता है। ये नहरें राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की होती हैं, जो दो नदियों, खाड़ियों या समुद्रों की दूरी कम करने के लिए भी बनायी जाती हैं। भारत में आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु की बकिंघम नहर (640 किमी.) तथा कम्बरजुआ नहर महत्त्वपूर्ण है। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की नहरें निम्नलिखित हैं–

1. स्वेज नहरें (Suez Canal) यह विश्व की सबसे बड़ी जहाजी नहर है, जो भूमध्य सागर को लाल सागर से जोड़ती है। इसका निर्माण कार्य फ्रान्स के अभियन्ता फर्डिनेण्ड डिलेसेप्स के निर्देशन में

1859 से प्रारम्भ होकर सन् 1869 में पूर्ण हुआ। इस नहर की लम्बाई 165 किमी., चौड़ाई 60 मीटर तथा न्यूनतम गहराई 10 मीटर है। इसके सबसे उत्तर में भूमध्यसागर से संलग्न मैन्जाला झील है जिसके उत्तरी तट पर पोर्ट सईद है। इसकी दिशा में लम्बाकार ग्रेट बिटर तथा लिटिल बिटर झीलें हैं, जो लाल सागर के समीप हैं।

2. पनामा नहर (Panama Canal)–इसका निर्माण कार्य सन् 1904 से आरम्भ होकर 1914 में समाप्त हुआ। यह अटलांटिक महासागर को प्रशान्त महासागर से जोड़ती है।यह नहर 82 किमी. लम्बी, 12 मीटर गहरी एवं 90 मीटर चौड़ी है। इसमें तीन लॉक अवरोधक फाटक है।– गाटून, टैड्रिमिग्वल व मिराफ्लोर्स इसी नाम से इसके मार्ग में तीन झीलें है।

3. सू नहरें (Soo Canal)–यह नहर संयुक्त राज्य अमेरिका में सुपीरियर झील को ह्यूरन झील से मिलाती है।

4. कील नहरें (Kiel Canal)–यूरोप में यह नहर उत्तरी सागर को बाल्टिक सागर से जोड़ती है।

5. हन्सा नहरें (Hansa Canal)–यह रूर कोयला क्षेत्र को हैम्बर्ग नामक नदी पत्तन से जोड़ती है।

6. वैलेण्ड नहरें (Welland Canal)–यह कनाडा में उत्तरी अमेरिका इरी एवं ओण्टेरियो झीलों को जोड़ती है।

7. डार्टमण्ड–एम्स नहरें (Dortmond-Ems Canal)–यह नहर राइन एवं एम्स नदियों को मिलाती है।

8. वेसर–एल्ब नहरें (Vleser-Elbe Canal)–यह नहर वेसर नदी पर स्थित मिन्डेन नगर को मिलाती है।

9. मैनचेस्टर नहरें (Manchester Ship Canal)–यह मैनचेस्टर व लिवरपूल नगरों को मिलाती है।

10. फेड्रिक–विलियम नहरें (Manchester Ship Canal)–यह ओडर नदी को स्प्री नदी से जोड़ती है।

11. ब्रोम्बर्ग नहरें (Bromberg Canal)– यह ओडर नदी की सहायक मेज नदी को विस्चुला नदी से जोड़ती है।

12.फिनो नहरें (Fino- Canal)– यह ओडर नदी से बर्लिन को जोड़ती है।

13. गोटा नहरें (Gota Canal)– गोटनबर्ग को स्टॉकहोम

भूजल (Ground Water)

भूजल के स्रोत(Sources of Ground Water)–भूजल पृथ्वी तल के ऊपर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होकर भूमिगत होने वाला जल है जो धरातल के अन्दर पाये जाने वाले रन्ध्रों (Pores) से पारगम्य (Permeable) शैलों द्वारा भूमिगत होता है। यह निम्नलिखित स्रोतों द्वारा प्राप्त होता है–

(i) आकाशी जल (Meteroric Water) – यह भूजल का प्रधान स्रोत है। यह जल वर्षा एवं हिम के रूप में प्राप्त होता है।तालाबों, झीलों, नदियों तथा सागरों का जल वाष्पीकृत होकर पुनः वर्षा द्वारा धरातल को प्राप्त होता है। जल वर्षा एवं हिम के पिघलने से प्राप्त इस जल को आकाशी या उल्का जल कहते हैं। यह जल भूसतह से शैल सन्धियों, छिद्रों व दरारों (Fissures) से रिसकर (Seepage) नीचे की ओर पहुँचता है जो नीचे स्थित अपारगम्य शैलों पर भूजल के रूप में संग्रहीत होता है।

(ii) सहजात जल (Connate Water)– सागरों एवं झीलों में निक्षेपित अवसादी शैलों के छिद्रों तथा

सुराखों (Cavities) में स्थित जल सहजात जल कहलाता है जिसे अवसाद या तलछट जल भी कहते हैं। यह भूजल का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

(iii) मैग्मा जल (Magmatic Water) ज्वालामुखी क्रिया के कारण तप्त मैग्मा शैलों में प्रवेश करता है तो इसके वाष्पीय कण संघनीत या घनीभूत होकर जल में परिवर्तित हो जाते हैं जिसे मैग्मा जल कहते हैं।

हिमक्षेत्रों के रूप में धरातलीय जल राशियाँ(Surface Water bodies as Snow Fields)– धरातल पर नदियों, झीलों में पाये जाने वाले द्रवरूपी जल के अतिरिक्त हिम के रूप में भी स्थलीय भागों पर एक बड़ी जल राशि पायी जाती है। यह जलराशि उत्तरी ध्रुव व अण्टार्कटिका पर पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त उच्च पर्वतीय क्षेत्रों पर स्थित हिम टोपियाँ तथा हिमनद भी प्रमुख जल राशियाँ हैं।

11.5 भूजल का संचयन (Storage of Ground Water)

भूसतह पर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जल नीचे स्थित शैलों के छिद्रों, सुराखों (Cavities), दरारों (Fissures) तथा संस्तरण तलों (Bedding Planes) में संग्रहीत होकर भूजल का रूप लेता है। इसका संचयन शैलों की संरचना पर निर्भर करता है। जल के नीचे की ओर रिसकर शैल रन्ध्रों में एकत्रित होने की शैलों का संतृप्त होना (Saturation of rocks) कहलाता है। जब शैल पूर्णतः जलयुक्त हो जाती हैं तो उसे संतृप्त शैल (Saturated Rocks) कहते हैं। धरातल के नीचे संतृप्त शैल वाले भाग को संतृप्त मण्डल (Saturated Zone) कहते हैं तथा इस संतृप्त मण्डल का ऊपरी तल भौम जलस्तर या जल तल (Water Table) कहलाता है। स्थिति के अनुसार धरातल के नीचे स्थित है।

भूजल तीन मण्डलों में पाये जाते हैं जो निम्नलिखित हैं–

(i) असंतृप्त मण्डल (Non Saturated Zone) – भूजल का सबसे ऊपरी भाग असंतृप्त मण्डल कहलाता है जिसके शैल छिद्रों में वायु भरी रहती है। अतः इसे वातन क्षेत्र (Zone of Areation) कहते हैं। इस क्षेत्र में केवल वर्षाकाल में ही जल उपस्थित रहता है। शेष समय में शैलें जल से संतृप्त नहीं हो पाती हैं।

(ii) संतृप्त मण्डल(Saturated Zone)– असंतृप्त मण्डल से रिसकर जल मध्यवर्ती भाग में पहुँचकर शैल छिद्रों को पूर्णतया जलयुक्त कर देता है। फलस्वरूप जल स्तर ऊँचा हो जाता है। इस मण्डल को वर्षाकाल में सर्वाधिक जल मिलता है जबकिशुष्क ऋतु में जल तल पुनः नीचा हो जाता है। इस प्रकार वर्षाकाल में सबसे ऊँचे तथा शुष्क काल में सबसे नीचे भूजल स्तर के मध्यवर्ती भाग को अन्तरायिक संयुक्त रहने वाले क्षेत्र को स्थायी संतृप्त मण्डल (Zone of Permanent Saturation) कहते हैं। संतृप्त मण्डल को अधोभौम जल या फ्रीटिक मण्डल (Phreatic Zone) भी कहते हैं।

(iii) चट्टान प्रवाह मण्डल (Rock Flowage Zone)– भूसतह के नीचे एक ऐसा निश्चित क्षेत्र आता है जहाँ शैल भार बढ़ने से शैल रन्ध्र बन्द हो जाते हैं जिस कारण जल रिसकर नीचे नहीं जा पाता। नीचे जल न रिसने के कारण जल एकत्रित हो जाता है। यह एकत्रित जल जलभृत या जलभरा (Aquifer) कहलाता है। यह जल धरातल से 16 किमी. की गहराई पर माना जाता है। इस प्रकार अधिक गहराई पर विद्यमान यह जल प्रवाहित होता है तथा इस क्षेत्र को शैल प्रवाह मण्डल कहते हैं।

11.6 भूजल के स्रोत (Sources of Ground Water)

भूजल पृथ्वी तल के नीचे स्थित अपरागम्य शैलों के संस्तरों की स्थिति के कारण विभिन्न मण्डलों के रूप में उपस्थित रहता है । भूमिजल के ऊपरी स्तर को भौम जल स्तर कहा जाता है

तथा जिन शैलों से होकर भूजल प्रवाहित होता है उसे जलभरा (Aquifer) कहा जाता है। दो जलभरों के मध्यवर्ती अपारगम्य स्तर को मितजलभृत (Aquiclude) कहते हैं। यहाँ जल इतनी तीव्रता से संचरित नहीं हो सकता कि जल संभरण किसी जलकूप या झरने के लिए पर्याप्त हो सके। स्पष्ट है कि भूसतह की संरचना की भिन्न–भिन्न प्रकृति के कारण भूजल विभिन्न स्थानों पर विभिन्न मात्रा में मिलता है जो निम्नलिखित स्रोतों से धरातल पर प्रकट होता है–

(1) स्रोत या झरना (Springs)–

भूमिगत जल का जो भाग धरातल पर किसी प्राकृतिक छिद्र से निकलता है तो जलस्रोत झरना या चश्मा कहलाता है। यह शैल संस्तरों की संरचना के अनुसार संचरित होते हैं। वर्षा जल पारगम्य शैलों से होकर रिसता हुआ भूमिगत होता है लेकिन जब संचरण मार्ग में अपारगम्य शैलें विद्यमान होती हैं तो जल नीचे की ओर गति नहीं कर पाता तथा इन अपारगम्य शैलों के सहारे ऊपर की ओर प्रवाहित हो जाता है तथा यही जल स्रोत या झरने के रूप में धरातल पर प्रकट होता है। यह जल पर्वतीय या ढाल (पारगम्य) शैलों से एकत्रित जल स्रोत के रूप में भूसतह पर फूट पड़ता है। ये जल स्रोत जल के स्थायित्व के आधार पर दो प्रकार के होते हैं–

(i) स्थायी स्रोत (Permanent Spring)–जब भूसतह के नीचे अपारगम्य शैलें झुकी अवस्था में होती हैं तथा जलस्तर ऊँचा होता है तो भूजल को ढाल मिल जाने से स्थायी रूप में प्रवाहित होता रहता है।

(ii) अस्थायी स्रोत (Temporary Spring)–ये भूसतह के नीचे असमान रूप में पाये जाने वाले जलस्तर के कारण बनते हैं जो वर्षा पर निर्भर करते हैं। जल की प्रकृति के आधार पर स्रोत निम्न प्रकार के होते है।

(i) साधारण जल स्रोत (Common Springs)– ये जलस्रोत साधारण गहराई वाले होते हैं जिनसे स्वच्छ, शीतल पेयजल निकलता है।

(ii) तापीय स्त्रोत (Thermal Springs)–ये अधिक गहरे होते हैं जिनसे गर्म जल निकलता है। कैलिफोर्निया पार्क में ऐसे स्रोत मिलते हैं।

(iii) उष्ण स्रोत (Hot Springs)– इन स्रोतों का ताप क्वथनांक (Boiling Point) से भी उच्च रहता है क्योंकि ये काफी गहरे होते हैं। भारत में हिमाचल प्रदेश का कुल्लू तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का यलोस्टन नेशनल पार्क में 400 उष्ण स्रोत स्थित हैं।

(iv) खनिज जलस्रोत (Mineral Springs)– ये स्रोत विशेषतः ज्वलामुखी क्षेत्रों में मिलते हैं जिनसे गन्धक, लवण आदि खनिजों से मिश्रित जल निकलता है जो औषधीय महत्त्व का होता है। उत्तराखण्ड में देहरादून के समीप सहस्रधारा, उड़ीसा का अतारी, छिन्दवाड़ा में इसी प्रकार के स्रोत मिलते हैं।

(2) कूप (Well)–

भूसतह के नीचे स्थित संयुक्त जल क्षेत्र का जल प्राप्त करने के लिए पारगम्य शैलों में कुएँ खोदे जाते हैं जिनके नीचे अपारगम्य शैलें होने से जल भरा रहता है। वर्षा पर आधारित कुएँ कम गहरे होते हैं जो ग्रीष्मकाल में शुष्क रहते हैं। अधिक गहरे कुएँ लम्बे समय तक जलापूर्ति में सहायक होते हैं।

(3) पाताल तोड़ कुएँ या उत्स्रुत कूप (Artesian Wells)– पातालतोड़ कुए ऐसे प्राकृतिक जलस्रोत होते हैं जिनसे स्वतः ही धरातल पर जल प्रकट होता है। इसके निर्माण के लिए दो प्रकार की अनुकूल संरचना होनी चाहिए। प्रथम अभिनतीय (Synclinal) या उल्टी गुम्बदनुमा संरचना तथा

द्वितीय एकदिग्नत संरचना (Monoclinal Structure) उत्सुत कूप का जल जिस मण्डल से ऊपर की ओर संचारित होता है उसे जलभृत (Aquifer). कहते हैं। उत्सुत कूप के लिए जलभृत के ऊपर तथा नीचे दोनों ओर अपारगम्य शैल होनी चाहिए, जिसकी प्रकृति मितजलभृत (Aquiclude) के समान होती है। इसकी निचली सतह जलीय रिसाव को रोकती है तथा ऊपरी सतह जल को वाष्पीकरण से बचाती है। जलभृत के सतह पर खुलने वाले भाग को अपवाह क्षेत्र कहते हैं जहाँ से जल जलभृत के पारगम्य स्तर में प्रवेश करके केन्द्रीय भाग में पहुँचता है तो धीरे–धीरे पारगम्य स्तर के जल से भरने पर जलस्थैतिक दाब शीर्ष (Hydrostatic Pressure Head) निर्मित हो जाता है। अब स्थिति यह बन जाती है कि ऊपरी सतह पर कूप जलभूत की गहराई तक खोदा जाये तो जल स्थैतिक दाब के कारण जलभृत का जल स्रोत के रूप में स्वतः भूसतह पर प्रकट होने लगेगा, जिससे पाताल तोड़ कुएँ का निर्माण होगा।विश्व में सर्वाधिक पाताल तोड़ कुएँ आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं। क्वींसलैण्ड, न्यू साउथवेल्स तथा दक्षिणी आस्ट्रेलिया में लगभग 6,00,000 वर्ग मील क्षेत्र में इनका विस्तार है। ग्रेट ब्रिटेन के लन्दन क्षेत्र, रूस के मास्को आर्टीजन बेसिन, यूक्रेन के नीपरडोट्स गर्त आदि क्षेत्रों में भी पाताल तोड़ कुएँ मिलते हैं।

(6) गीजर (Geysir)–

आइसलैण्ड की भाषा में गोसिर (Gusher) शब्द का अर्थ 'फुहार छोड़ने वाला' (Sponter) होता है। होम्स के अनुसार, ''गीजर गर्म पानी के स्रोत होते हैं, जिनसे कुछ समय के अन्तराल पर उष्ण जल एवं वाष्प तीव्रता से निकलती रहती है।'' इस जल का तापमान 75°C – 90°C तक होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के वायोमिंग राज्य के यलोस्टन नेशनल पार्क में विश्व प्रसिद्ध 'ओल्ड फेथफुल' सहित 100 गीजर हैं। आइसलैण्ड, काकेशस पर्वत तथा न्यूजीलैण्ड में भी कई गीजर मिलते हैं। सोहना (हरियाणा), राजगिर (राजगिर पहाड़ियाँ), पूगा घाटी (लद्दाख), मणीकर्ण (हिमाचल प्रदेश) तथा अनन्तनाग (कश्मीर) में भी गीजर मिलते हैं।

महासागर (Oceans)

पृथ्वी का 70.87 प्रतिशत भाग जलीय है जिसका 97.39 प्रतिशत भाग महासागरों के रूप में विद्यमान है जिसमें कुल 13,48,000,00 धन किमी. जल पाया जाता है। इस प्रकार पृथ्वी पर इतने विशाल जलीय भाग के कारण विद्वान इसे जलीय गृह (Water Planet) भी कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में 40 प्रतिशत भाग

नाम	क्षेत्रफल (वर्ग किमी.^{2})	औसत गहराई (किमी.^{3})	गहरा स्थान (मीटर में)
प्रशान्त महासागर	16,53,84,000	3940	मेरीयाना ट्रेंच (11033)*
अटलांटिक महासागर	8,22,17,000	3844	प्यूर्टोरिको ट्रेंच (8605)

हिन्द महासागर	7,34,81,000	3840	डायमेण्टीना ट्रेंच (8047)
आर्कटिक(उध्रुमहासागर)	1,40,56,000	1117	यूरेशियन बेसिन (5450)
विश्व		3740**	मेरीयाना ट्रेंच (11033)

पर जल तथा 60 प्रतिशत भाग पर स्थल है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध के 81 प्रतिशत भाग पर जल है जिस कारण दक्षिणी गोलार्द्ध को जलीय गोलार्द्ध (Water Hemisphere) कहा जाता है।महासागरों में सबसे बड़ा प्रशान्त महासागर है जिसमें विश्व का 46.91 प्रतिशत जलीय भाग विद्यमान है जबकि अटलांटिक महासागर में 23.38 प्रतिशत तथा हिन्द महासागर में 20.87 प्रतिशत जल उपस्थित है। इन तीनों महासागरों का जल लवणीय है। इनके अतिरिक्त उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव महासागरों में पाये जाने वाले जल का अधिकाशं भाग हिम के रूप में विद्यमान है। हिम के क्षेत्र के रूप में आर्कटिक महासागर कुल जलीय क्षेत्र के 3.97 प्रतिशत भाग पर आवृत्त है।

प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean)–

प्रशान्त महासागर पृथ्वी के धरातल का 1/3 भाग को घेरे हुए है। यह त्रिभुज की आकृति में फैला हुआ है। इसकी औसत गहराई 3940 मीटर है। इस महासागर के प्रमुख सीमान्त सागरों में बेरिंग, ओखोटस्क, जापान सागर, चीन सागर, सुलू सागर, पीला सागर, बांदा सागर, कैलीफोर्निया, एल्यूशियन सागर आदि हैं। प्रशान्त महासागर में पूर्वी भाग में पूर्वी शैल्फ लगभग 80 किमी. तथा पश्चिमी शैल्फ 150 से 1500 किमी. चौड़ी है। इस शैल्फ पर जापान महासागर, पीत सागर आदि स्थित हैं। एलबेट्रास पठार मुख्य कटक है। इसके अलावा गाल पागोस, न्यूजीलैण्ड कटक, नास्का कटक तथा हवाई मारको नीपर आदि हैं। प्रशान्त महासागर में विश्व के महासागरों का सबसे गहरा स्थान मेरियाना ट्रेंच स्थित है, जिसकी गहराई 11033 मीटर है। एल्यूशियन, क्यूराइल, मेरियाना, फिलीपिन्स, नेरो, टोंगा, चिली, रेक्यू ब्रुक, बेली तथा प्लानेट आदि प्रमुख गर्त हैं।

अटलांटिक महासागर (Atlantic Ocean)–

इसका आकार अंग्रेजी के Sअक्षर के सदृश्य है। इसका क्षेत्रफल 8.2 करोड़ वर्ग किमी. है। यह प्रशान्त महासागर का 1/2 हैं। पूर्व में यह यूरोप और अफ्रीका तथा पश्चिम में उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका द्वारा घिरा हुआ है। इसके तटों में ग्रांड बैंक, जार्ज बैंक, सेंट पियेर बैंक, सेविल द्वीप बैंक तथा डॉगर बँक प्रमुख हैं। इसका एक चौथाई भाग 1000 मीटर से भी कम गहरा है। इसकी औसत गहराई 3844 मीटर है। आन्ध्र महासागर के प्रमुख सीमान्त सागर बाल्टिक महासागर, उत्तरी सागर, रूम सागर, काला सागर, एजियन सागर, एड्रियाटिक सागर, बेफिन की खाड़ी, हड्सन की खाड़ी, मैक्सिको की खाड़ी एवं कैरीबियन सागर आदि हैं। इन सागरों में कैरीबियन सागर की गहराई 8385 मीटर है, जो सबसे अधिक गहराई है। इसके मुख्य गर्त में प्यूटोरिको, नरेश गर्त, केमन गर्त, साउथ सैंडविच गर्त एवं रोमांश गर्त (Romanche Deep) प्रमुख हैं। लेब्रेडोर, केपवर्डे, स्पेनिश, कनारी, अंगोला, सियरा लियोन, गिनी, ब्राजील, अगुलहास आदि बेसिन हैं।

हिन्द महासागर (Indian Ocean)–

हिन्द महासागर • क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का तीसरा बड़ा महासागर है। इसका रह क्षेत्रफल 7.34.81000 वर्ग किमी. है, जो महासागरों के कुल क्षेत्रफल का 20% भाग है। हिन्द महासागर का 60% भाग 4000 से 6000 मीटर गहरा है। इसकी औसत गहराई 3840 मीटर है। इसमें अनेक श्रेणियाँ पायी जाती हैं, जिनसे यह महासागर तीन भागों में विभक्त हो गया है–

(i) अफ्रीका वाला भाग,

(ii) आस्ट्रेलियाई भाग और

(iii) अण्टार्कटिका वाला भाग

मध्य महासागरीय श्रेणियों को अनेक भ्रंश क्षेत्र काटते हैं, जिनमें कुछ बड़े हैं। यहाँ अत्यधिक गहरे गर्त का अभाव है। जावा के निकट सुण्डा गर्त महत्त्वपूर्ण गर्त है, जिसकी गहराई 7450 मीटर है। अन्य गर्ते व बेसिनों में ओमान, अरब, सोमाली, दक्षिणी– पश्चिमी मेडागासर, नेटाल, अगुलहास आदि उल्लेखनीय हैं। इसके सीमान्त सागरों में बंगाल की खाड़ी अदन की खाड़ी, अण्डमान सागर, ओमान, कच्छ तथा कैम्बे की खाडियाँ मुख्य हैं।

(**iv**) **आर्कटिक महासागर** (Arctic Ocean)

आर्कटिक महासागर उत्तरी गोलार्द्ध में अलास्का से लेकर बेरिंग सागर तक 14056000 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत है। इसका अधिकांश भाग हिमावरित है जो मध्यवर्ती भाग में अधिक सघन है। मध्य सागरीय पहाड़ी, तोमोनोसोम पहाड़ी तथा एन्ल्फा पहाड़ियाँ इसमें समानान्तर रूप में फैली हैं। इसमें विद्यमान जल का आयतन 169880,00 घन किमी. है।

11.7 जल का उपयोग (Utilization of Water)

जल संसाधन एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है जो सभी संसाधनों का आधार है तथा जल की उपस्थिति के कारण अन्य प्राकृतिक संसाधनों का दोहन एवं संरक्षण सम्भव है। यह एक नव्यकरणीय संसाधन है जिसका एक बार उपयोग करने के बाद पुनः शोधन कर उपयोगी बनाया जा सकता है। जल ही ऐसा संसाधन है जिसकी हमें नियमित आपूर्ति आवश्यक है जिसे हम नदियों, झीलों, तालाबों, भूजल तथा अन्य पारम्परिक जल संग्रह क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। सागरीय जल का भी उपयोग किया जाता है, लेकिन इसका अलवणीकरण करना आवश्यक है। वर्तमान समय में लीबिया, कतर, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, इजरायल, यमन आदि देश सागरीय जल को शोधित करके उपयोग में ले रहे हैं।जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि में (70 प्रतिशत) किया जा रहा है, जबकि द्वितीय स्थान उद्योगों (22 प्रतिशत) का है। घरेलू तथा अन्य उपयोगों में केवल 8 प्रतिशत जल का ही उपयोग किया जाता है। इसमें प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है यूरोपियन पर्यावरण एजेंसी के अनुसार यूरोप में जल के कुल उपयोग का 44 प्रतिशत कृषि में 40 प्रतिशत उद्योग एवं ऊर्जा उत्पादन में 15 प्रतिशत सार्वजनिक जलापूर्ति में होता है। यहाँ जल का मुख्य उपयोग सिंचाई, नगरीय एवं निर्माण उद्योग में है। इसमें भी उच्च आय वाले एवं निम्न आय वाले देशों में अन्तर होता है। उच्च आय वाले देशों में जल का सर्वाधिक 59 प्रतिशत उपयोग उद्योगों में, 30 प्रतिशत कृषि में तथा 11 प्रतिशत घरेलू कार्यों में उपयोग होता है, जबकि निम्न आय वाले देशों में कृषि में 82 प्रतिशत, उद्योगों में 10 प्रतिशत तथा घरेलू कार्यों में 8 प्रतिशत का उपयोग होता है (World Bank)2011)। लोगों द्वारा पृथ्वी पर विद्यमान कुल शुद्ध जल का 10 प्रतिशत से कम उपयोग किया जा रहा है। लेकिन यह संसाधन समान रूप में

वितरित नहीं है जिस कारण सर्वत्र समान रूप से जलापूर्ति भी नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप वर्तमान में कुछ देशों में भयंकर जल संकट उत्पन्न हो गया है। अनेक स्थानों पर जल के उपलब्ध होने पर भी जल संकट की स्थिति बन रही है क्योंकि वहाँ निरन्तर विद्यमान जलस्रोतों में गुणवत्ता का ह्रास हो रहा है।

जल संसाधन का निम्नलिखित क्षेत्रों में उपयोग किया जाता हैः–

(1) सिंचाई में उपयोग (Utilization in Irrigation)

(2) उद्योगों में उपयोग (Utilization in Industries)

(3) घरेलू कार्यों में उपयोग (Utilization in Domestic Purpose)

(4) नौ परिवहन (Navigation)

(5) नहरें (Canal)

(6) जलविद्युत (Hydropower)

(1) सिंचाई में उपयोग (Utilization in Irrigation)–

जल का सर्वाधिक उपयोग सिंचाई कार्यों में किया जाता है। सिंचाई कार्यों में सतही एवं भूजल का उपयोग किया जाता है। सतही जल का उपयोग नहरों एवं तालाबों द्वारा किया जाता है। जबकि भूजल का उपयोग उत्स्रुत कुओं तथा नलकूपों द्वारा किया जाता है। विश्व का एक चौथाई भूभाग ऐसी शुष्क दिशाओं वाला है जो पूर्णतया सिंचाई पर निर्भर करता है। रूसी तुर्किस्तान, पश्चिमी एशियाई क्षेत्र, मिस्र की घाटी, यूरोपीय नदी बेसिन, लाप्लाटा बेसिन (दक्षिणी अमेरिका), नाइजीरिया, ऑस्ट्रेलिया का मरे–डार्लिंग बेसिन आदि नहरी क्षेत्र सिंचाई के अन्तर्गत है। इसी प्रकार मानसूनी एशिया में भी वर्षा पोषित क्षेत्रों (Rainfed Areas) के अतिरिक्त शेष क्षेत्र सिंचाई पर निर्भर हैं जो खाद्यान्न उत्पादन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं। यहाँ चावल, गेहूँ, गन्ना, कपास आदि का वृहत् स्तर पर उत्पादन किया जाता है।

अधिक जनसंख्या भार वाले क्षेत्रों में चावल की दो–तीन फसलें ली जाती हैं जिसके लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है चीन, भारत, बांग्लादेश, दक्षिणी जापान, वियतनाम तथा मलेशिया इसी प्रकार के देश हैं। इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन फसलें लेने के लिए भी सिंचाई की आवश्यकता है। वर्तमान में जिन देशों ने सिंचाई में सतही जल की अपेक्षा भूजल का अधिक दोहन किया है वहाँ जल संकट उत्पन्न हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका में सिंचाई में 25 प्रतिशत भूजल तथा 75 प्रतिशत सतही जल का उपयोग किया जाता है जबकि भारत जैसे देशों में सिंचाई में भूजल का अन्धाधुन्ध उपयोग किया जा रहा है जबकि सतही जल का अधिकांश भाग बिना उपयोग किये सागरों में मिल जाता है। परिणामस्वरूप जल संकट अपना विकराल रूप ले रहा है।

(2) उद्योगों में उपयोग (Utilization in Industries)–

कुल शुद्ध जल संसाधन का 22 प्रतिशत भाग उद्योगों में उपयोग किया जाता है। यही कारण है कि अधिकांश उद्योग जलस्रोतों के निकट (नदी या झील) के किनारे पर स्थापित किये जाते हैं। अनेक औद्योगिक इकाइयों में स्वयं के जलशोधक संयंत्र भी होते हैं जिनसे जलापूर्ति नियमित बनी रहती है। उद्योगों के जल का उपयोग भाप बनाने, भाप के संघनन, रसायनों के विलयन, वस्त्रों की धुलाई, रंगाई, छपाई, तापमान नियंत्रण के लिए आद्रको (Humidifiers) एवं प्रशीतकों (Refrigerators) के लिए, लोहा–इस्पात उद्योग में लोहा ठंडा करने के लिए, कोयला धुलाई, चमड़ा

शोधन तथा रंगाई, कागज की लुग्दी (Pulp) बनाने के लिए तथा अम्ल एवं क्षार बनाने में होता है। वर्तमान में औद्योगिकरण के दौर में बढ़ती उद्योगों की संख्या ने बड़ी मात्रा में जल संसाधन की गुणवत्ता को कम किया है जिससे जल की उपलब्धता होने पर भी कमी महसूस हो रही है।

(3) घरेलू कार्यों में उपयोग (Utilization in Domestic Purpose)–

प्रकृति में जल समान रूप से वितरित नहीं है लेकिन इसकी उपलब्ध मात्रा के अनुसार ही जल उपयोग की विधियाँ विकसित कर मानव ने प्रकृति के साथ समायोजन किया है। शुष्क क्षेत्रों में जल का कम मात्रा में तथा बहुउद्देश्यीय उपयोग किया जाता है। घरेलू कार्यों में पीने, खाना बनाने, स्नान करने, कपड़े धोने आदि में जल की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त पशुओं एवं पौधों के लिए भी प्रदूषण रहित जल की आवश्यकता होती है। नदियों के किनारे बसे शहरों के लिए जल उपलब्ध रहने पर भी समस्या उत्पन्न हो गई है क्योंकि नगरों द्वारा इन जलस्रोतों को संदूषित (Contaiminated) कर दिया है। टेम्स नदी पर लन्दन, बैंजर पर ब्रोमेन, राइन पर कोलोन, वोल्गा पर लेनिनग्राद, यांगटीसी पर नानकिंग, मिसीसिपी पर सेंट लुईस तथा भारत में गंगा नदी पर कानपुर, वाराणसी, हुगली पर कोलकाता, यमुना पर दिल्ली अवस्थित है। इन नगरों में जलापूर्ति की समस्या उत्पन्न हो गई है। ये नगर घरेलू गन्दे पानी को नालियों द्वारा नदियों में डाल रहे है।

(4) नौ परिवहन (Navigation)–

नदियों, नहरों तथा झीलों में स्थित सतही जल संसाधन का उपयोग नौपरिवहन में किया जाता है। नौपरिवहन में नदी या नहर के पानी की प्रवाह दिशा, जलराशि की मात्रा तथा मौसमी प्रभाव एवं नदियों और नहर की लम्बाई की मुख्य भूमिका होती है। यूरोप की राइन नदी नौपरिवहन की दृष्टि से सर्वाधिक व्यस्त है। इसके अतिरिक्त नील, डेन्यूब, यांगटीसी, वोल्गा मिसीसिपी सेंट लारेंस, सीन, एल्ब, मीकांग, इरावदी, पराना, अमेजन तथा भारत में ब्रह्मपुत्र, गंगा, गोदावरी आदि नदियों में नौपरिवहन सुविधा है। नौपरिवहन में आने वाली समस्याओं में जलधारा का तीव्र प्रवाह, मार्ग की बाधाएँ, जल प्रपात एवं क्षिप्रिकाओं की उपस्थिति बाढ़, नदी मार्ग में परिवर्तन आदि प्रमुख हैं।

(5) नहरें (Canals) –

भूसतह की विषमता होने पर नदियों के सहारे नहरों का निर्माण किया जाता है। नहरों का निर्माण जल के बहुउद्देश्यीय उपयोग के लिए किया जाता है जिनमें सिंचाई, परिवहन, जल–विद्युत, बाढ़ नियंत्रण आदि प्रमुख हैं। जल संसाधन के बहुउद्देश्यीय उपयोग की दृष्टि से चीन की ग्राण्ड केनाल (1900 किमी. लम्बी) प्रमुख है। परिवहन के महत्त्व से संयुक्त राज्य अमेरिका की इरी नहर, सिटिल नहर (प. तट पर साल्ट मेरी या सू (Soo) नहर प्रमुख हैं। सू नहर शीतकाल में चार माह बन्द रहती है। रूस में वोल्गा, नीपर, डान तथा डबाइना नदियों को नहरी तन्त्र द्वारा जोड़ा गया है। इसी प्रकार दक्षिणी भारत में कोरोमण्डल तट के सहारे कोम्बाबूर (Kombaumur) नहर तथा बकिंघम (Buckingham) नहरों द्वारा विजयवाड़ा एवं टिडिवनम् के मध्य यातायात हुआ है।

(6) जल–विद्युत (Hydropower) –

जल संसाधन एक नवीनीकरण योग्य संसाधन है जो कभी समाप्त नहीं होगा। अतः समाप्त हो रहे ऊर्जा संसाधनों के विकल्प के रूप में जल से विभिन्न रूपों में शक्ति का उत्पादन किया जा रहा है। पृथ्वी पर सर्वाधिक वर्षा भूमध्यरेखीय प्रदेश प्राप्त कर रहे हैं लेकिन उच्चावच विषमता के कारण संभावित जल शक्ति उत्पन्न नहीं कर पाये हैं। अफ्रीका में विश्व की 23 प्रतिशत संभावित जल–विद्युत ऊर्जा विद्यमान है लेकिन यहाँ जल शक्ति (विश्व को केवल एक प्रतिशत ही है। एशिया में

विश्व की 23 प्रतिशत जल शक्ति संभाव्य है लेकिन विकसित केवल 11 प्रतिशत है। इसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका में जल शक्ति संभाव्यता 17 प्रतिशत है। तथा विकसित जल शक्ति 4 प्रतिशत है।

जल मण्डल में विद्यमान जल राशि का विभिन्न रूपों में उपयोग कर हम विकास को गति दे रहे हैं जिसमें सतही एवं भूजल के साथ ही महासागरीय जल का भी विविध कार्यों में उपयोग कर रहे हैं। महासागरीय जल को अनेक देश शोधन कर पेयजल एवं सिंचाई के उपयोग में ले रहे हैं। महासागरों का मुख्य उपयोग परिवहन में किया जाता है। इसके अतिरिक्त महासागर भविष्य के लिए ऊर्जा के भण्डार हैं। ज्वारीय शक्ति का उत्पादन किया जा रहा है। महासागरों को खाद्य भण्डार भी कहा जाता है। जहाँ प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाला प्लैंक्टन (मछली का भोजन) बनता है तथा मछलियाँ तीव्रता से विकसित होती हैं। अनेक देशों में सागरीय जीवों से खाद्य सामग्री तैयार की जाती है।

11.8 सारांश

प्रकृति में जल विभिन्न रूपों में पया जाता है जल की पउस्थितिक कारण अन्य संसाधनो का अस्तिव है। यह एक नव्यकरणीय संसाधन है, वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या के जल संसाधन के सही प्रयोग न करने के जल संकट का सामना करना पड़ रहा है। मानव नें महासागरों एवं नदियों के जल को प्रदूषित किया है जो वर्तमान में जलसंकट बन गया है। इस इकाई में जल संसाधन के वितरण एवं जल संरक्षण के उपायों एवं जल को प्रदूषण से बचाने के नियमों के बारे में समझनें में सहायक होगा।

11.9 पारिभाषिक शब्दावली

अधः सतहीजलः—धरातल के नीचे मिलने वाला जल या भूजल

गीजरः आइसलैण्ड भाषा के गोसिर शब्द से बना है फुहार छोड़ने वाला, गीजर गर्म पानी का स्त्रोत है।

11.10बोध प्रश्न

11.10.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तरः—

प्रश्न— 1 जलीय चक्र के बारे में विस्तार से समझाइये।

प्रश्न— 2 जल संसाधन के संरक्षण के बारे में विस्तार से समझाइये।

11.10..2 लधुउत्तरीय प्रश्नः—

प्रश्न— 1 प्रशान्त महासागर के बारे मे बताइये।

प्रश्न— 2 जल के पाँच मानव उपयोग लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न—

प्रश्न—1 विश्व की सबसे बड़ी मानव निर्मित झील है—

(अ) व्रास्क झील (ब) आयर झील

(स) मृतसागर (द) चिल्का

प्रश्न–2 डूलुथ एवं मिनीसोटा इस्पात केन्द्र कौन सी झील के तट पर है।

(अ) सुपीरियर झील (ब) ह्यूरन

(स) इशी (द) ओण्टोरियो

प्रश्न–3 सबसे बड़ा महासागर है।

(अ) प्रशान्तमहासागर (ब) हिन्दमहासागर

(स) अंटलाटिक महासागर (द) आर्कटिक महासागर **(अ)**

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ वी.सी जाट "संसाधन भूगोल" मलिक बुक कम्पनी जयपुर

2. प्रो. जगदीश सिंह "संसाधन भूगोल" ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

3.Dr. Alka Gautam: Resources Geography.

4.Janki V.A. Eonomic Geography.

इकाई–12 समुद्री जल से मत्स्य उत्पादन, वितरण, जल संरक्षण

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 समुद्री जल से मत्स्य उत्पादक

12.4 मत्स्य व्यवसाय की अनुकूल दशाएँ

12.5 मत्स्यन के प्रकार

12.6 प्रमुख मत्स्य उत्पादक क्षेत्र

12.7 विश्व के प्रमुख मत्स्य उत्पादन देश

12.8 जल संरक्षण

12.9 सारांश

12.10 पारिभाषिक शब्दावली

12.11 बोध प्रश्न

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.1 प्रस्तावना

समुद्री जल में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीव प्लैकंटन मछलियों का भोज्य पदार्थ है इसलिए मछलियाँ सर्वाधिक मात्रा में समुद्री जल में पायी जाती है। विश्व में मछली खादं,य के रूप में प्रयोग कि जाती है। मत्स्य व्यवसाय अधिकतम समशीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में होता है। उष्ण कटिधीय प्रदेशो में सीमित मात्रा में किया जाता है। मछली का उपयोग खाद्यान के अतिरिक्त तेल, उर्वरक निर्माण, खनिजतत्व प्राप्त करने मे किया जाता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में मत्स्य उत्पादन तथा वितरण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित है–

(अ) विश्व के मत्स्य उत्पादन की अनुकूल दशाओ को स्पस्ट करना।

(ब) विद्यार्थी मत्स्य उत्पादन के विषय कों व्याख्या कर सकेगे।

(स) विद्यार्थीयो कों मत्स्य उत्पादन के वितरण एवं जल संरक्षण के महत्व के बारे मे समझाना।

12.3 समुद्री जल से मत्स्य उत्पादन

विभिन्न महाद्वीपों में स्थित महासागरो, सागरों, तालाबों, झीलों, नदियों आदि में मछलियों को

पकड़ने का कार्य किया जाता है। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में स्थित जलीय भागों में मछली व्यवसाय सीमित मात्रा में किया जाता है। समशीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश में तथा उप ध्रुवीय क्षेत्रों में स्थित जलीय भागों में मत्स्य व्यवसाय वृहद् स्तर पर किया जाता। है। विश्व में खाद्यान्न के रूप में प्रयोग किये जाने वाले जन्तुओं में से 3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ मछलियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। नार्वे, जापान, न्यूफाउण्डलैण्ड तथा आइसलैण्ड ऐसे देश हैं जहाँ कुल खाद्य पदार्थ का 10 प्रतिशत खाद्यान्न मछलियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। मछलियों की वर्तमान समय में लगभग 40 हजार प्रजातियाँ पायी जाती है।

12.4मत्स्य व्यवसाय की अनुकूल दशाएँ

(Favourable Conditions of Fishing)

मत्स्य व्यवसाय एक ऐसा उद्योग है जिसका अधिकतम स्थानीयकरण समशीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में है। मत्स्य उत्पादन हेतु निम्नलिखित भौगोलिक दशाएँ होना आवश्यक है–

1. प्लैंकटन की आपूर्ति(Supply of Plankton)–प्लैंकटन (प्लवक) सागरीय जल में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव व पादप होते हैं जो मछलियों का प्रमुख भोज्य पदार्थ है जिसका निर्माण समुद्र में पाये जाने वाले असंख्य जीवित पदार्थों के द्वारा होता है। प्लैंकटन समुद्र में अधिकतर उन भागों में पाया जाता है, जहाँ तक सूर्य की किरणें जल में आसानी से पहुँच जाती हैं। अतः प्लैंकटन का अधिकतम भाग महाद्वीपीय मग्न तट पर पाया जाता है जिस कारण मछलियाँ भी इसी क्षेत्र में पायी जाती हैं।

2.जलवायु (Climate)– मछलियों की वे किस्में जो शीतोष्ण कटिबन्धीय ठण्डी जलवायु में पायी जाती हैं, खाद्य के रूप में अधिकतम उपयोग की जाती हैं। गर्म क्षेत्र की मछलियाँ स्वादिष्ट नहीं होती हैं तथा जहरीली होती हैं, जिसके कारण इनको खाद्य रूप में उपयोग में नहीं लिया जाता है। मछली व्यवसाय हेतु अधिकतम तापमान 20° सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिए। गर्म क्षेत्र की मछलियाँ अधिक समय तक नहीं रखी जा सकती हैं तथा उनमें सड़न पैदा हो जाती है, जबकि ठण्डे प्रदेशों की मछलियाँ लम्बे समय तक उपयोगशील रहती हैं। इसी कारण मत्स्य व्यवसाय हेतु ठण्डी जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। ठण्डी जलवायु में मछलियाँ भी एक समूह के रूप में पायी जाती हैं। अतः उन्हें पकड़ने में भी सुविधा होती है। गर्म जल में ऐसे बैक्टेरिया उत्पन्न हो जाते हैं, जो प्लैंकटन को खा जाते हैं।

3.छिछले समुद्र (Shallow Sea)– मछलियों के प्रमुख भोज्य पदार्थ समुद्र में उन्हीं भागों में पाये जाते हैं जहाँ तक सूर्य की किरणें समुद्री तल में प्रवेश करती हैं। सूर्य की किरणें समुद्र के जलीय भाग में केवल 200 मीटर की गहराई तक ही जाती हैं। अतः मछलियाँ भी 200 मीटर की गहराई तक समुद्र के छिछले भाग में पायी जाती हैं। गहरे समुद्रों में पाये जाने वाली मछलियाँ भी अपने अण्डे शान्त समुद्रीय क्षेत्र में देती हैं जहाँ तक सूर्य की किरणें पहुँच सकें। अतः मछलियों का अधिकांश भाग समुद्र के छिछले भाग में पाया जाता है।

4.नदियों के ज्वारनदमुखी मुहाने –नदियाँ धरातलीय भाग में से बहकर आती हैं तब अपने साथ अनेक प्रकार के पदार्थों को बहाकर लाती हैं। यह पदार्थ भी मछलियों द्वारा अपने भोजन के रूप में ग्रहण किया जाता है। अतः नदियों के मुहाने पर जहाँ नदियाँ समुद्रों में गिरती हैं, भोज्य पदार्थ की अधिकता के कारण अधिक मछलियाँ पायी जाती बड़े डेल्टाओं वाले भागों में अवसाद की मात्रा अधिक होने से मछलियों के लिए प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अतः नदियों के ज्वारनदमुखी मुहानों में अवसाद की मात्रा कम होती है।

5.समुद्री धाराएँ (Ocean Currents)– जहाँ पर गर्म और ठण्डी जल धाराओं का संगम होता है वहाँ प्लैंकटन की मात्रा अधिक पायी जाती है क्योंकि धाराएँ अपने साथ प्लैकटन बहाकर लाती हैं। अतः ठण्डी व गर्म धाराओं के संगम स्थान पर मछलियों का प्रमुख भोजन पदार्थ प्लैंकटन अधिक मात्रा में पाया जाता है जिसके कारण यहाँ मछलियाँ भी अधिक पायी जाती हैं।

6. जनसंख्या की अधिकता (Large Population)– अधिकतम जनसंख्या होने तथा अन्य खाद्य पदार्थों की कमी होने पर ही मनुष्य मछली या अन्य जन्तुओं के द्वारा खाद्यान्न प्राप्त करता है। इसके अलावा माँस खाने पर धार्मिक रोक नहीं होती है। भारत में अधिकतर लोग धार्मिक कारणों से ही अधिक मछलियाँ नहीं खाते हैं, जबकि नार्वे, स्वीडन, जापान तथा आइसलैण्ड आदि देशों में मछली खाने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है अतः इन देशों में मछली की माँग अधिक पायी जाती है।

7. यातायात (Transportation)– परिवहन भी प्रमुख कारण है जो मत्स्य व्यवसाय को प्रभावित करता है। मछलियों का निर्यात करने हेतु अधिकतर जल परिवहन के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है अतः बन्दरगाहों, जहाज, नावों आदि की भी उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए साथ ही परिवहन कार्य सस्ता भी होना चाहिए।

चित्र –12.2: संसार के प्रमुख मत्स्यन क्षेत्र

मछली पकड़ने की विधियाँ (Fishing Methods)

मछलियाँ समुद्रों में विभिन्न तरीकों द्वारा पकड़ी जाती हैं। मछलियों की कई प्रजातियाँ दिन में पकड़ी जाती हैं तथा कई रात्रि के समय। जहाज में मछुआरे विभिन्न प्रकार के जाल ले जाते हैं जिनकी सहायता से वे समुद्री सतह पर उनको फैलाकर मछलियों को पकड़ते हैं।

(i) ड्रिफ्टिंग (Drifting)–

ड्रिफ्ट नेट एक टेनिस के नेट के समान होता है जिसे मछुआरे समुद्र की जल सतह पर फैला देते हैं। जाल एक ऐसी रस्सी से बंधा हुआ होता है कि रस्सी का दूसरा मुँह जहाज से बंधा रहता है। धाराओं के साथ आने वाली मछलियों के विपरीत दिशा में जाल फैला देते हैं। मछलियाँ जल सतह पर तैरते समय उनका सिर इस जाल में फँस जाता है तथा वे वापस इस जाल से नहीं छूट पाती

हैं। ड्रिफ्ट नेट का प्रयोग अधिकतर खुले समुद्रों में पायी जाने वाली मछलियों को पकड़ने के लिए किया जाता है।

(ii) ट्रॉवलिंग (Trawling)–

अर्थात् जाल को खींचकर मछलियाँ पकड़ना। ट्रॉल नेट एक ऐसा नेट होता है। जो चारों ओर से बन्द होता है तथा उसका एक मुँह खुला होता है। खुला मुँह रस्सी द्वारा बँधा रहता है। रस्सी का एक सिरा जहाज से बँधा रहता है। जहाज चलता रहता है। मछलियाँ जाल के खुले भाग से जाल के अन्दर चली जाती हैं तथा जाल की रस्सियों में तथा अन्दर मछली का पूरा शरीर बन्ध जाता है जिस कारण वह वापस जाल से बाहर नहीं निकल सकती हैं। ट्रॉल नेट को खींचनेवाली नाव की गति 8 किमी. प्रति घण्टा होती है, जिस कारण पानी के दबाव से भी मछलियाँ बाहर नहीं आ पाती हैं। जब मछुआरों को यह अनुभव हो जाता है कि पर्याप्त मात्रा में मछलियाँ नेट में अन्दर फॅस गई तो वह रस्सी को खींचकर जाल के खुले मुँह को बन्द कर देते हैं तथा फिर नाव द्वारा तटीय भाग में जाल को खींचकर मछलियों को बाहर निकाल लेते हैं।

(iii) सेनिंग (Seining)–

इस विधि में मछलियाँ पकड़ने हेतु एक विशेष प्रकार का जाल उपयोग में लिया जाता है जिसे Seine Net कहते हैं। यह जाल ड्रिफ्ट और ट्रॉल जाल दोनों के सम्मिलित आकार का होता है। इस जाल के दो भाग रस्सी से बंधे रहते हैं। रस्सी के दूसरे हिस्से दो नावों से बंधे रहते हैं। जाल का अगला हिस्सा टेनिस नेट के समान सपाट होता है तथा पिछला भाग एक बोरे की आकृति में गोल होता है। मछलियाँ जाल के खुले मुँह द्वारा जाल के अन्दर फँसती जाती हैं।

(iv) लीनिंग (Lining)–

मछलियाँ झुण्डों में लम्बाई में विस्तृत क्षेत्र में फैलकर जल सतह पर तैरती रहती हैं। अतः इस विधि में एक लम्बा जाल होता है। सीधी रेखा के समान लम्बे जाल को जल सतह पर फैला दिया जाता है। जिसमें मछलियों के झुण्ड फँस जाते हैं।

12.5 मत्स्यन के प्रकार (Types of Fishing)

जलीय भाग में मछलियों के विभिन्न गहराइयों में पाये जाने के कारण इन्हें निम्न प्रकारों में विभाजित किया जाता है–

(i) वेलापवर्ती समुद्र में मत्स्यन (Pelagic Fishing)–

समुद्रों में खुले भाग में सामान्यतया छोटी मछलियाँ पायी जाती हैं। ये मछलियाँ झुण्डों में जल सतह के पास तैरती रहती हैं। ये मछलियाँ एक स्थान से दूसरे पर जल्दी–जल्दी प्रवास करती रहती हैं।

(ii) डिमिरसल फिशिंग (Demersal fishing)

ये मछलियाँ छिछले समुद्रों के तल पर पायी जाती हैं। ये ठण्डे जलीय क्षेत्रों में लगभग 40 मीटर की गहराई में पाई जाती हैं। जहाँ तक सूर्य की किरणें आसानी से पहुँच जाती हैं।

(iii) समुद्र तटीय मत्स्यन (Inshore Fishing)–

ये मछलियाँ समुद्र के तटीय क्षेत्र के छिछले भागों में पायी जाती हैं, जहाँ मैदानों से नदियाँ आकर गिरती हैं। नदियों के मुहाने के पास इनकी संख्या अधिक होती है क्योंकि नदियाँ अपने साथ

मछलियों की भोजन सामग्री लेकर आती हैं।

(iv) स्वच्छ जल में मत्स्यन (Fresh Water Fishing)–

ये मछलियाँ विभिन्न देशों के आन्तरिक भाग में स्थित नदियों, झीलों, छोटे–छोटे तालाबों में पायी जाती हैं। स्थानीय व्यक्ति अपने उपयोग हेतु इनको पकड़ते रहते हैं

12.6 प्रमुख मत्स्य उत्पादक क्षेत्र(Prominent Areas of Fishing)

1. **उत्तरी–पश्चिमी प्रशान्त महासागर का तटीय क्षेत्र**– इसका विस्तार एशिया महाद्वीप के पूर्वी भाग में ताइवान से साइबेरिया के पूर्वी भाग तक पाया जाता है। यह बाहरी एल्यूशियन से दक्षिण में फिलीपिंस तक जाता है। पूर्वी चीन सागर मत्स्य व्यवसाय की दृष्टि से प्रसिद्ध प्रदेश हैं। रूस के पूर्वी भाग में स्थित तटीय क्षेत्र, उत्तरी एवं द. कोरिया, चीन, जापान आदि मुख्य मछली उत्पादन करने वाले देश हैं।

ओखोटस्क सागर, जापान सागर, पीला सागर, पूर्वी चीन सागर आदि के तटीय क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। सालमन (अलास्का तट पर), हैरिंग, हेलीबट, अलास्कन, पोलक एवं कॉड इस उत्तरी जल में तथा उष्ण जल में सार्डीन, टूना, मेकरेल व शेल्फिश आदि मुख्य मछलियाँ हैं जो इस क्षेत्र में पकड़ी जाती हैं।

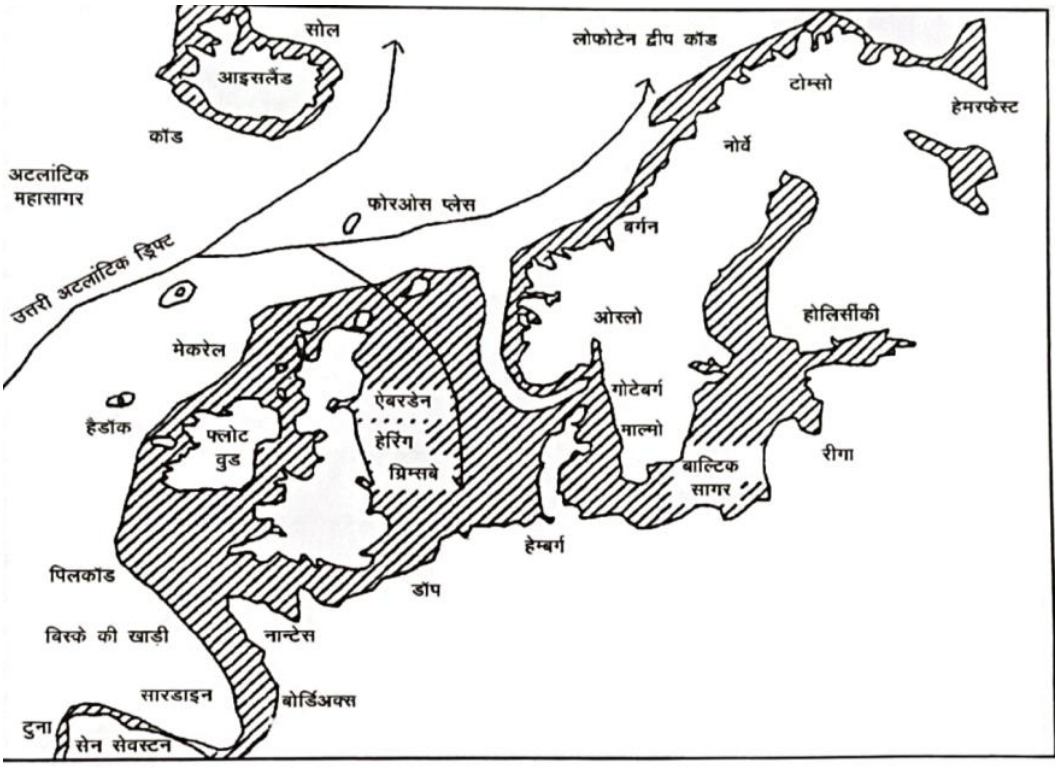

चित्र-16.6 : उत्तरी-पूर्वी अटलांटिक मत्स्यन क्षेत्र

2. **उत्तरी–पूर्वी अटलांटिक क्षेत्र**–इसका विस्तार उत्तर में आइसलैण्ड से दक्षिण में भूमध्यसागर एवं जिब्राल्टर तक पाया जाता है। पश्चिमी यूरोप का प्रमुख मछली उत्पादक डॉगर बैक इसी क्षेत्र में स्थित है। पश्चिमी यूरोप के लगभग वे सभी देश क समुद्र के तटीय भाग में स्थित हैं, मत्स्य व्यवसाय

में अग्रणी हैं। रूस, नार्वे, डेनमार्क, स्पेन, आइसलैण्ड तथा ग्रेट ब्रिटेन प्रमुख मछली उत्पादक देश हैं। यहाँ मुख्य रूप से कॉड (सर्वाधिक), हेरिंग, हैडॉक, मैकरेल, सारडाइन आदि मछलियाँ पकड़ी जाती है।

मछली व्यवसाय की दृष्टि से नार्वे का प्रमुख स्थान है। विश्व में पकड़ी जाने वाली कुल मछलियों का 4.1 प्रतिशत मत्स्य व्यवसाय नार्वे करता है। नार्वे के लगभग 32500 लोग मत्स्य व्यवसाय में लगे हुए हैं। नार्वे के होने वाले विदेशी निर्यात में समुद्रीय पदार्थों का प्रमुख स्थान है।

3. दक्षिणी–पूर्वी प्रशान्त क्षेत्र– यह दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित है। यहाँ की पेरू तट एंकोवी मत्स्यन (**Anchovey Harvest**) के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इसके लिए उत्तरवर्ती पेरू की धारा अनुकूल दशायें बनाती हैं, क्योंकि यहाँ तटीय पोषक तत्त्वों का उत्प्रवाह (**Upwelling**) होता है जो प्लैकटन से भी पूरित होता है ।

4. उत्तरी–पूर्वी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र – यह क्षेत्र अमेरिका महाद्वीप के पश्चिमी भाग में अलास्का एवं बेरिंग जलमडरुमध्य से लेकर कैलिफोर्निया राज्य तक विस्तृत है। यहाँ अलास्का, ब्रिटिश कोलम्बिया, वाशिंगटन, आरेगन एवं कैलीफोर्निया राज्यों के तटीय भागों में मत्स्य व्यवसाय होता है। सालमन, हेरिंग, कॉड, पिलकार्ड, हैलोवेट आदि प्रमुख मछलियाँ हैं जो इस क्षेत्र में पकड़ी जाती हैं। यहाँ पकड़ी जाने वाली मछलियों का अन्य देशों में निर्यात कर दिया जाता है। सबसे अधिक सालमन मछली पकड़ी जाती हैं। अलास्का में यह अधिक संख्या में पायी जाती हैं।

5. उत्तरी–पश्चिमी अटलांटिक प्रदेश –इस क्षेत्र का विस्तार उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के पूर्वी भाग में संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूफाउण्डलैण्ड से न्यू इंग्लैण्ड तथा कैरोलिना राज्य के समुद्र तटीय क्षेत्र तक पाया जाता है। इस क्षेत्र में मछली पकड़ने के लिए विश्व प्रसिद्ध ग्रांड बैंक (Grand Banks) एवं जार्ज बैक स्थित हैं। न्यू फाउण्डलैण्ड, लेब्रेडोर तट, नोवास्कोशिया, बाजविक, मैन, मेसाचुसेट्स, क्वेबेक तथा प्रिंस एडवर्ड टापू का तटीय भाग, न्यू इंग्लैण्ड राज्य का तटीय क्षेत्र आदि तटीय क्षेत्रों में अधिक संख्या में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस क्षेत्र में कॉड (सर्वाधिक), हैडक, स्क्वेड, हैरिंग, फ्लाडर, रेडफिश, मैकरेल, हैक, हैलीबट, लोबस्टर एवं झायँस्टर किस्म की महत्त्वपूर्ण मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस क्षेत्र में मछली जलवायु हेतु उत्तम समशीतोष्ण जलवायु पायी जाती है। यहाँ ठण्डे जल की लेब्रेडोर तथा गर्म जल की गल्फस्ट्रीम जलधारायें मिलती हैं जो भी मत्स्यन के लिए अनुकूल दशायें प्रदान करती हैं।

6. अन्य मछली उत्पादन करने वाले क्षेत्र–

(i) उष्ण कटिबन्धीय में स्थित समुद्र तटीय क्षेत्र पूर्वी द्वीप समूह के तटीय भाग, मेक्सिको की खाड़ी तटीय क्षेत्र, कैरेबियन सागर, प्रशान्त महासागर का मध्यवर्ती (फिलीपिंस व इण्डोनेशिया) पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्र आदि ।

(ii) महाद्वीपों के आन्तरिक क्षेत्र– विभिन्न देशों के मध्य में स्थित झीलों, नदियों तथा अन्य जल स्रोतों से पकड़ी जाने वाली मछलियाँ– दक्षिण–पूर्वी एशिया, मध्य अफ्रीका, सोवियत संघ का आन्तरिक भाग एवं उत्तरी अमेरिका की महान झीलों का क्षेत्र. प्रमुख मछली उत्पादक क्षेत्र हैं।

12.7. विश्व के प्रमुख मत्स्य उत्पादन देश (Prominent Countries of Fishing)

विश्व में पकड़ी जाने वाली मछलियों में ऐकोविटा, अलास्का पोलोक, स्किपजेक टूना, एटलांटिक हैरिंग तथा पेसिफिक चूब मेकरेल हैं। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार 1680 प्रजातियों की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं लेकिन इनमें 25 मत्स्य प्रजातियों ही प्रमुख हैं जो कुल

मत्स्यन का 42 प्रतिशत हिस्सा हैं। एकोविटा मछली पेरु एवं चिली द्वारा पकड़ी जाती हैं लेकिन एकोविटा मत्स्यन अल निनो से प्रभावित होता है। विश्व में सन् 2016 में सभी प्रकार के सागरीय जल कृषि उत्पाद (मछली, क्रस्टासीन, मोलस्क एवं अन्य जलकृषि जीव) का उत्पादन 79.3 मिलियन टन था इनमें सागरीय मछली उत्पादन 793 मिलियन टन तथा अन्तजलीय मछली उत्पादन 11 मिलियन टन रहा। सन् 2016 में जलकृषि में विश्व के 59.6 मिलियन लोग लगे हुए थे

1. चीन चीन वर्तमान में संसार का प्रथम सबसे बड़ा मत्स्य उत्पादक देश बन गया है जहाँ सन् 2016 में 175.64 लाख टन मछली पकड़ी गई।

सारिणी–12.2: विश्व में मछली उत्पादन, 2016

देश	उत्पादन (लाख टन में)
चीन	175.64
भारत	114.10
. इण्डोनेशिया	65.42
स.रा अमेरिका	49.19
रूस	47.59
. पेरू	37.96
जापान	31.95
वियतनाम	27.85
म्यांमार	20.72
.नार्वे	20.33
फिलीपीन्स	20.24
. बांग्लादेश	16.74
मलेशिया	15.80

थाईलैण्ड	15.30
. मैक्सिको	15.16
चिली	14.99
. मोरेक्को	14.47
. कोरिया रिपब्लिक	13.86
आइसलैण्ड	10.67
स्पेन	9.11
कनाड़ा	8.61

यहाँ 1990 से 2000 के मध्य तीव्र वृद्धि हुई है। सन् 1989 में केवल 53 लाख टन मछली पकड़ी गई जबकि सन् 2016 में बढ़कर 175.64 लाख टन तक पहुँच गई है। इनका 87 प्रतिशत समुद्री मछलियों का है।

2. इण्डोनेशिया– मत्स्य उत्पादन में इण्डोनेशिया का सन् 2016 में द्वितीय स्थान हो गया है। यहाँ के विस्तृत उथले मग्नतट मत्स्यन के लिये अनुकूल हैं। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण यहाँ जलकृषि का उन्नत विकास किया गया है।

3. भारत–यहाँ समुद्री मछलियों में सारडाइन, हेरिंग, ऐकावी, शाडा, मैकरेल व पर्च प्रमुख हैं तथा ज्यूफिश, कैटफिश, पाम्प्रेटा, सिलवर फिश, रिबन फिश, शैल फिश तथा ईल अन्य प्रजातियाँ हैं। ताजे जल की मछलियों में रोहू, कटला, मशारी, प्रकारा मूराल, जिंगल, प्राण (Prawn), पर्च हेरिंग आदि प्रमुख हैं। भारत ने मत्स्यन में तीव्र विकास किया जिसके कारण वर्तमान में भारत विश्व का द्वितीय वृहत्तम मस्य उत्पादक राष्ट्र बन गया है।

भारत में सर्वाधिक मत्स्य उत्पादन महाराष्ट्र से होता है, जहाँ वर्ष में 7 महीने समुद्र शान्त रहता है। यहाँ फिश क्यूरिंग यार्ड भी स्थापित किये गये हैं। महाराष्ट्र की 600 किमी. लम्बी तट रेखा पर 250 गाँव स्थित है। इसके उपरान्त केरल का स्थान आता है। यहाँ एर्नाकुलम तथा बेपुर में मत्स्य प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। केरल की तट रेखा 590 किमी. लम्बी है। गुजरात की 1000 किमी. लम्बी तट रेखा को लगभग 65000 वर्ग किमी. क्षेत्र मत्स्य व्यवसाय के अन्तर्गत है। तमिलनाडु का तट कम कटा–फटा होने से अधिक विकसित नहीं है। इनके अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश आदि में भी मत्स्य व्यवसाय किया जाता है। भारत में आन्तरिक मत्स्य व्यवसाय को विकसित करने के लिए अग्रलिखित जलाशय बनाये। गये हैं–पहुज वरबर (झाँसी), किथम (आगरा), कोडरताल(गौंडा), भीमताल, नोकुचियाताल (नैनीताल), अलवर झील, इलाहाबाद, रामपुर, नरवी झील (कानपुर) आदि।

चित्र– 12.7: उत्तरी–पश्चिमी

भारत में प्रतिवर्ष प्रति हैक्टेयर उत्पादन में वृद्धि हो रही है। कुछ प्रशिक्षण केन्द्र जैसे बैराखपुर (पं. बंगाल), कोचीन (केरल) में मछली उत्पादन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। ओडिशा में चिल्का

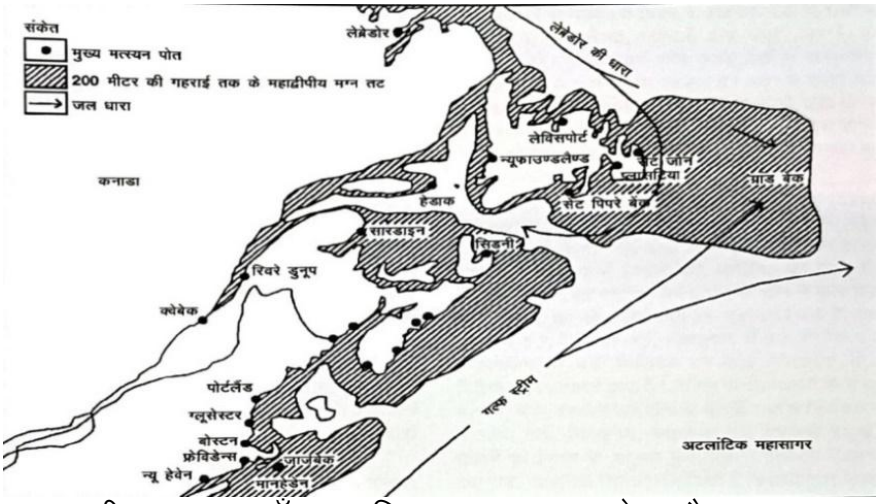

झील, अनसूया झील, रसल काँदा आदि प्रमुख मत्स्यन केन्द्र है।

4.संयुक्त राज्य अमेरिका–मत्स्य व्यवसाय में संयुक्त राज्य का विश्व में चौथा स्थान है। विश्व उत्पादन की 4.8 प्रतिशत मछलियाँ यहाँ पकड़ी जाती हैं। पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्र तटीय क्षेत्र, महान झीलों का क्षेत्र, मिसिसिपी एवं मिसौरी नदी क्षेत्र आदि प्रमुख मत्स्य उत्पादन करने वाले क्षेत्र हैं। संयुक्त राज्य के अलास्का, कैलिफोर्निया, लुईजीयाना, टेक्सास एवं फ्लोरिडा प्रमुख मत्स्य उत्पादक राज्य हैं। मेक्सिको की खाड़ी में श्रिम्प एवं मानहेडन सर्वाधिक मछली पकड़ी जाती हैं

5. रूस – विश्व में रूस पांचवाँ बड़ा मत्स्यन वाला देश है। बाल्टिक सागर, पूर्वी समुद्र तटीय क्षेत्र कैस्पियन सागर, अजोव एवं काला सागर आदि प्रमुख मत्स्य उत्पादन करने वाले क्षेत्र हैं। इनका अधिकांश भाग यूक्रेन में चला गया है।

6. पेरू दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित इस देश में एंकोविटा मछली का उत्पादन महत्त्वपूर्ण है जो प्रायः अल निनो के दौरान प्रभावित होता है। इसके तटीय भाग के सहारे पीरू की ठण्डी धारा प्रवाहित होने से मत्स्य विकास को बढ़ावा मिलता है।

7. जापान – विश्व में जापान मत्स्य उत्पादन में 1998 में प्रथम स्थान पर था, पर अब सातवें स्थान पर आ गया है। यहाँ मत्स्य व्यवसाय का अधिकतम विकास हुआ है क्योंकि जनसंख्या की तीव्र वृद्धि

के कारण खाद्य पदार्थों की अधिक माँग, अन्य खाद्य पदार्थों का कम उत्पादन, उथले समुद्र तटीय विस्तृत क्षेत्र, ठण्डी एवं गर्म धाराओं का संगम क्षेत्र, जलपोतों की सुविधा उत्तम जलवायु, सरकारी प्रोत्साहन आदि अनुकूल दशाएँ पायी जाती हैं। जापान की 98 प्रतिशत मछलियाँ समुद्री जल से प्राप्त होती हैं।

8. वियतनाम– यहाँ मुख्य भूमि से 45 किमी दूर 28 द्वीपों का समूह कपिडाइन है जो मत्स्यन के लिए महत्त्वपूर्ण है। वियतनाम से भी तेजी से मत्स्यनने विकास किया है। इसके अतिरिक्त लोग खाड़ी, मुईने, फू को होई एन आदि प्रमुख मत्स्य क्षेत्र है।

9. म्यांमार– म्यांमार ने तेजी से मत्स्यन में प्रगति करके विश्व के दस शीर्ष मत्स्य वाले देशों में जगह बना ली है। सन् 2016 में 20.72 लाख टन मछलियों का उत्पादन करके विश्व में नवें स्थान पर रहा। इसकी 2280 किमी. लम्बी तट रेखा एवं 230000 वर्ग किमी. महाद्वीपीय मग्नतट में मत्स्यन होता है। म्यांमार के पास 486000 वर्ग किमी. अनन्य आर्थिक क्षेत्र (EEZ) है।

10. नार्वे यूरोप में मत्स्य उत्पादन की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। यहाँ विश्व उत्पादन की 4.1 प्रतिशत मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। यहाँ कॉड सर्वाधिक, हैरिंग, हेकाड पकड़ी जाती है।

11. डेनमार्क – विश्व में मत्स्य व्यवसाय का 2.4 प्रतिशत भाग डेनमार्क द्वारा किया जाता है। पूर्व में बाल्टिक सागर एवं पश्चिम में स्थित नार्थ सागर, डागर बैंक प्रमुख मत्स्य व्यवसाय करने वाले क्षेत्र हैं।

12. ब्रिटेन–ब्रिटेन विश्व में पकड़ी जाने वाली मछलियों का 1.2 प्रतिशत मत्स्य व्यवसाय करता है। यहाँ मत्स्य व्यवसाय हेतु शीत भण्डार, सस्ते परिवहन साधनों की सुविधा तथा निर्यात हेतु उत्तम पोताश्रय आदि अनुकूल दशाएँ पायी जाती हैं। प्रसिद्ध डागर बैंक क्षेत्र में अधिक मात्रा में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

13. कोरियारिपब्लिक (दक्षिणी कोरिया)13.86 मिलियन टन मछली पकड़ता है। यह विश्व का 17वाँ बड़ा मत्स्य उत्पादक देश है। यहाँ भी जापान की तरह अधिकांश मछलियों समुद्र से ही पकड़ी जाती हैं। यहाँ पकड़ी जाने वाली मछलियों में श्रिम्प, कैंन, सालमन, लोबस्टर, पोलार्क आदि प्रमुख हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

वर्तमान में लगभग 142 मिलियन टन मछलियाँ प्रतिवर्ष पकड़ी जाती हैं। मत्स्य व्यवसाय का लगभग 70 प्रतिशत भाग उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित जल स्रोतों से प्राप्त होता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित जल स्रोतों से केवल 24 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। पेरू, चिली, आइसलैण्ड, नार्वे, डेनमार्क, कनाड़ा, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि प्रमुख निर्यातक देश हैं जहाँ से मछलियाँ विश्व के विभिन्न देशों में भेजी जाती हैं। ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, पश्चिमी द्वीप समूह, जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्पेन, पुर्तगाल एवं चीन आदि देशों में जनसंख्या के अधिक होने के कारण माँग अधिक है। अतः ये प्रमुख मछली आयात करने वाले देश हैं। मछली व्यवसाय की दृष्टि से भारत एक आत्मनिर्भर देश है। जापान प्रमुख उत्पादक देश होते हुए भी माँग एवं जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण निर्यात नहीं करता है।मत्स्यन के साथ क्स्टेसियन, मोलस्क, सलीप पौधे शैवाल और अन्य जलीय जीवो की कृषि को जल कृषि (Aqua culture or Aquafarming) कहते हैं

विश्व के कुल मछली उत्पादन में क्रस्टेशिया (Crusta ceans) एवं मोलस्क (Molluc̀) का उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष 1999 में चीन एवं पेरू प्रथम दो प्रमुख मत्स्य उत्पादक राष्ट्र रहे

हैं। 2007 में इण्डोनेशिया अमेरिका की जगह लेकर तीसरे स्थान पर आ गया है। वर्ष 2016 में चीन ने कुल जलीय कृषि उत्पादों का 49.2 मिलियन टन उत्पादन किया है जबकि भारत में 5.7 मिलियन टन, वियतनाम में 3.6 मिलियन टन, इण्डोनेशिया में 4.9 मिलियन टन तथा बांग्लादेश में 1.4 मिलियन टन उत्पादन हुआ है। लेकिन केवल मछली के उत्पादन में चीन, पेरू, इण्डोनेशिया शीर्ष के देश हैं जबकि निर्यातक देशों में चीन, नार्वे, वियतनाम, थाइलैण्ड एवं डेनमार्क प्रमुख हैं। मछली की किस्म के अनुसार कुल मछली उत्पादन में सालमन तथा ट्राउट सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिसका कुल मूल्य का लगभग 181% हिस्सा है।

सारिणी–12.4: विश्व जल कृषि उत्पाद 2015

देश	उत्पादन (मिलियन टन में)
1. चीन	49.2
2 .भारत	5.7
3. इण्डोनेशिया	4.9
4. वियतनाम	3.6
5. बांग्लादेश	2.2
6. मिश्र	1.4
7. नार्वे	1.3
8. चिली	1.0
9. म्यांमार	1.0
10. थाईलैण्ड	0.96

12.8 जल संरक्षण (Water Resources)

विश्व में जल संकट निरन्तर बढ़ता जा रहा है। 21वीं सदी के इस प्रथम दशक में विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जल संकट का सामना कर रही है इसके अन्तर्गत दुनिया की 40 प्रतिशत आबादी का नेतृत्व करने बाले 80 देश आते हैं जो जल संकट की भयंकर चपेट में हैं। जल के मुख्य स्रोत नदियाँ हैं तथा विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या 250 नदी बेसिनों में निवास करती है। इनमें अनेक नदियाँ पूर्णरूपेण किसी एक देश में ही स्थित हैं। लेकिन कुछ नदियाँ अन्तर्देशीय हैं जिनका जल विभिन्न अनुपात में समझौतों के तहत उपयोग में लिया जाता है।जल संकट के उद्‌भव में केवल मानव ही उत्तरदायी नहीं है वरन् प्रकृति भी विभिन्न रूपों में इसमें वृद्धि करती है। उदाहरण के लिए विश्व में वर्षा का वितरण समान नहीं है। जहाँ एक ओर भूमध्यरेखीय प्रदेश में प्रतिवर्ष 250 सेमी. वर्षा प्राप्त होती है वहीं सहारा के रेगिस्तान में वर्षभर जल का अभाव रहता है। इसी प्रकार भारत में 1170 मि.मि. वर्षा प्राप्त है जिसका 90 प्रतिशत भाग भूमि में शोषित होकर, वाष्पीकृत होकर तथा प्रवाहित होकर समुद्र में मिल जाता है। इसलिए जल संकट से निजात पाने के लिए विभिन्न स्तरों पर संगठित होकर जल को संरक्षित करना होगा । पूर्व विश्व जल आयोग के प्रमुख डॉ. सेराडोल्डिन, जो सन् 1972 से ही विश्व बैंक की विभिन्न गतिविधियों से जुड़े रहे हैं,

12.9 सारांश

मत्स्य व्यवसाय में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त तेजी से वृद्धि हुई । एकतरफ जनसंख्या और लोगों की आय बढ़ने से मांग बढ़ी और दूसरी ओर आधुनिक औद्योगिक तकनीक ने मछलियों की धटती संख्या के उपरान्त भी उन्हें ज्यादा पकड़ंना सुगम कर दिया मत्स्य व्यवसाय में अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है जैसे परिवहन सम्बन्धी कठिनाई, अति उत्पादन, जल का दूषित होना आदि । मछलियों को पकड़ने साथ–साथ उनके संरक्षण की आवश्यकता है। मछलियो की वे प्रजातियाँ जो कम हो गई है वे पहले की तरह भरपूर हो ताकि भविष्य में मानव पुनः उनका लाभ उठा सके ।

12.10 पारिभाषिक शब्दावली

प्लैकटन–सागरीय अजल मे पाये जाने वाले सूक्ष्मजीव जो मछलीयों का प्रमुख भोज्य पदार्थ है।

EEZ–Exclusive Economic Zone (अनन्य आर्थिक क्षेत्र)

12.11 बोध प्रश्न

1.दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1 मस्य व्यवसाय की अनुकूल दशाओं के बारे में बताइयें ?

प्रश्नः 2 मत्स्यव्यवसाय के विश्व वितरण को समझाइये ?

2.बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न –1 जलमण्डल का कितना प्रतिशत जल सागर एवं महासागरं मे स्थित है।

(अ) 97% (ब) 95%

(स) 80% (द) 90%

प्रश्न– 2मछलियों की प्राप्ति के लिए निम्न मे से कौन सा सर्वाधिक प्रभावित करता है–

(अ) ठण्डी जलवायु

(ब) जल में प्लैकेटन का प्रर्याप्त मात्रा होना

(स) तटों का कटा – कटा होना

(द) नाव व आधुनिक उपकरणो का होना

प्रश्न 3ग्रांड बैंक प्रसिद्ध है–

(अ) मत्स्य व्यवसाय **(ब)** लकडी व्यवसाय

(स) पर्यटन व्यवसाय **(द)** जहाज निर्माण

प्रश्न–4ग्रांड बैक तथा उत्तरी सागर मत्स्य क्षेत्र स्थित है–

(अ) मत्स्य व्यवसाय (ब) प्रशान्तमहासागर (स) अटलांटिक महासागर (द) उत्तरी ध्रुव महासागर

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ बी. सी जाट ''साधन भूगोल मलिक बुक कम्पनी जयपुर
2. प्रो जगदीश सिंह संसाधन भूगोल ज्ञनोदय प्रकाशन गोरखपुर
3. Ali,S.R : Resources or future economic Growth
4. Dr. Alka Gautam: Resourees Geogurphy

इकाई–13 विश्व में जनसंख्या की वृद्धि एवं वितरण तथा जनसंख्या वृद्धि के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

13.1प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 जनसंख्या वृद्धि, घनत्व एवं वितरण

13.4 जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने वाले कारक

13.5 जनसंख्या वृद्धि में प्रादेशिक भिन्नता

13.6 जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धान्त

13.7 सारांश

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

13.9 बोध प्रश्न

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.1 प्रस्तावना

पृथ्वी पर पाये जाने वाले संसाधनों का उपयोग मानव संसाधन पर निर्भर करता है। मानव की सभी संसाधनों में केन्द्रीय भूमिका रही है संसाधन मानव अपनी आवश्यकता अनुसार संसाधनों का दोहन कर प्राकृतिक पर्यावरण को परिवर्तित करता रहता है। संसाधन भूगोल में जनसंख्या वृद्धि,वितरण,का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्राचीनकाल में लेकर वर्तमान समय में जनसंख्या मे तीव्र वृद्धि हुई है। प्रकृति में मानव द्वारा पशुपालन एवं पौधों को घरेलू बनाने के साथ ही वृद्धि प्रारम्भ हुई है। कृषि विकास से खाद्य आपूर्ति एवं पर्याप्त पोषण प्राप्त हो सका जिससे मानव में विषम परिस्थितियों कें सहन करने की क्षमता उत्पन्न होने लगी जिसमें निरन्तर जनसंख्या में वृद्धिहोती चली गई।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित है–

(अ) जनसंख्या वृद्धि की विषयवस्तु को स्पष्ट करना ।

(ब) विद्यार्थी जनसंख्या के काल क्रमानुसार वृद्धि के विषय में समझ सकेंगे

(स) जनसंख्या वृद्धि वितरण एवं जनसंख्या सिद्धान्त को स्पष्ट करना

(द) शिक्षार्थियो को जनसंख्या वृद्वि व नियन्त्रित करने वाले कारको से अवगत कराना

13.3 जनसंख्या वृद्धि, घनत्व एवं वितरण

जनसंख्या का अध्ययन प्राचीनकाल से ही विभिन्न रूपों में किया जाता रहा है, मानवीय ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विशेषज्ञों ने विश्लेषित किया है। प्रारम्भिक समय सीमित भूतलीय ज्ञान एवं कम जनसंख्या के कारण केवल जनसंख्या के वृद्धि पक्ष पर ही ध्यान आकर्षित रहा। जनसंख्या के आकार के बारे में प्लेटो तथा अरस्तू ने अपने विचार दिये थे।

मध्यकाल में नवीन स्थलों की खोज के उपरान्त जनसंख्या के विभिन्न पक्षों पर चिन्तन की प्रवृत्ति में परिवर्तन आया तथा अटठारहवीं शताब्दी में जनसंख्या आर्थिक, राजनीतिक लाभो को मद्देनजर रखकर इसकी वृद्धि के उपाय सुझाये गये। धीरे–धीरे बढ़ती जनसंख्या तथा तत्सम्बधीय समस्याओं पर विभिन्न विषयों के विद्वानों ने अध्ययन किया। भूगोलवेत्ताओं ने जनसंख्या वितरण एवं वृद्धि के स्थानिक पक्ष का अध्ययन किया। जनसंख्या भूगोल सहित सभी समाज विज्ञानों के लिए अध्ययन का मुख्य विषय बन गया है। भूगोल की विभिन्न शाखाओं में जनसंख्या के अध्ययन को स्थान देने में ट्रिवार्था का विशेष योगदान रहा है । इन्होंने जनसंख्या के गुणात्मक तथा मात्रात्मक पक्षों को भूगोल में समाहित कर मानव संसाधन के अध्ययन को महत्त्व दिया। इस प्रकार वर्तमान में संसाधन एवं पर्यावरण के मध्य जनसंख्या एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करती है।

पृथ्वी पर पाये जाने वाले संसाधनों का उपयोग मानव संसाधन पर निर्भर करता है। मानव अपनी आवश्यकतानुसार जैविक तथा अजैविक संसाधनों का दोहन कर प्राकृतिक पर्यावरण को परिवर्तित करता रहता है। वह खाद्य आपूर्ति के लिए भूमि एवं जल संसाधन का उपयोग करता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न भू–भागों को परिवर्तित करके कृषि परिदृश्य के रूप में सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण करता है। इसी प्रकार आर्थिक समृद्धि के लिए मनुष्य खनिज, ऊर्जा, वनस्पति तथा जीव–जन्तुओं का उपयोग करता है। मानव ने अपने निवास के लिए भूभाग का उपयोग किया। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए मृदा की उर्वरता में वृद्धि की तथा साथ ही मृदा अपरदन को नियन्त्रित करने के लिए विविध उपाय किये हैं। इसी प्रकार मानव की सभी केन्द्रीय भूमिका रही है। संसाधनों में क्रमानुसार जनसंख्या वृद्धि (Chronologically Population Growth) काल जनसंख्या में स्थानिक सम्बद्धता के साथ निरन्तर वृद्धि होती रही है। प्रागैतिहासिक काल में जनसंख्या में वृद्धि अत्यन्त धीमी गति से हुई, जिसके लिए विषम जलवायु दशा, कड़ा जीवन व अल्पपोषण आदि को उत्तरदायी माना गया है। प्रकृति में मानव द्वारा पशु पालन एवं पौधों को घरेलू बनाये जाने के साथ ही वृद्धि का दौर प्रारम्भ हुआ। कृषि विकास के कारण खाद्य आपूर्ति निश्चित हुई जिससे पर्याप्त पोषण प्राप्त हो सका। समय के साथ मानव जीवन विभिन्न जलवायु दशाओं के अनुसार अनुकूलित होने लगा। फलस्वरूप मानव ने विषम जलवायु परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता विकसित की। यद्यपि प्रागैतिहासिक काल की संख्या के बारे में किसी भी प्रकार के प्रमाण उपलब्ध नहीं है फिर भी विद्वानों ने लिखित विभिन्न आकलनों के आधार पर प्रारम्भिक समय की जनसंख्या का अनुमान लगाया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective)– जनसंख्या वृद्धि को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दृश्यगत करने पर स्पष्ट होता है कि मानव के जंगली अवस्था से उभरकर मानवीय सभ्यता के रूप में आने के साथ–साथ जनसंख्या वृद्धि होती रही है। इस अवधि में जब कभी आकस्मिक वृद्धि हुई है तो

उसके पीछे प्राकृतिक वातावरण में किसी विशेष छाँट में सफलता का योग रहा है। इन अवस्थाओं में साग–सब्जी संस्कृति (Vegeculture) कृषि क्रान्ति, पशुपालन में विशेषीकरण तथा औद्योगिक क्रान्ति आदि प्रमुख रही हैं। ऐतिहासिक कालों में जनसंख्या वृद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इसे निम्नलिखित सामयिक अन्तरालों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) प्रागैतिहासिक काल (आदिकाल से 4000 ई.पू. तक)

(2) प्राचीन एवं मध्य काल (4000 ई.पू. से 1650 ई. तक)

(3) आधुनिक काल (1650 से वर्तमान तक)

(1) प्रागैतिहासिक (Early Historical Period)– इस काल का प्रारम्भ भोजन एवं आखेट व्यवस्था से माना गया है। मानव ने लगभग आज से पाँच लाख वर्ष पूर्व अग्नि का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। जबकि आधुनिक मानव (Homosepiens) आज से लगभग 1,50,000 से 50,000 वर्ष पूर्व उद्‌भुत हुए जब अन्तिम अन्तर्हिमयुग चल रहा था आधुनिक मानव का एक जाति के रूप में विकास तथा प्रजाति के रूप में विभेदीकरण साथ–साथ हुआ है। मानव के उद्‌भव (Evolution) का मुख्य केन्द्र अफ्रीका तथा आधुनिक मानव का एक जाति (Species) के रूप में विकास तथा प्रजाति (Race) के रूप में केन्द्र एशिया माना गया है जबकि यूरोप उद्‌भव केन्द्र की परिधि पर व अमेरिका काफी दूरस्थ था इस तथ्य की पुष्टि सन् 2002 में मध्य अफ्रीका के 'टोरोस मेनाला' नामक स्थान पर मिली सबसे प्राचीन मानव की खोपड़ी से हुई है। इसे 7 मिलियन वर्ष पुराना बताया गया है आखेट एवं भोजन संग्रह पुरा पाषाण काल में स्थलीय भागों पर ही होता था पर बर्फ का आवरण कम होने के उपरान्त अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी यूरोप पश्चिमी व पूर्वी एशिया में मानवीय विस्तार का अनुमान लगाया जाता है। अमेरिकी भूमि पर मानवीय उपस्थिति से पूर्व पृथ्वी पर कुल 33 लाख लोग रहते थे, जो बढ़कर 15 हजार वर्ष के उपरान्त लगभग 53 लाख हो गये। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि संसार का औसत घनत्व 0.04 व्यक्तिप्रतिवर्गकिमी.है।कृषि क्रान्ति (लगभग 10 हजार वर्ष पूर्व) के साथ विश्व जनसंख्या

सारिणी–931 : विश्व में जनसंख्या वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या
10,000 वर्ष ईसा पूर्व (B.C.)	50 लाख
1 ई. (A.D.)	2000 लाख
1000 ई.	3000 लाख
1750 ई.	8000 लाख
1850 ई.	100 करोड़

1930 ई.	200 करोड़
1962 ई.	300 करोड़
1975 ई.	406 करोड़
1987ई.(11.7.1987)	500 करोड़
1999ई.12.10.1999	600 करोड़
2001 ई.	613.7 करोड़
2011 ई.	700 करोड़
2025 ई.	781.8 करोड़
2050 ई.	903.6 करोड़

में प्रथम महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई। इस समय जनसंख्या पुंजित रूप में पशुपालन तथा पौधों के पालतूकरण (Domestication) के स्थानों पर ही केन्द्रित रही वनस्पति तथा पशुओं का पालतूकरण सर्वप्रथम 800 से 1000 वर्ष ईसा पूर्व मेसोपोटामिया (ईरान–इराक) के किनारों पर स्थित पहाड़ियों पर प्रारम्भ हुआ था। कृषि क्रान्ति के उपरान्त जनसंख्या विकास का महत्वपूर्ण समय के विकास का समय रहा है। नगरीय विकास का बीजारोपण आज से लगभग 5000 से 6000 वर्ष पूर्व दजला फरात एवं नील नदी घाटी क्षेत्र से माना गया है। इस समय पृथ्वी पर 865 लोग रहते थे तथा जनसंख्या घनत्व 1 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. था।

(2) प्राचीन मध्यकालीन काल (The Ancient Medieval Period)–

यह काल ईसा काल से 1650 ई. तक माना गया है। ईसा के जन्म के समय पृथ्वी की अनुमानित जनसंख्या लगभग 3000 लाख थी। जबकि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी की अनुमानित जनसंख्या 1000 से 2000 लाख के मध्य थी। जिसका संकेन्द्रण वर्तमान मंचूरिया, कोरिया, मंगोलिया, तुर्कीस्तान, वियतनाम, चीन के अतिरिक्त रोमन सभ्यता वाले क्षेत्रों में था।

16वीं शताब्दी के आसपास पूर्वी एशिया में जनसंख्या में वृद्धि हुई जबकि दक्षिणी एशियाई क्षेत्रों में दुर्भिक्ष (Famines) एवं युद्धों के कारण वृद्धि धीमी रही। यूरोपीय क्षेत्रों में दूसरी, तीसरी, छठी एवं चौदहवीं शताब्दी में प्लेग जैसी महामारियों के प्रकोप के कारण जनसंख्या वृद्धि धीमी रही। जबकि आल्पस पर्वत तथा कार्पेथियन के उत्तरी सीमान्त क्षेत्रों में कृषि क्षेत्रों में वृद्धि होने के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई।

(3) आधुनिक काल (The Modern Period) –

आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् 1650 ई. से माना गया है। इस समय विश्व की जनसंख्या लगभग 51. 5 करोड़ थी, जो बढ़कर सन् 1950 ई. में 250 करोड़ तक पहुँच गई। विश्व की जनसंख्या में गत तीन शताब्दियों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है औद्योगिक क्रान्ति के कारण भी जनसंख्या में त्वरित वृद्धि (Accelerated Growth) हुई है। इसमें 1750 से 1900 के मध्य वृद्धि मध्यम रही लेकिन 1900 से

1950 के मध्य दर अत्यधिक तीव्र हुई।

सारिणी–13.2: जनसंख्या में प्रति एक अरब की वृद्धि

सन्	जनसंख्या	समयावधि
1800	1 अरब	**सैकडों हजार वर्ष**
1930	2 अरब	130वर्ष
1960	3 अरब	30 वर्ष
1974	4 अरब	14 वर्ष
1987	5 अरब	13 वर्ष
1999	6 अरब	12वर्ष
2011	7 अरब	12वर्ष
2023	8 अरब	12वर्ष

1750 से 1900 के मध्य वृद्धि दर 4 से 5 व्यक्ति प्रति हजार प्रतिवर्ष थी जो 1900 से 1950 के मध्य लगभग दुगुनी हो गई तथा 1950 के बाद आकस्मिक उछाल आ गया। जनसंख्या वृद्धि के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल से मध्यकाल की समाप्ति तक जनसंख्या को दुगुनी होने में 1000 से 2000 वर्ष का समय लगा जबकि अठारहवीं शताब्दी में दुगुनी वृद्धि में मात्र 200 वर्ष से भी कम समय लगा तथा उन्नीसवी सदी में तो यह मात्र 100 वर्षों में ही दोगुनी हो गई। जनसंख्याविदों (Demographers) का अनुमान है कि विश्व की जनसंख्या 2150 तक स्थिर हो जाएगी। जब कुल जनसंख्या बढ़कर 11.6 बिलियन हो जाएगी।

जनसंख्या वृद्धि की माप (Measurment of Population Growth)

किसी भौगोलिक क्षेत्र की जनसंख्या के आकार में एक निश्चित समय में होने वाले परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि कहा जाता है। वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि ही दृश्यगत होती है जिसके कारण जनसंख्या परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि का पर्याय माना जाने लगा है। जनसंख्या परिवर्तन में धनात्मकता या ऋणात्मकता पर ध्यान नहीं दिया जाता है इसे कुल संख्या के रूप में मापा जाता है। जनसंख्या वृद्धि का मापन दो विधियों से किया जा है। प्रथम, प्रतिस्थापन प्रक्रिया विधि तथा द्वितीय, अवलोकित परिवर्तन विधि। प्रतिस्थापन प्रक्रिया विधि में मृत्यु का प्रतिस्थापन जन्म से माना जाता है। अर्थात् जनसंख्या वृद्धि जन्म व मृत्यु दर के शुद्ध अन्तर के आधार पर आकलित की जाती है। इस विधि में जनसंख्या वृद्धि निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है–

जनसंख्या वृद्धि = प्राकृतिक वृद्धि (जन्म–मृत्यु)× 100 मध्य वर्षीय जनसंख्या

यह जनसंख्या वृद्धि वास्तव में प्राकृतिक वृद्धि दर ही होती है क्योंकि इसमें केवल जन्म दर एवं मृत्यु दर के आँकड़ों को आधार मानकर गणना की जाती है। इसमें प्रवास (Migration) के प्रभावों को ध्यान में नहीं रखा जाता है। प्रवास सम्बन्धी आँकड़ों को सम्मिलित करके जनसंख्या वृद्धि दर निम्नलिखित सूत्र द्वारा की जाती है।

$$\text{जनसंख्या वृद्धि दर} = \frac{\text{प्राकृतिक वृद्धि दर} + \text{I-E}}{\text{मध्य, वर्षीय, जनसंख्या}} \times 100$$

यहाँ

प्राकृतिक वृद्धि दर = जन्म दर–मृत्यु दर

I = आप्रवासी (Immigrants)

E= बहिर्गमनी (Emigrant)

यहाँ अवलोकित परिवर्तन विधि में किसी प्रदेश में की गई जनगणना के दो क्रमिक आंकड़े का प्रयोग किया जाता है। इसका सूत्र निम्नलिखित है–

जनसंख्या वृद्धि P_2 P_1

P_2 द्वितीय जनगणना में जनसंख्या

P_1प्रथम जनगणना में जनसंख्या

वार्षिक वृद्धिदर जिसे जनसंख्या में वार्षिक रेखीय परिवर्तन कहते हैं, निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है–

$B = (P_n - P_0)/n$

यहाँ b = वार्षिक परिवर्तन की मात्रा

P_0 = दिये गये अवधि के प्रारम्भ की जनसंख्या

P_n = सन्दर्भित अवधि के अन्त में जनसंख्या या अगली जनगणना की जनसंख्या,तथा

n= ली गई गई अवधि में वर्षों की संख्या

13.4 वास्तविक वृद्धि दर (Actual Rate of Growth) –जनसंख्या के भौगोलिक

जन्म दर (Birth Rate) – एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या पर जीवित जन्म की संख्या जन्म दर कहलाती है।

जन्म दर (Birth Rate) – एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या पर जीवित जन्म की संख्या जन्म दर कहलाती है।

मृत्यु दर (Death Rate)–एक वर्ष में प्रति एक हजार जनसंख्या पर होने वाली मृत्यु को मृत्यु दर कहते हैं।

शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate) – प्रति वर्ष 1000 जीवित जन्मों पर होने
वाली एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु (संख्या) शिशु मृत्यु दर कहलाती है।
इसी सन्दर्भ में बालक मृत्यु दर व बालिका मृत्यु दर की गणना की जाती है।

- मातृ मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate) प्रति 1,00,000 जीवित जन्मों पर गर्भावस्था, सन्तानोत्पत्ति व अन्य शिशु जन्मों के कारण होने वाली स्त्रियों की मृत्यु।
- सामान्य जनन दर (General Fertility Rate)–उत्पादक आयु वर्ग (15–49 वर्ष) की प्रति हजार विवाहित स्त्रियों पर जीवित जन्म से आकलित की जाती है।
- जनन अनुपात (Fertility Ratio) – यह प्रति हजार उत्पादक आयु वर्ग (15–49) की स्त्रियों पर 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों का संख्या सम्बन्धी अनुपात होता है, इसे सन्तान/स्त्री अनुपात भी कहते हैं।

प्राकृतिक वृद्धि दर (Rate of Natural Increase) –मत्य दर से जन्म दर को

मृत्यु दर (Death Rate)—एक वर्ष में प्रति एक हजार जनसंख्या पर होने वाली मृत्यु को मृत्यु दर कहते हैं।

शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate) — प्रति वर्ष 1000 जीवित जन्मों पर होने

वाली एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु (संख्या) शिशु मृत्यु दर कहलाती है।

इसी सन्दर्भ में बालक मृत्यु दर व बालिका मृत्यु दर की गणना की जाती है।

• मातृ मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate) प्रति 1,00,000 जीवित जन्मों पर गर्भावस्था, सन्तानोत्पत्ति व अन्य शिशु जन्मों के कारण होने वाली स्त्रियों की मृत्यु।

• सामान्य जनन दर (General Fertility Rate)—उत्पादक आयु वर्ग (15—49 वर्ष) की प्रति हजार विवाहित स्त्रियों पर जीवित जन्म से आकलित की जाती है।

• जनन अनुपात (Fertility Ratio) — यह प्रति हजार उत्पादक आयु वर्ग (15—49) की स्त्रियों पर 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों का संख्या सम्बन्धी अनुपात होता है, इसे सन्तान/स्त्री अनुपात भी कहते हैं।

प्राकृतिक वृद्धि दर (Rate of Natural Increase) —

मृत्यु दर से जन्म दर को घटाकर, प्रतिशत में दर्शायी गई दर होती है, यह बिना प्रवास के जनसंख्या वृद्धि दर को दर्शाती है।विश्लेषणों में प्रति दशक 0 अन्तर पर जनसंख्या वृद्धि की गणना कर उसका मानचित्र निरूपण किया जाता है। किसी सन्दर्भित दशक में वास्तविक वृद्धि दर अग्र सूत्रानुसार ज्ञात की जाती है—

$$[\text{ वास्तविक वृद्धि दर (r)} = (P_n - P_0)/P_0 \times 100\ ]$$

जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने वाले कारक(Determinants of Population Growth)

जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक वे हैं, जो किसी प्रदेश में मृत्युदर व स्थानान्तरण को नियन्त्रित करते हैं, क्योंकि इन्हीं तीन क्रियाओं को प्रभावित का जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित किया जा सकता है। इन तीनों क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं—

1.जन्मदर को प्रभावित करने वाले कारक–जन्मदर को प्रभावित करने वाले कारकों में जैविक, जनांकिकीय, सामाजिक–आर्थिक व राजनीतिक कारकों को मुख्य भूमिका होती हैं। इनमें उर्वरता (Fecundity), वैवाहिक आयु (Marriage Age). विवाह–अवधि (Duration of Marriage), यौन स्वभाव (Sexual Habit) आदि आधारभूत कारक जन्मदर पर प्रभाव डालते हैं। जैविक कारकों में प्रजाति (Race), स्वास्थ्य एवं स्थानान्तरण आनुवांशिक जननता को सम्मिलित किया जाता है।

जननक्षमता या उर्वरता (Fecundity) भी जन्मदर को प्रभावित करती है। स्त्रियों में यौन परिपक्वता या यौनारम्भ (Puberty) से रजोनिवृत्ति (Menopause) तक की अवधि में जनन क्षमता या सन्तानोत्पादन होती है। यह अवधि सामान्यतया 15 से 49 वर्ष की आयु के मुख्य पायी जाती है तथा पुरुषों में 2–3

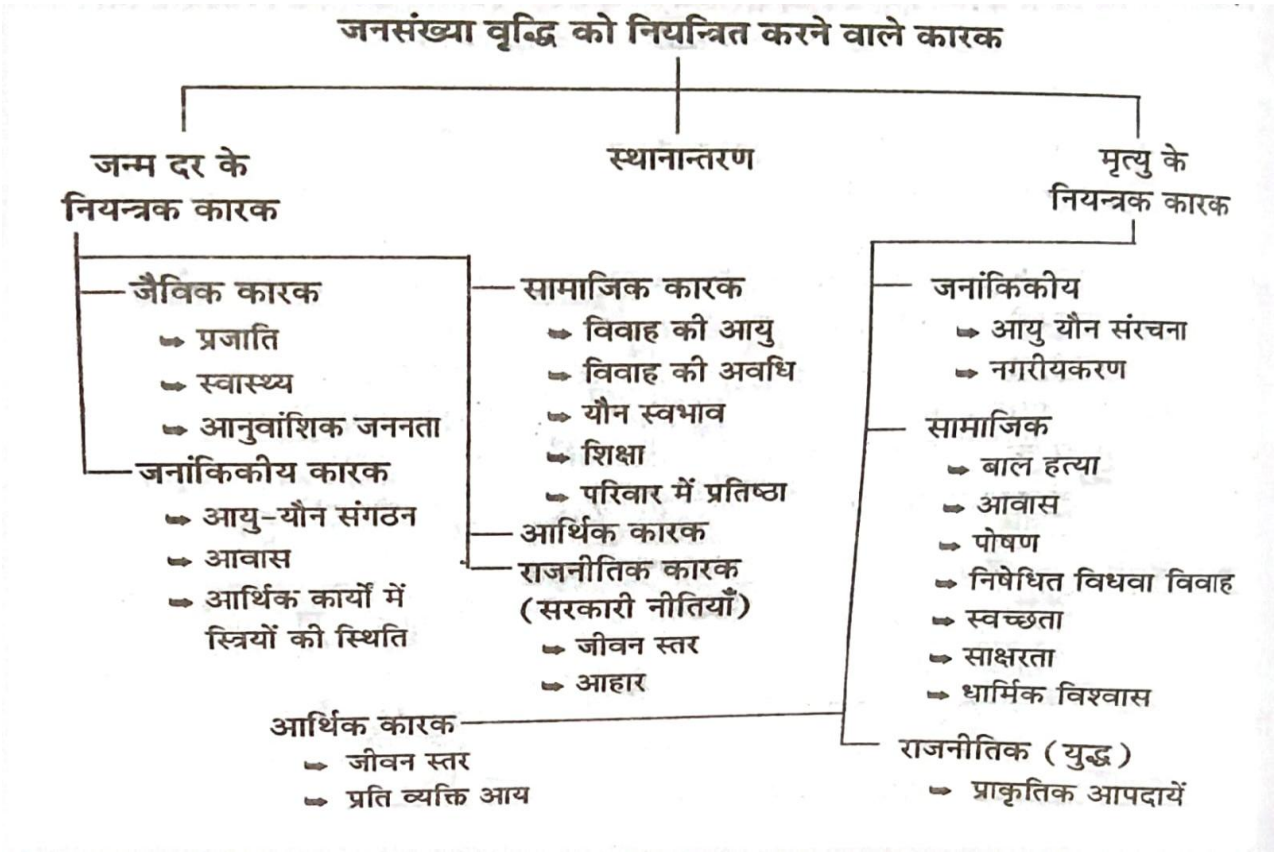

वर्ष बाद प्रारम्भ होती है जो काफी देर तक चलती है।जनांकिकीय कारकों में आयु, यौन संगठन, आवास तथा महिलाओं की कार्य संलग्नता को महत्त्वपूर्ण माना है। यौन अनुपात में असन्तुलन एक प्रतिकूल कारक है। व्यवसायगत महिलाएं बड़े परिवार की विरोधी होती हैं। सामाजिक कारकों में वैवाहिक आयु, विवाह की अवधि तथा यौन स्वभाव (Sexual Habit) भी जन्म दर को प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करता है। यौन व्यवहार उदार होने तथा वैवाहिक सम्बन्ध प्रगाढ़ न होने वाले समाज में रतिरोग (VD& Veneral Disease) पाया जाता है, जिसके कारण जन्मदर में कमी आ जाती है। सहवास (Cobabitation) में चक्रानुक्रम न होने से स्त्रियों में उर्वरता खत्म हो जाती है। लम्बी अवधि तक स्तन संचरण (Breast Feading) कराना, स्तनपान की पूर्ण अवधि तक सहवास न करने में भी गर्भधारण दर में कमी आती है। शिक्षा जननप्रतिरूप को प्रभावित करती है। साक्षरता एवं जन्मदर में भी प्रतिकूल सम्बन्ध पाया जाता है। भारत में एक सर्वेक्षण से निष्कर्ष निकाला है कि स्नातक या इण्टरमिडिएट उत्तीर्ण स्त्री के दो बच्चे, हाई स्कूल उत्तीर्ण के 4.6 बच्चे, मिडिल स्कूल उत्तीर्ण के 5.0 तथा निरक्षर औरतों के 6.6 बच्चों का औसत पाया गया हैपरिवार में प्रतिष्ठा (Status), परम्परा,

रीति–रिवाज आदि भी जन्मदर में वृद्धि करते हैं। परिवार नियोजन के उपायों के प्रति लोगों की धारणा भी महत्त्वपूर्ण कारक है। भारत में पहले से उपायों में परहेज (Sheer Abstineince), विलम्बित विवाह तथा निषेधित विधवा विवाह प्रमुख नियन्त्रक उपाय थे जबकि सुधारक उपायों में गर्भपात (Abortion), भ्रूणहत्या (Infanticide) आदि हैं। इसी प्रकार समान्तर उपायों में सहवास में गर्भनिरोधक से गर्भ नियन्त्रण किया जाता है। आर्थिक कारकों में परिवार का जीवन स्तर एवं आहार को महत्त्वपूर्ण माना गया है। राजनीतिक कारकों में जन्म दर को नियन्त्रित करने वाली सरकारी नीतियाँ सम्मिलित हैं।

(2) मृत्यु दर को प्रभावित करने वाले कारक– जन्मदर की तरह ही मृत्युदर को भी – जनांकिकीय, सामाजिक, आर्थिक कारकों के साथ ही अनेक आपदायें प्रभावित करती हैं। जनांकिकीय कारकों में आयु यौन संरचना महत्त्वपूर्ण है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की जन्म के समय जीवन प्रत्याशा अधिक होती है। कुछ कम विकसित देशों में गर्भधारण की आयु (Child Bearing Age) की महिलाओं में इसी आयु के पुरुषों की तुलना में उच्च मृत्यु दर होती है। सामाजिक कारकों में शिशु भ्रूणहत्या (Infanti-cide) की परम्परा प्रमुख है। भारत जैसे देश में जहाँ दहेज की कुप्रथा के कारण कन्याओं को आवश्यकता न मानकर बोझ माना जाता है। आवास, पोषण, स्वच्छता आदि भी मृत्यु दर को नियन्त्रित करते हैं। जन्मदर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से आय, पर्याप्त भोजन की उपलब्धता आदि आर्थिक कारकों से भी प्रभावित होती है इनके अतिरिक्त युद्ध, महामारी, अकाल, भूकम्प अन्य प्राकृतिक विपदाओं द्वारा भी बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु होती है।

(3) जनसंख्या स्थानान्तरण– जनसंख्या की गतिशीलता भी जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव डालती है। जिन क्षेत्रों में जनसंख्या का उत्प्रवास या बहिप्रवास (Emigration) होता है जनसंख्या वृद्धि दर पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि जिन क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों से अप्रवास (Immigration) होता है तो वहाँ जनसंख्या वृद्धि दर धनात्मक रूप से प्रभावित होती है 1880 से 1920 के दौरान यूरोप के विभिन्न देशों से लगभग 4 करोड़ व्यक्ति संयुक्त अमेरिका व कनाडा में जाकर बस गये जिसके कारण वहाँ पर जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है जबकि यूरोप के उन देशों में जहाँ से लोग प्रवास करके गये थे जनसंख्या वृद्धिदर ऋणात्मक रही।

13.5 जनसंख्या वृद्धि में प्रादेशिक भिन्नता(Regional Differential in Population Growth)

जनसंख्या वृद्धि सम्पूर्ण पृथ्वी पर समान नहीं रही, वरन् इसमें स्थानिक यह भिन्नता यूरोपीय विकसित राष्ट्रों तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों के मध्य रही है। सन् 1850 से पूर्व यूरोपीय राष्ट्रों में शेष विश्व की तुलना में जनसंख्या वृद्धि दर तीव्र थी जिसका मूल कारण न्यून मृत्युदर था। जबकि औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ भी यहाँ से हुआ था। यूरोपीय राष्ट्रों ने उच्चतर तकनीकी विकास द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की क्षमता में वृद्धि के प्रत्येक वर्ग का अस्तित्व सम्भव हुआ। पृथ्वी की प्राकृतिक धरोहर पर आधिपत्य की प्रवृत्ति में यूरोपवासियों को पृथ्वी के दूरस्थ भागों में प्रवास करने को उत्साहित किया। फलस्वरूप ये मध्य अक्षांशीय नवीन क्षेत्रों में जाकर बसने लगे, जहाँ पूर्व में विरल जनसंख्या थी। इन क्षेत्रों में उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, न्यूजीलैण्ड, एशिया, रूस तथा अफ्रीका के उत्तरी व दक्षिण प्रमुख हैं। जहाँ इन्होंने उपनिवेश बनायें पूर्वी तथा दक्षिणी एशिया में पूर्व में ही जनसंख्या थी। यहाँ श्वेत लोगों के लिए वातावरण अनुकूल नहीं रहा। लेकिन उनकी संख्या कम होते हुए भी पर्याप्त पूँजी एवं कौशल के कारण इन्होंने दक्षिणी एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में व्यापारिक बागाती कृषि का विकास किया व खनिजों का दोहन किया। इन कार्यों में अधिकांश लाभांश सीधा यूरोप को जाता था। यूरोपीय लोगों की चिकित्सा–विज्ञान, जनस्वास्थ्य व बेहतर परिवहन व्यवस्था ने मृत्यु दर को कम किया जिससे जनसंख्या में वृद्धि हुई।

संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रकाशित जनसंख्या सन्दर्भ ब्यूरो (PRB, 2018) के आकलन के अनुसार अफ्रीका के 26 देशों की जनसंख्या सन् 2050 तक दौगुनी हो जाएगी। इनमें नाइजर की जनसंख्या तिगुनी होगी जिसकी कुल प्रजनन दर भी विश्व में सर्वाधिक (7.2) है। इसके विपरीत 38 देशों की जनसंख्या सन् 2050 तक कम होगी इनमें चीन, जापान, रूस प्रमुख हैं।संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या 2018 में 328 मिलियन से बढ़कर 20 में 390 मिलियन हो जाएगी। सन् 2050 में भारत प्रथम तथा नाइजीरिया तृतीय जनसंख्या वाला देश बन जायेगा।

13.6. जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition)

जनसंख्या वृद्धि में विभिन्न अवस्थाएँ आती हैं। इन अवस्थाओं को जनसंख्या वृद्धि के प्रकारया जनांकिकीय संक्रमण कहा जाता है। यह सिद्धान्त यूरोप के विभिन्न देशों के आंकड़ों पर आधारित है। विद्वानों का मानना है कि प्रत्येक समाज को आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के साथ–साथ जनसंख्या की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है तथा इसी को जनसंख्या संक्रमण कहा जाता है। जनसंख्या जन्म दर एवं मृत्यु दर का फलन होती है तथा यह हर अवस्था में बदलती जाती है। विश्व के विभिन्न देश इन्हीं अवस्था से गुजर रहे हैं।जनसांख्यिकीय संक्रमण आधुनिक युग का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक सिद्धान्त है जो सैकड़ों सर्वेक्षणों पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक समाज उच्च जन्म दर एवं मृत्यु दर की अवस्था से निम्न जन्म दर एवं मृत्यु दर वाले समाज में परिवर्तित हो जाता है।

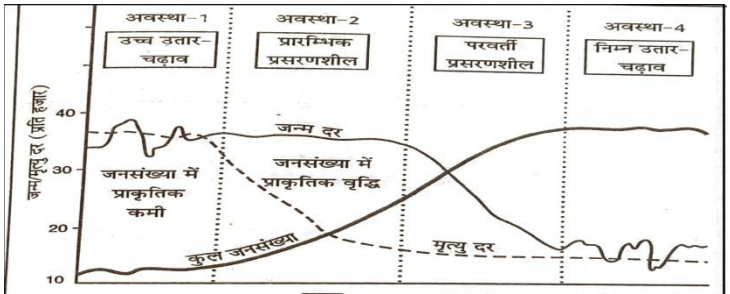

चित्र–9.2 : जनसांख्यिकीय संक्रमण (हैगेट, 1975) एवं *PRB, Washington, 21.3.1*

जनांकिकीय संक्रमण के मॉडल को सर्वप्रथम सन् 1929 में वारेन थाम्पसन ने किया जिसे बाद में सन् 1934 में अडोल्फी लॉण्ड्री ने तथा सन् 1945 में फ्रैंक नोटेस्टीन ने इसका प्रयोग किया 'जनांकिकी संक्रमण' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम नोटेस्टीन ने किया था इस मॉडल द्वारा मृत्युदर एवं जन्मदर में अनुक्रम परिवर्तनों (Sequential Changes) को सामान्य रूप में प्रदर्शित किया जाता है। यह मूलतः पश्चिमी यूरोप के अनुभवों पर आधारित है जिसके द्वारा प्रत्येक देश उच्च जन्मदर एवं मृत्युदर की अवस्था में पहुंचने की प्रक्रिया को स्पष्ट किया जाता है। परम्परागत कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से विकास करके एक समाज औद्योगिक एवं नगरीय समाज में परिवर्तित होता है जिसके साथ–साथ उसकी जनांकिकीय संरचना भी बदल जाती है इसमें कारण एवं प्रभाव में अन्तर काफी कठिनाई से ही हो पाता है। इस परिवर्तन में लगभग सभी देश विभिन्न अवधि की एक मध्यवर्ती अवस्था को महसूस करते हैं, जिसके अन्तर्गत मृत्युदर जन्मदर से कम होती है, फलस्वरूप जनसंख्या में विशेष वृद्धि होती है बच्चों, वयस्कों तथा वृद्धों के सापेक्षिक अनुपात में परिवर्तन आ जाता है। इस परिवर्तन के आंशिक ग्रामीण नगरीय अनुपात विनियोग प्रारूप तथा जनसंख्या व प्राकृतिक संसाधनों के सम्बन्धों को उत्तरदायी माना गया है।समाज में यह परिवर्तन विभिन्न अवस्थाओं में आता है। विभिन्न विद्वानों ने

संक्रमण को तीन या पाँच अवस्थाओं में बाँटा है। बेहतर ढंग से समझने के लिए संक्रमण को हम तीन अवस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं।

प्रथम अवस्था (First Stage) – किसी समाज की मुख्य विशेषता उच्च जन्मदर, उच्च मृत्यु दर होती है। अतः जनसंख्या वृद्धि दर नीची परन्तु परिवर्तनशील रहती है। यह पारम्परिक कृषि आधारित समाज की विशेषता होती है। दूसरी अवस्था में मृत्यु दर में तेजी से कमी आती है। वैसे जन्म दर में भी कमी आती है, परन्तु जन्मदर में कमी बहुत धीमी होती है। परिणामस्वरूप जन्मदर एवं मृत्युदर के बीच विशाल अन्तर पाया जाता है जो जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होती है। विभिन्न प्रकार के रोगों पर नियन्त्रण एवं जीवन स्तर में सुधार के कारण मृत्युदर में तीव्र गति से गिरावट आती है, जबकि जन्मदर में गिरावट लाने वाले कारकों का विकास धीमी गति से होता है। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए लोगों की पारम्परिक भाग्यवादी मनोवृत्ति में बदलाव का आना आवश्यक है। प्रथम अवस्था पिछड़े देशों में होती है जहाँ कृषि आय का प्राथमिक स्रोत होती है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था पायी जाती है। द्वितीयक क्रियाओं का लगभग अभाव पाया जाता है तथा तृतीयक क्षेत्र नहीं मिलता है अतः प्रति व्यति आय कम होती है। संयुक्त परिवार प्रथा पायी जाती है। प्रथम अवस्था में जन्म दर 45 से 48 प्रति हजार तक मिलती है । इसी तरह उच्च मृत्यु दर होने के कारण इस अवस्था को उच्च स्थिरता की अवस्था (High Stationary Stage) भी कहते हैं

सारिणी– 13.4: प्रमुख देशों की जनंकिकीय संक्रमण दशायें

अवस्थाएँ	जन्म दर	मृत्यु
अवस्था–1		
अफगानिस्तान	35	7
यूगाण्डा	46	12
जाम्बिया	39	8
अवस्था–2		
घाना	30	8
ग्वाटेमाला	30	6
इराक	35	6
अवस्था–3		
भारत	20	6
गैबन	27	9
मलेशिया	16	5

अवस्था–4		
ब्रजील	14	6
जर्मनी	9	11
जापान	8	11

द्वितीय अवस्था (Second Stage)–इस अवस्था में धीरे–धीरे अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास की ओर बढ़ती है। कृषि के साथ उद्योग परिवहन तथा शहरीकरण की प्रक्रिया में भीप्रगति होती है।शिक्षा में प्रगति, आय में वृद्धि, भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा में भी विकास होता है। फलस्वरूप जन्म दर में धीमी गिरावट के साथ तीव्रता से मृत्यु दर में कमी आ जाती है जिससे जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः इस अवस्था को जनसंख्या विस्फोट का चरण भी कहते हैं। इस तरह जनांकिकी संक्रमण की द्वितीय अवस्था को काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह अवस्था लम्बी भी होती हैं इसे निम्नलिखित 3 अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है।

पॉचती अवस्थाः–
विभिन्न जनांकिकीविदों ने जनांकिकीय संक्रमण की पाँच अवस्था की कल्पना की है. जिसमें जन्मदर, मृत्युदर से कम होगी तथा जनसंख्या घटने लगेगी। वर्तमान में यूरोप के 6 देशों की जनसंख्या घट रही है। ये देश क्रोएशिया, एस्टोनिया, हंगरी, रूस, स्लोवोनिया तथा यूक्रेन हैं। इनके अतिरिक्त चेक गणतंत्र, यूनान, नार्वे व स्वीडन में जन्म व मृत्यु दर समान होने से जनसंख्या स्थिर है।

विभिन्न विद्वानों के जनांकिकी संक्रमण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण
1. प्रारम्भिक विस्तार चरण (High Stationary Phase)
1. कार्ल सक्स के अनुसार(Karl Saxs View)
2. थाम्प्सन के अनुसार(Thompson^s View)
पूर्व–संक्रमण काल (Pre&Transition Period) संक्रमण काल (Transition Period) परा–संक्रमण काल (Post&Transition Period)
3. ब्लैकर के अनुसार (Blacker's View)
उच्च स्थिरता का चरण (High Stationary Stage) पूर्व विस्तार चरण (EarlyExpanding Stage) विलम्बित विस्तार चरण (Lale Expending, Stag) न्यून स्थिरता चरण (Low Stationary Stage) ह्रासमान चरण (Declining Stage)
मालथ्स चक्र (Malthusian Cycle) आधुनिक चक्र (Modern Cycle) शिशुप्रसार (Baby Boom)
4.पीटर आर. कॉक्स के अनुसार (Peter R- Cox's View)
5. सैन्ड्री के अनुसार
अन्तरिम चक्र (Provisional Cycle) दीर्घकालीन जनसंख्या चक्र (Longrun Population Cycle)आदिकाल (Primitive Regime) अन्तरवर्ती काल (Intermediate Regime) आधुनिक युग (Modern Epoch)

(i) प्रारम्भिक संक्रमण काल– प्रारम्भ में मृत्यु दर में गिरावट आने लगती है, क्योंकि– संक्रामक रोगों एवं बीमारियों को नियन्त्रित कर लिया जाता है।

(ii) मध्य संक्रमण काल–जब मृत्यु दर में गिरावट लगातार होती रहती है और जम दर में

कमी प्रारम्भ होती है। फिर भी दोनों में भारी अन्तर रहता है।

(iii) विलम्बित संक्रमण काल–उत्तरार्द्ध की इस अवस्था में मृत्यु दर एवं जन्म दर दोनों में कमी आने लगती है।

तृतीय अवस्था (Third Stage)– जन्मदर में गिरावट के साथ तीसरी अवस्था अन्तिम अवस्था की शुरुआत होती है, जिससे जन्मदर एवं मृत्युदर के बीच अन्तर में कमी आती है। अन्त में समाज निम्न

जन्मदर एवं निम्न मृत्युदर, फलतः निम्न जनसंख्या वृद्धि दर को अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में जीवनस्तर में पर्याप्त सुधार हो जाता है।शिक्षा एवं जागरूकता के कारण महिला कम बच्चे पैदा करती है। आर्थिक आकांक्षायें बढ़ जाती हैं। बच्चों की अच्छी देखरेख को प्राथमिकता दी जाने लगती है। तृतीयक क्षेत्र में भागीदारी होने से आर्थिक प्रतिर्स्पद्धा बढ़ती है। परिवार नियोजन तथा विवाह की आयु में वृद्धि होने से प्रजनन आयु काल कम होने लगता है फलस्वरूप जन्म दर में गिरावट आती है। तृतीय चरण की उत्तरार्द्ध की को सन्तुलन की अवस्था भी माना जाता है जब जन्म एवं मृत्यु दर नगण्य सी हो जाती है इसे निम्न स्थिरता की अवस्था (Low Stationary Stage) भी कहा जाता है। जननांकिकी संक्रमण की अवस्था के बारे में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न मत बताये हैं। थाम्पसन एवं नोनेस्टीन ने केवल तीन अवस्था बतायी है। कार्ल माक्स (Karl Sax) ने चार अवस्थायें बतायी है डोनाल्डॉलेन काउगिल तथा सी.पी. ब्लेकर ने जनांकिकी संक्रमण की पाँच अवस्था बतायी है।

चतुर्थ अवस्था (Fourth Stage) – इस अवस्था में मृत्यु दर न्यूनतम एवं जन्म दर घटकर स्थिरता में आ जाती है, इसलिए इसे न्यून स्थिरता की अवस्था, अन्तरिम चक्र (ProvisionalCycle) भी कहते हैं। इसमें पुनुर्त्पादक आयु वर्ग की स्त्रियॉ केवल अपनी संख्या के बराबर लड़कियों को जन्म देती हैं जिससे जनसंख्या घटती–बढ़ती नहीं वरन् प्रति स्थापित होती रहती है। अधिकांश यूरोपीय देश चतुर्थ अवस्था में हैं। इस प्रकार जनांकिकी संक्रमण सिद्धान्त के अनुसार कोई समाज जिसकी विशेषता निम्न वृद्धि दर है जो उच्च जन्मदर एवं उच्च मृत्युदर का परिणाम है। इस अवस्था से निम्न जन्मदर एवं निम्न मृत्युदर के परिणामस्वरूप निम्न वृद्धि वाले समाज में परिवर्तित हो जाता है। इन दोनों के मध्य अवस्था की विशेषता उच्च वृद्धि दर या जनसंख्या विस्फोट है। विश्व के सभी देशों को जनसांख्यिकी संक्रमण की तीनों अवस्थाओं से गुजरना होगा ये किसी पारम्परिक समाज के आधुनिक समाज में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है। विश्व के देशों को इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में रखा जा सकता है। क्योंकि संक्रमण विकास की प्रक्रिया से सीधा जुड़ा हुआ है।

विश्व के सभी विकसित देश जनांकिकीय संक्रमण को अन्तिम अवस्था में पहुँच चुके हैं। अतः इन देशों में निम्न जन्मदर एवं निम्न मृत्युदर पायी है जबकि अविकसित या विकासशील देश या तो द्वितीय अवस्था में प्रवेश करने वाले हैं (अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिकी देश) या द्वितीय अवस्था के मध्य में है। अतः तीसरी दुनिया के देश तीव्र जनसंख्या वृद्धि का सामना कर रहे हैं। यह प्रवृत्ति गम्भीर चिन्ता का विषय है। क्योंकि विश्व की तीन–चौथाई से अधिक जनसंख्या तीसरी दुनिया के देशों में निवास करती है और इसका तात्पर्य यह है कि भविष्य में कम से कम कुछ वर्षों तक विश्व की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होगी।

आलोचना

लॉस्की तथा विलकॉक्ज (1974) ने इसकी आलोचना करते हुए कहा कि यह संकल्पना न तो भविष्यमूलक है और न इसकी क्रमानुसार अवस्थाएँ हैं, साथ ही इसकी किसी अवस्था से नहीं बचा जा सकता है। इन कमियों के उपरान्त भी यह संकल्पना विश्व जनसांख्यिकीय का एक वृहत् स्तर पर प्रारूप प्रस्तुत करती हैं।

(1) इस सिद्धान्त में, विभिन्न अवस्थाओं की समयावधि निश्चित नहीं की है कौनसी अवस्था कितने समय चलेगी।

(2) प्रथम अवस्था में जन्म का ऊँचा होना ठीक है लेकिन अनेक बार प्राकृतिक प्रकोपो से मृत्यु दर में बदलाव आता रहता है। अतः स्थिरता निश्चित नहीं है।

(3) इस सिद्धान्त में आर्थिक विकास के चरणों एवं जनांकिकी चरणों में सम्बंध नही बताया गया है।

(4) इस सिद्धान्त में अधिकांश विद्वान् तीन चरणों का तो विश्लेषण कर लेते हैं, लेकिनचतुर्थ एवं पाँचवीं अवस्था पर मतभेद है।

(5) इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्या प्रत्येक देश को अवस्थाओं से गुजरना अनिवार्य है यदि हाँ तो इसकी गति एवं समय कितना है। यह अनुत्तरित है।

13.7सारांश

वर्तमान में विश्व की सम्पूर्ण जनसंख्या विकसित व विकासशील देशों में निवास कर रही है। विश्व में जनसंख्या का वितरण समान क्रम में नहीं पाया जाता है। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या वृद्धि विश्व के लिए एक चुनौती बन रही है। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या के कारण निर्धनता, रोजगार साधनों का अभाव हो रहा है। जनसंख्या को पर्याप्त खाद्य पदार्थ नहीं मिल पाते हैं। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण देश का निम्न आर्थिक विकास हो पाता है। अतः वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने वाले उपयो को अपनाकर इन समस्याओं पर नियत्रंण पाया जाए।

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

1. ट्रिवार्था :– भूगोल की विभिन्न सास्याओं में जनसंख्या के अध्ययन को स्थान देने मेट्रिवार्था विशेष योगदान रहा है।

2 .टोरोज मेनाला :– मध्य अफ्रीका का स्थान जहाँ सबसे प्राचीन मानव खोपड़ी मिली है।

13.9 बोध प्रश्न

13.9.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्न–1 जनसंख्या के कालक्रम को समझाइये।

प्रश्न–2 जनसंख्या के विश्व वितरण को बताइये ।

13.9.1 लघु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1 जनसंख्या के जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत को समझाइये

प्रश्न–2 जनसंख्या के आकार के बारे में विचार किसने दिया।

प्रश्न–3 जन्म दर क्या है?

13.9.2 बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्र.1 जनांकिकी संक्रमण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया ?

(अ) नोटेस्टीन (ब) बारेन थाम्पसन

(स) अडोल्फी लॉन्ड्री (द) लॉस्की तथा विलकॉक्ज

प्र० 2 जनांकिकीय संक्रमण के मॉडल को सर्वप्रथम बताया?

(अ) वारेन थाम्पसन (ब) ब्लैकर

(स) पीटर आर. काक्स (द) उपरोक्त सभी

प्र03 उपरोक्त सभी विश्व का सबसे बड़ा जन समूह है –

(अ) एशियाई जनसमूह (ब) यूरोपीय जनसमूह

(स) अमेरिकी जनसमूह (द) अफ्रीकीजनसमूह

प्र04 जनीकिकीय संक्रमण सिद्धांत की अवस्थाएँ है ?

(अ) चार अवस्था (स) दो अवस्था

(स) तीन अवस्था (द) पाँच अवस्था

13.10. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. **डॉ वी.सी जाट** ''संसाधन भूगोल'' मलिक बुक कम्पनी जयपुर

2.**प्रो. जगदीश सिंह,** संसाधन भूगोल ज्ञानोदय गोरखपुर

इकाई–14जनसंख्या एवं संसाधन अन्तर्सम्बन्ध, जनाधिक्य, अनुकूलतम जनसंख्या

इकाई की रूपरेखा

14.0प्रस्तावना

14.1उद्देश्य

14.2 जनसंख्या–संसाधन सम्बन्ध

14.3 जनाधिक्य की अवधारणा

14.4 ग्रामीण जनसंख्या आधिक्य के कारण

14.5 जनाभाव या अल्प जनसंख्या की अवधारणा

14.6 जनसंख्या दबाव

14.7 जनसंख्या समस्याएँ

14.8 जनाधिक्य के कारण उत्पन्न समस्याएँ

14.9 न्यून जनसंख्या की समस्याएँ

14.10 विकसित देशों में जनसंख्या की समस्याएँ

14.11 विकास शील देशों की जनसंख्या समस्याएँ

14.12 अनुकूलतम (आदर्श) जनसंख्या

14.13 सारांश

14.14 पारिभाषिक शब्दावलीः–

14.15 बोध प्रश्न

14.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

मानव एक संसाधन है एवं मानवीय बुद्धि सबसे बड़ा संसाधन है जिसका उपयोग कर मानव पृथ्वी पर उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करता है। मानव संसाधन उपयोग के साथ संसाधनो का निर्माण भी करता है लेकिन जनसंख्या एवं संसाधन सम्बन्ध अनुकूलतम होने चाहिए। संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग न होने पर जनसंख्या–संसाधन सम्बन्ध में समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। इस इकाई में जनसंख्या–संसाधन सम्बन्ध का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

14.1उद्देश्य

इस इकाई में जनसंख्या–संसाधन सम्बध का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं

(अ) जनसंख्या–संसाधन सम्बन्ध की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) विद्यार्थी जनसंख्या एवं संसाधनों के अनुकूलतम् सम्बन्ध को अध्ययन कर सकेंगे।

(स) अनुकूलतम (आदर्श) जनसंख्या के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।

(द) शिक्षार्थियों को जननांकिकीय की अवधारणा से अवगत कराना

14.2 जनसंख्या–संसाधन सम्बन्ध (Population &Resource Relationship)

जनसंख्या एवं संसाधनों में परस्पराश्रित सम्बन्ध पाये जाते हैं। प्रकृति में विद्यमान विभिन्न प्रकार के संसाधनों को मानव उपयोग योग्य स्वरूप में विकसित करता है। इस प्रकार क्षमता रखने के कारण स्वयं मानव भी एक संसाधन है। मानव इस पृथ्वी पर संसाधनों के सृजन कर्ता के साथ ही उनका उपभोगकर्ता भी है। पीटर हैगेट ने कहा है कि, ''कोई भी पदार्थ या शक्ति तब तक संसाधन नहीं बनता जब तक कि वह मानव की आवश्यकताओं पूर्ति न करे।''मनुष्य के प्राविधिक ज्ञान में विकास के साथ ही संसाधनों को बढ़ाने व नवीन संसाधनों का सृजन करने की क्षमता में वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध में जैलिंस्की ने कहा है कि ''मनुष्य का ज्ञान ही सबसे बड़ा संसाधन है।''जनसंख्या और संसाधन के मध्य सन्तुलन की स्थिति उस समय उद्‌भूत होती है जब प्रकृति में विद्यमान संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अनुकूलतम हो। संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक होने पर उसे जनाधिक्य (Over Population) तथा कम होने पर जनाभाव Under Population) कहते हैं लेकिन जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य सन्तुलन की दशा बहुत कम दृश्यगत होती है। इस प्रकार किसी क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या तथा उस क्षेत्र के संसाधनों में उपयुक्त समायोजन नहीं पाया जाता है। जिस कारण अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन विसंगतियों की दशा को ही जनसंख्या दबाव कहते हैं। टायूबर (Taeuber, B-,1970) के अनुसार, ''जनसंख्या के अधिक दबाव के कारण जनसंख्या और संसाधनों के बिगड़ने को जनसंख्या दबाव कहते हैं। क्लॉर्क (Clarke, C-G-,1970) के मतानुसार, "जनसंख्या दबाव उस समय उत्पन्न होता है जब मानव की संख्या और उसकी आवश्यकताओं तथा क्षेत्र भू विशेष के भौतिक व मानवीय संसाधनों के मध्य का संतुलन बिगड़ जाता है।'' Browning. HL, 1970) ने संसाधनों की पृथक् प्रवृत्ति के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है किसी समुदाय के संसाधनों तथा उसकी जनसंख्या के मध्य असन्तुलन से जनसंख्या दबाव उत्पन्न होता है।इसमें जनसंख्या एवं संसाधनों को मानवीय आधिपत्य में सीमाबद्ध किया गया है। माबोगुंजे ने बताया कि जनसंख्या दबाव भूमि संसाधन, जनसंख्या और लोगों की आकांक्षाओं के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया के परिणाम होते हैं। इसे निम्नांकित कारकों की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं।

(i) संसाधनों की उपलब्धता और उनका गुणात्मक स्वरूप।

(ii) जनसंख्या की आकांक्षाएँ, उनकी सीमा तथा स्वरूप।

माबोगुंजे ने स्पष्ट किया कि संसाधन व जनसंख्या दोनों कम हों तथा आकांक्षाएँ ऊँची हों या संसाधन तथा आकांक्षाएँ कम हों व जनसंख्या अधिक हो तो जनसंख्या दबाव उत्पन्न होता है

14.3 जनाधिक्य की अवधारणा (Concept of Over Population)

जनसंख्या के सामान्य सन्तुलन की अवस्था से विचलित होकर तेजी से बढ़ने की अवस्था को सामान्यतया जनसंख्या आधिक्य या जनाधिक्य कहा जाता है। किसी निश्चित प्रदेश के अन्तर्गत उपलब्ध समस्त प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में वहाँ निवासित जनसंख्या अधिकतम होती है तथा जनसंख्या वृद्धि भी तीव्र होती है जिसके कारण उस क्षेत्र की पोषण क्षमता की तुलना में जनसंख्या अधिक हो जाती है। ऐसी अवस्था के कारण उस क्षेत्र विशेष के लोगों का जीवन स्तर निम्न, बेरोजगारी की समस्या आदि तत्त्वों में निरन्तर वृद्धि होती जाती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक जीवन

स्तर निरन्तर निम्न स्तर की ओर अग्रसर होता जाता है। यह अवस्था उस क्षेत्र विशेष की अति जनसंख्या, जनाधिक्य या जनातिरेक की अवस्था कहलाती है।

जनाधिक्य के कारण भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निरन्तर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जाता है। निर्धनता, बेरोजगारी, निम्न जीवन स्तर, प्रति व्यक्ति आय में गिरावट, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं में कमी इसके प्रमुख लक्षण हैं। जनाधिक्य का प्रमुख कारण तो उस क्षेत्र में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि को ही माना जाता लेकिन कभी–कभी संसाधनों का अभाव, श्रम की माँग में कमी, मुद्रास्फीति में तीव्र वृद्धि आदि कारणों से भी जनसंख्या सन्तुलन में जनाधिक्य की स्थिति आ जाती है। जनाधिक्य के कारण उपलब्ध भौतिक संसाधनों का उपयोग भी आवश्यकतानुसार एवं उचित रूप से नहीं हो पाता है। क्योंकि जनसंख्या वृद्धि की तुलना में संसाधनों की मात्रा में वृद्धि नहीं हो पाती है। जनसंख्या एवं संसाधनों के आपसी सम्बन्धों के आधार पर जनाधिक्य को दो भागों में जाता है–

(i) पूर्ण जनाधिक्य (Absolute Over Population)

(ii) सापेक्ष जनाधिक्य (Relative Over Population)

(i) पूर्ण जनाधिक्य (Absolute over Population)

विकसित एवं ज्ञात तकनीकी के अनुसार किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग अधिकतम एवं उच्च स्तर तक हो जाता है तथा उससे आगे आर्थिक विकास की गति लगभग अवरुद्ध हो जाती है लेकिन विकास की गति के विपरीत जनसंख्या के बढ़ने की गति निरन्तर जारी रहती है। जिसके कारण प्रति व्यक्ति संसाधनों की प्राप्ति में गिरावट आने से प्रति व्यक्ति आय गिरने लगती है और जीवन स्तर निम्नतम होता जाता है। ऐसी जनसंख्या की अवस्था को पूर्ण जनाधिक्य की अवस्था कहा जाता है।

क्लार्क महोदय ने कहा है कि ''निरपेक्ष जनाधिक्य जनसंख्या वृद्धि की वह अवस्था है। जिसमें संसाधनों के चरम विकास के बावजूद भी जीवन के रहन–सहन का स्तर निम्न रहता है।'' वर्तमान समय में ऐसी दशा ग्रेट ब्रिटेन, जापान आदि कुछ विकसित देशों में पायी जाती है।

(ii) सापेक्ष जनाधिक्य (Relative over Population)

जब किसी क्षेत्र विशेष में निवासित कुल जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए वहाँ उत्पादित सभी वस्तुएँ अपर्याप्त एवं कम होती हैं तो ऐसी स्थिति सापेक्ष जनाधिक्य कहलाती हैं। सापेक्ष जनाधिक्य की स्थिति में क्षेत्र विशेष में उपलब्ध सम्पूर्ण संसाधनों का विदोहन तकनीकी सुविधाओं की कमी के कारण नहीं हो पाता है। लेकिन भविष्य में प्रौद्योगिकी के विकसित होने पर संसाधनों के उपयोग एवं उत्पादन वृद्धि की सम्भावनाएँ कायम रहती हैं। जिसके कारण जनाधिक्य की स्थिति भी सन्तुलित होने की पूर्ण सम्भावना विद्यमान रहती है। प्रो. क्लार्क महोदय ने कहा है कि, ''सापेक्ष जनसंख्या आधिक्य संसाधनों में सन्तुलन की वह स्थिति है जिसमें उत्पादन का वर्तमान स्तर जनसंख्या के लिए अपर्याप्त होता है। उत्पादन स्तर को बढ़ाकर इस स्थिति से निजात पाया जा सकता है।''संसाधन वर्तमान समय में सापेक्ष जनाधिक्य की स्थिति विश्व के उन छोटे–छोटे देशों में पायी जाती है जहाँ उत्पादन का स्तर जनसंख्या वृद्धि की तुलना में निम्न पाया जाता हैं। जनाधिक्य की स्थिति अधिकतर सम्पूर्ण देश या किसी देश के प्रदेश विशेष में पायी है। किसी देश के एक प्रदेश विशेष में जनाधिक्य की स्थिति पायी जा सकती है। जब की सम्पूर्ण देश के अन्य भागों में जनसंख्या सामान्य हो सकती है। उदाहरण के लिए भारत के उत्तरी भाग में, चीन के पूर्वी भाग में तथा इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में जनाधिक्य की स्थिति अन्य भागों में जनसंख्या वितरण सामान्य पाया

जाता है । जनसंख्या आधिक्य को ग्रामीण एवं औद्योगिक जनसंख्या आधिक्य के रूप में विभाजित किया जाता है। जब किसी औद्योगिक क्षेत्र में जनसंख्या आवश्यकता से अधिक पायी जाती है तो वह औद्योगिक जनसंख्या आधिक्य की स्थिति कहलाती है। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या भार अधिक होता है तो वह ग्रामीण जनसंख्या आधिक्य कहलाता है।

14.4. ग्रामीण जनसंख्या आधिक्य के कारण

(i) तीव्र जनसंख्या वृद्धि

(ii) भूमि में क्षेत्रीय वितरण की असमानता

(iii) मशीनीकृत कृषि

(iv) अकृषित क्षेत्रों का कम विकसित होना

(v) कृषिगत उत्पादन का निम्न स्तर

(vi) सामाजिक विकास का स्तर कमजोर

(vii) कृषिगत उपजों पर अधिकतम जनसंख्या निर्वाहन का अभाव आदि। जनाधिक्य की स्थिति उस क्षेत्र विशेष की जनसंख्या वृद्धि की स्थिति, संसाधनों उपलब्धि, उपलब्ध संसाधनों के उपयोग तथा नवीन प्रौद्योगिकी पर निर्भर रहती है।

14.5. जनाभाव या अल्प जनसंख्या की अवधारणा (Concept of Under Population)

जनाभाव की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब जनसंख्या संसाधनों की तुलना में कम हो। अर्थात् जब किसी देश या क्षेत्र विशेष में निवास करने वाली जनसंख्या उस देश या क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों की तुलना में अत्यल्प या न्यून पायी जाती है तो ऐसी स्थिति को जन–भाव न्यून जनसंख्या या जनाल्पता की स्थिति कहा जाता है। जनाभाव वाले क्षेत्रों में संसाधन तो अधिक मात्रा में पाये जाते हैं लेकिन जनाभाव होने के कारण उन संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाती है जिसके कारण उस देश या क्षेत्र विशेष का सन्तुलित आर्थिक विकास नहीं हो पाता है। ऐसे में विद्यमान जनसंख्या से अधिक जनसंख्या के पालन–पोषण में सहायक हो सकते हैं। इस वाले जना–भाव क्षेत्र ऐसे प्रदेश होते हैं जहाँ जनसंख्या को बढ़ाकर ही आर्थिक विकास एवं प्रति आय का स्तर उच्च किया जा सकता है।

जे.आई. क्लार्क महोदय ने कहा है कि,''जनाभाव वाले क्षेत्रों में संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है अथवा जहाँ संसाधन जीवन स्तर में कमी के बिना अथवा रोजगार में वृद्धि किये बिना ही वृहत्तर जनसंख्या का पोषण करने में समर्थ होते हैं।'' जनाभाव की स्थिति को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) पूर्ण जनाभाव जहाँ सम्पूर्ण क्षेत्र में संसाधनों के उपयोग की तुलना में जनसंख्या कम पायी जाती है। वह पूर्ण जनाभाव कहलाता है।

(ii) सापेक्ष जनाभाव–महामारी या अन्य प्राकृतिक एवं कृत्रिम कारणों से किसी क्षेत्र विशेष में मृत्युदर के जन्मदर से अधिक होने के कारण उत्पन्न जनाभाव की स्थिति को सापेक्ष जना–भाव कहा जाता है। अधिकांशतः जनाभाव की स्थिति पिछड़े समाजों में पायी जाती है। वर्तमान समय में प्रेयरी, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि क्षेत्रों के कुछ सीमित भागों में जनाभाव स्थिति पायी जाती है। वर्तमान

समय में न्यून जनसंख्या की स्थिति अधिकतर उन भागों में पायी जाती है। जहाँ प्रौद्योगिकी के विकास का स्तर निम्न होता है जबकि वहाँ विस्तृत भूमि एवं पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध होते हैं तथा वहाँ निवास करने वाली जनसंख्या अशिक्षित एवं अकुशल पायी जाती है जिसके कारण वे लोग उपलब्ध संसाधनों का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं कर पाते हैं। जनाभाव की स्थिति को आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास एवं जनसंख्या स्थानान्तरण के द्वारा दूर किया जा सकता है।

14.6 जनसंख्या दबाव(Population Pressure)

जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी पर प्रारम्भिक समय में जनसंख्या दबाव नहीं था लेकिन धीरे–धीरे जनसंख्या वृद्धि होती गई। जनसंख्या दबाव की स्थिति गहराती गई। इस मानव निर्मित दबाव के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हैं–

(1) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (Rapid Growth in Population) – पृथ्वी पर 10,000 वर्ष ईसा पूर्व मात्र 50 लाख लोग रहते थे, जो बढ़कर 1750 में बढ़कर 80 करोड़ तथा 1930 में 200 करोड़ हो गई व आज 600 करोड़ को पार गई है। तीव्रता से बढ़ती इस जनसंख्या ने पृथ्वी तल पर दबाव बना दिया है।

(2) जनसंख्या का असमान वितरण (Uneven Distribution of Population)–पृथ्वी के 30% भूभाग पर 95% जनसंख्या रहती है। जबकि शेष 70% भाग पर मात्र 5% जनसंख्या निवास करती है। इसमें भी इतनी विषमता है कि संसार की 50% जनसंख्या केवल 5% भूभाग पर ही रहती है। 70% निवास के अयोग्य क्षेत्रों में शुष्क, ऊष्ण, आर्द्र तथा हिमाच्छादित क्षेत्र हैं। इनमें विशाल मरुस्थल, विषुवत् रेखीय क्षेत्र, ग्रीनलैण्ड, अण्टार्कटिका व आर्कटिक क्षेत्र तथा उच्च पर्वतीय भाग हैं। अतः विशेष क्षेत्रों में ही जनसंख्या का संकेन्द्रण होने से जनसंख्या दबाव बढ़ता है।

(3) स्थानान्तरण पर नियन्त्रण (Control on Migration) प्राचीन काल में मनुष्य परस्पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण कर लेता था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दीमें अनेक देशों ने अपने संसाधनों एवं जनसंख्या के अनुपात को अनुकूलतम बनाये रखने के लिए संसाधन स्थानान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा दिये। इस दृष्टि से आस्ट्रेलिया की श्वेत नीति, दक्षिण अफ्रिका की रंगभेद (Aparthied) नीति तथा रूस, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिकी देशों की चयनात्मक प्रवास नीति से भी स्थानान्तरण कम हो पाया है। फलस्वरूप आधुनिक काल में जनसंख्या दबाव बना है।

(4) प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन (Over Exploitation of Natural Resources) बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ने से भी की स्थिति बनी है, क्योंकि जनसंख्या तो बढ़ती रही, लेकिन संसाधनों की मात्रा पूर्ववत रही है जो, निरन्तर घटना प्रारम्भ हुई। फलस्वरूप जनसंख्या दबाव बना है।

(5) प्राकृतिक आपदायें (Natural Disasters)– प्राकृतिक आपदाओं के कारण जनसंख्या का स्थानान्तरण होने से सन्तुलन बिगड़ जाता है। इन आपदाओं में भूकम्प बाढ़, सूखा, चक्रवात आदि प्रमुख हैं। प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त अनेक बार जनित विपदायें भी जनसंख्या दबाव में वृद्धि करती हैं। युद्ध, आक्रमण, औद्योगिक उत्पादन आदि के कारण जनसंख्या का प्रवास होता है।

इन सभी कारणों से पृथ्वी पर जनसंख्या कुछ विशिष्ट स्थानों पर संकेन्द्रित हो जाती है तथा उस क्षेत्र विशेष के संसाधनों पर दबाव बढ़ जाता है। संसाधन एवं जनसंख्या में एक बार सन्तुलन बिगड़ने पर संसाधनों के विवेकपूर्ण दोहन द्वारा ही आनुपातिक स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

जनसंख्या दबाव के बढ़ने से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि, जल संसाधन तथा अनेक आधारभूत सुविधाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं प्रकृति में कुछ विशेष स्थानों पर जनसंख्या का दबाव विगत शताब्दी में तीव्र गति से बढ़ा है जिसका मूल कारण आर्थिक प्रगति के लिए संसाधनों का दोहन रहा है। तीब्र औद्योगिक विकास द्वारा प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का आनुपातिक दर से अधिक दोहन कर संसाधन संकट उत्पन्न किया है। प्रारम्भिक समय में यह स्थिति सन्तुलित थी। लेकिन उन्नीसवी एवं बीसवीं शताब्दी निरन्तर बढ़ती जनसंख्या ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की। फलस्वरूप न केवलअनव्यकरणीय संसाधन वरन् नव्यकरणीय संसाधनों में भी ह्रास हुआ है। वन संसाधन जैसे नव्यकरणीय संसाधन लम्बी अवधि में अपना चक्र पूर्ण कर पाते हैं। अतः दोहन से वनावरण में कमी आयी है।

संसाधनों के दोहन में दीर्घकालीन सोच न रखने से जैविक संसाधनों में कमी आयी है जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का दोहन बढ़ा। इसमें उच्च औद्योगीकृत पश्चिमी सभ्यता वाले देश, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों ने उच्च दर से संसाधनों का विकास किया तथा विकासशील देशों ने भी इनका अनुसरण किया। लेकिन उन्नत तकनीकि के अभाव में यहाँ संसाधनों का दोहन विकास का सूचक न होकर केवल भरण–पोषण का साधन बन गया।

14.7 जनसंख्या समस्याएँ(Population Problems)

जनसंख्या समस्याएँ तब उत्पन्न होती हैं जब किसी क्षेत्र में उपलब्ध कुल संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक या कम होती है। संसाधनों एवं जनसंख्या दोनों की सन्तुलित अवस्था अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है। जनाधिक्य एवं जनाभाव की स्थिति उत्पन्न होने पर कई प्रकार की जनसंख्या समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः जनसंख्या समस्याओं की उत्पत्ति का प्रमुख कारण अति जनसंख्या या न्यून जनसंख्या को माना जाता है।

14.8.जनाधिक्य के कारण उत्पन्न समस्याएँ

जब जनसंख्या उपलब्ध संसाधनों की तुलना में अधिक पायी जाती है तो उस क्षेत्र में निम्नांकित समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं–

(i) तीव्र जनसंख्या वृद्धि–मुख्य रूप से एशिया महाद्वीप के पूर्वी एवं दक्षिणी पूर्वी भाग देश चीन, भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि विकासशील देशों में पहले से जनसंख्या के अधिक होने तथा वर्तमान में लगभग 2% वार्षिक वृद्धि होने के कारण तीव्र जनसंख्या वृद्धि की स्थिति पायी जाती है। जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण इन क्षेत्रों में भोजन, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि का अभाव पाया जाता है। प्रति वर्ष तीव्र वृद्धि के कारण इन देशों में समस्याएँ दिन–प्रतिदिन और बढ़ती जाती हैं।

(ii) निर्धनता एवं रोजगार साधनों का अभाव–जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ने के साथ–साथ रोजगार के साधन धीमी गति से बढ़ते हैं। सम्पूर्ण जनसंख्या लगभग कृषि पर आधारित होती है तथा द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्रों का विकास बहुत कम हो पाता है जिसके कारण दिन–प्रतिदिन बेरोजगारों की संख्या बढ़ती जाती है। बेरोजगारी एवं निर्धनता दोनों साथ–साथ बढ़ती जाती है। कृषि पर जनसंख्या का दबाव जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ बढ़ता जाता है जिसके कारण निर्धनता में भी धीरे–धीरे बढ़ोत्तरी पायी जाती है।

(iii) खाद्य समस्या एवं कुपोषण –तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण पर्याप्त खाद्य पदार्थ नहीं मिल पाते हैं जिसके कारण नागरिक धीरे–धीरे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। कुपोषणता के कारण मातृ एवं

शिशु मृत्यु दर उच्च स्तर तक पायी जाती है। कुपोषणता का प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता पर पड़ता है। अतः मनुष्य की कार्यक्षमता एवं स्वास्थ्य दोनों कमजोर होते जाते हैं। खाद्य समस्या के हल के लिए अन्य देशों से अनाज आयात करना पड़ता है जिसके कारण देश अन्य देशों के ऋण के तले दब जाता है। तथा सम्पूर्ण आर्थिक सन्तुलन गड़बड़ा जाता है।

(iv)आवासीय समस्याएँ–जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण जनसंख्या वृद्धि की तुलना में आवासों में वृद्धि नहीं हो पाती है जिसके कारण कई लोग टूटे–फूटे घरों एवं छप्परों में निवास करते हैं। कई ग्रामीण लोग निर्धनता एवं बेरोजगारी के कारण आवास बनाने में असमर्थ होते हैं। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण ग्रामीण लोग शहरों की ओर रोजगार प्राप्ति हेतु पलायन करने लगते हैं। लेकिन वहाँ अधिक किराया एवं महँगी जमीनों के कारण ये लोग कच्ची बस्तियाँ बसाकर रहने लगते हैं। जहाँ पानी, बिजली, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव है।

(v)निम्न आर्थिक विकास–तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण उस देश की अपनी आय का अधिकांश भाग नागरिकों की प्राथमिक आवश्यकताओं, जैसे–भोजन, मकान, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि पर खर्च करती हैं जिसके कारण अन्य द्वितीयक आर्थिक क्रियाओं की तरफ कम ध्यान दिया जाता है। इसका सीधा प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। आर्थिक विकास पर कम ध्यान देने के कारण विकास की गति जनसंख्या वृदि की तुलना में बहुत कम बढ़ पाती है जिसका सीधा प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति पड़ता है।

14.9 न्यून जनसंख्या की समस्याएँ (Problems of Under Population)

कई देशों में उपलब्ध संसाधनों की तुलना में जनसंख्या कम पायी जाती है जिसे न्यून जनसंख्या या जनाभाव कहा जाता है। जनाभाव के कारण निम्नांकित समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(i) श्रमिकों का अभाव–जनाभाव के कारण कृषि, उद्योग तथा व्यापार आदि में पर्याप्त मात्रा में श्रमिक उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। श्रमिकों की कमी के कारण आर्थिक विकास अति मंद गति से होता है। मजदूरों की कमी पूर्ति करने के लिए दूसरे देशों से श्रमिकों को बुलाना पड़ता है जो उस देश के लिए काफी महँगे होते हैं। जनाभाव का सीधा प्रभाव कृषि, जल, वन आदि के विकास पर पड़ता है। इनका पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो पाता है जिसके कारण आर्थिक विकास की गति मन्द पड़ जाती है।

(ii) आर्थिक विकास की गति पर प्रभाव–जनाभाव का प्रत्यक्ष प्रभाव सकल राष्ट्रीय उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है। जनसंख्या की कमी के कारण संसाधनेा का पूर्ण उपयोग नहीं होता है। जिसके कारण आर्थिक विकास की गति धीरे–धीरे एवं मदं होती है उत्पादित वस्तुओं की माँग भी कम जनसंख्या के कारण निम्न पायी जाती है। अतः जनाभाव का प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था के विकास पर पड़ता है।

(iii)सुरक्षात्मक समस्याएं किसी देश या क्षेत्र विशेष की जनसंख्या का कम होना सुरक्षात्मक कारणों से भी खतरनाक माना जाता है। जनाभाव के कारण पर्याप्त सैन्य बल नही पाया जाता है जिसके कारण बाहरी आक्रमण एवं आन्तरिक अशान्ति का भय हमेशा बना है। संसाधनों का प्रचुर मात्रा में पाये जाने के कारण पड़ोसी शक्तिशाली देश जनाभाव वाले पर आक्रमण भी प्रायः करते रहते हैं। ताकि उसके संसाधनों का उपयोग अपने हित में कर सकें।

(iv) जनसंख्या के निरन्तर कम होने की समस्या–कई देशों में जनाभाव की स्थिति के साथ–साथ परिवार नियोजन, सरकारी नीति आदि कारणों से जनसंख्या निरन्तर कम होती जाती है। यूरोपीय

महाद्वीप के फ्रांस, इटली, स्वीडन, जर्मनी युक्रेन, रुस आदि देशों में शून्य जनसंख्या वृद्धि या घटती जनसंख्या वृद्धि पायी जाती है जो जनाधिक्य की समस्या के समान ही जनाभाव एवं जनाधिक्य दोनों ही स्थितियाँ किसी क्षेत्र विशेष के लिए अति आवश्यक जिसके कारण उस क्षेत्र का आर्थिक विकास प्रभावित होता है। जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य संतुलन की अवस्था होना अनुकूलतम स्थिति मानी जाती है। इसी कारण वर्तमान समय देश अनुकूलतम जनसंख्या की स्थिति प्राप्त करने के प्रति जागरूक है।

14.10. विकसित देशों में जनसंख्या की समस्याएँ(Population Problems in Developed Countries)

(i) जनसंख्या संरचना में वृद्धों की संख्या में वृद्धि विकसित देशों में जन्मदर एवं मृत्यु दर में सन्तुलन होने के कारण जनसंख्या वृद्धि सीमित होती है। लेकिन स्वास्थ्य सुविधाओं की पर्याप्त व्यवस्था होने के कारण जीवन प्रत्याशा प्रायः 75 वर्ष या इससे अधिक पायी जाती है। जिसके कारण कुल जनसंख्या में अकार्यशील वृद्धों का अनुपात अधिक पाया जाता है। वृद्धों पर प्रायः पेंशन, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि पर सरकार को अधिक खर्च करना पड़ता है।

(ii) नगरीयकरण का उच्च स्तर विकसित देशों में नगरों में रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुविधाओं, यातायात आदि का प्रचुर एवं पर्याप्त मात्रा में पाये जाने के कारण अधिकतर जनता में नगरों में निवास करती है। अधिकतम नगरीयकरण के कारण नगरों में जनसंख्या संकेन्द्रित हो रहीं हैं। अधिक औद्योगिक क्रियाओं एवं यातायात, सघन जनसंख्या के कारण प्रदूषण का स्तर पाया जाता है। तीव्र नगरीयकरण का सीधा प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ता है। बड़े– बड़े नगरों में जनसंख्या वृद्धि के कारण कच्ची बस्तियों का विकास होने के कारण कच्ची बास्तियों की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(iii) मनुष्य की कार्यक्षमता में कमी विकसित देशों में अधिकतर औद्योगिक क्रियाएँ मशीनो के द्वारा सम्पन्न होती है जो कुछ श्रमिक कार्य करते हैं ये तकनीकी दृष्टि से दक्ष होते हैं। उनके प्रौद्योगिकी के अनुसार ढलने में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिस पर पर्याप्त व्यय करना पड़ता है। अतः कार्यक्षमता केवल तकनीकी दृष्टि से ही उपयोगी होती है जिस पर अपव्यय होता है। जिसके कारण यहाँ कार्यक्षमता आवश्यकतानुसार नहीं पायी जाती है।

14.11 विकासशील देशों की जनसंख्या समस्याएँPopulation Problems in Developing Countries)

(i) तीव्र जनसंख्या वृद्धि–विकासशील देशों में जन्मदर अति उच्च पाये जाने के कारण जनसंख्या वृद्धि तेजी से होती रहती है। मृत्युदर भी उच्च पायी जाती है लेकिन जन्मदर की तुलना में यह कम पायी जाती है। भारत, बांग्लादेश, चीन, पाकिस्तान आदि एशियाई देश तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण वर्तमान समय में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति से गुजर रहे हैं। भोजन, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य सुविधाओं, यातायात, व्यापार, उद्योग आदि आर्थिक एवं सामाजिक सुविधाओं का अभाव पाया जाता

(ii) रोजगार के अवसरों में कमी–जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ने के कारण उसके मुकाबले रोजगार के अवसर घटते जा रहे हैं। जिसका सीधा प्रभाव बेरोजगारी एवं निर्धनता स्तर में वृद्धि के रूप में परिलक्षित हो रहा है।

(iii)खाद्यान्नों में कमी–जिसका सीधा प्रभाव जनता के स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता पर पड़ता है। भरपेट नहीं होने के कारण देश की जनसंख्या का अधिकांश भाग कुपोषण का शिकार हो जाता है।

खाद्यान्न पूर्ति के लिए विदेशों से अनाज आयात करना पड़ता है। जिसके कारण देश ऋणग्रस्त होता जाता है।

(iv)शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ बढ़ती जनसंख्या वृद्धि विकासशील देशों में साक्षरता का स्तर निम्न पाया जाता है। साक्षरता की कमी के कारण मानव रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी हो जाता है। परम्पराओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने लगता है निरक्षरता का सीधा प्रभाव परिवार नियोजन, स्वास्थ्य आदि पर पड़ता है।

विश्व के विभिन्न भागों में जनसंख्या की स्थिति के अनुसार जनसंख्या समस्या पायी जाती हैं। जनाधिक्य की स्थिति एवं जनाभाव दोनों में विपरीत स्थिति पायी जाती है।समस्याएं अलग–अलग प्रकृति की होती हैं। वर्तमान समय में लगभग सभी देशो में जनसंख्या सम्बन्धी कुछ न कुछ समस्या अवश्य पायी जाती है।

14.12 अनुकूलतम (आदर्श) जनसंख्या(Optimum Population)

अनुकूलतम या ईष्टतम जनसंख्या किसी प्रदेश विशेष में स्थित उस कुल जनसंख्या को कहते हैं जो उस क्षेत्र विशेष में उपलब्ध कुल आर्थिक एवं सामाजिक संसाधन उपयोग के अनुकूल हो। अर्थात् किसी क्षेत्र विशेष में स्थित कुल जनसंख्या का आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से पूर्ण विकसित करने तथा उसका उत्पादन एवं उपभोग करने के लिए अनुकूलतम आवश्यक जनसंख्या हो जो उस क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों का उच्चतम जीवन स्तर का जीवन निर्वाह करती हो। उस क्षेत्र विशेष की कुल जनसंख्या को अनुकूलतम जनसंख्या कहा जाता है। अतः किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाली जनसंख्या को उत्तम जीवन स्तर प्राप्त हो अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकतानुसार भोजन, वस्त्र, ऊर्जा, शुद्ध जल एवं वायु, उत्पादन हेतु पर्याप्त कच्चा माल, स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी सुविधाये तथा सांस्कृतिक तत्त्वों का पर्याप्त एवं अनुकूल मात्रा में उपलब्ध हो। अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य अधिकतर जनसंख्या से सम्बन्धित विद्वान आर्थिक–सामाजिक दृष्टिकोण के की उच्चस्तर उपलब्धता को मानते हैं। अर्थात् उपलब्ध संसाधनों का मनुष्य की सामान्य आवश्यकता की पूर्ति हेतु अधिकतम उपयोग एवं उच्चतर जीवन स्तर की प्राप्ति ।

अनुकूलतम (आदर्श) जनसंख्या की परिभाषा(Definition of Optimum Population)

सन् 1910 में विक्सैल ने अनुकूलतम (Optimum) शब्द का प्रयोग किया अनुकूलतम जनसंख्या के लिए 'Optimum Population' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम एडविन कैनन ने किया था। कैनन ने कहा था कि, ''किसी क्षेत्र में उपलब्ध दशाओं के व्यक्तियों की उस संख्या को अनुकूलतम जनसंख्या कहते हैं जो उच्चतम जीवन स्तर रखने में समर्थ हों।''

प्रेस्टन क्लाउड ने कहा है कि, ''अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो एक निश्चित सीमा सन्निहित हो तथा वह संख्या इतनी पर्याप्त हो जिसमें सभी निवासियों में निरन्तर उच्च स्तर प्राप्त करने के लिए निर्माण क्षमता हो।''

बोल्डिंग के अनुसार, वह जनसंख्या जिस पर जीवन स्तर अधिकतम होताहै अनुकूलतम संख्या कहलाती है।'' (''The Population at which the Standard of life is at maximum is called the optimum population-'')

डाल्टन ने कहा है कि''अनुकूलतम जनसंख्या वह है, जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय देती हैं। ''(Optimum Population is that which gives the maimum income per head- '')

रॉबिन्स के अनुसार ''वह जनसंख्या जिससे अधिकतम उत्पादन सम्भव है, अनुकूलतम संख्या कहलाती है।''

जॉनसन (Johnson) के अनुसार ''मनुष्यों को वह संख्या जो किसी दी हुई आर्थिक, सैन्य अथवा सामाजिक लक्ष्यों के संदर्भ में अधिकतम प्रतिफल को उत्पन्न करती है, अनुकूलतम जनसंख्या होती है।'' (''Optimum Population is the number of people that in relation to given Economic Military or Social goals- Produces the maximum return-'')

पेटरसन के अनुसार ''अनुकूलतम जनसंख्या व्यक्तियों की वह संख्या है, जो किसी दी हुई प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण में अधिकतम आर्थिक प्रतिफल को उत्पन्न करती है।''

(''Optimum Population is the number of people that in a given natural, cultural and social environment produces the maximum conomic return-')

कार साउन्डर्स (Carr Saunders) के अनुसार ''अनुकूलतम जनसंख्या वह है, जो अधिकतम कल्याण उत्पन्न करती है।'' (''The Optimum Population is that population which produces maximum social welfare-'')

सावी ने कहा है कि ''अनुकूलतम जनसंख्या का अर्थ उस स्थिति से है जिसमें उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग हो और पूर्ण रोजगार, दीर्घ जीवन सम्भाव्यता, उत्तम स्वास्थ्य, ज्ञान और संस्कृति, सामाजिक सामंजस्य तथा पारिवारिक स्थायित्व की प्राप्ति होती है।''

प्रो. आर. एन. सिंह के अनुसार "किसी क्षेत्र या प्रदेश में निवास करने वाले व्यक्तियों की वह आदर्श संख्या जो उस क्षेत्र के संसाधनों के पूर्ण उपयोग के लिए उपयुक्त होती है जिससे सामान्य जीवन स्तर यथासम्भव उच्चतम हो सकता है, अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है। ''

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं से अन्ततः यही निष्कर्ष निकलता है कि अनुकूलतम जनसंख्या वह जनसंख्या है, जो उस क्षेत्र विशेष में निवासित व्यक्तियों की आय अधिकतम हो, उच्च आर्थिक विकास हो एवं उच्चतम जीवन स्तर प्राप्त हो।

अनुकूलतम जनसंख्या के निर्धारण के मापदण्ड

(Determinent Parameters of Optimum Population)

किसी क्षेत्र विशेष में निर्वासित जनसंख्या अनुकूलतम है या नहीं इसका आकलन निम्नांकित मापदण्डों की सहायता से किया जा सकता है–

1. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Production, GNP)– किसी क्षेत्र विशेष के कुल उत्पादन का आकलन सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है। GNPका उच्च स्वर अनुकूलतम जनसंख्या का परिचायक माना जाता है। लेकिन क्षेत्र विशेष में निर्वासित जनसंख्या में व्यक्ति विशेष की प्रति व्यक्ति आय के अन्तर का ज्ञान इसके द्वारा नहीं हो पाता है।''

2. पूर्ण रोजगार– किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार सभी को रोजगार प्राप्त करना भी अनुकूलतम जनसंख्या का मापदण्ड माना जाता है।

3. उच्चतम जीवन स्तर तीव्र आर्थिक विकास, उच्चतम आय एवं पूर्ण रोजगार प्राप्त क्षेत्र में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जैविक आवश्यकताएँ भी उच्च ही पायी जाती हैं। अतः उच्चतम जीवन स्तर की प्राप्ति उत्तम स्वास्थ्य एवं सभी सुविधाओं की पूर्ण व्यवस्था पर आधारित है।

4. संसाधनों का पूर्ण उपयोग– अनुकूलतम जनसंख्या होने पर उपलब्ध संसाधनों का आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से पूर्ण उपयोग होता है। प्रौद्योगिकी विकास के साथ नवीन संसाधनों की जानकारी होती रहती है तथा उनका आवश्यकतानुसार उपयोग होता रहता है।

5. जनांकिकीय संरचना – अनुकूलतम जनसंख्या में आयु, लिंग आदि सभी सन्तुलित अवस्था में पाये जाते हैं। जन्मदर एवं मृत्युदर में सन्तुलन पाया जाता है जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि भी बहुत कम एवं सन्तुलित रहती है। जनसंख्या लगभग स्थायी पायी जाती है।

6. प्रदूषण रहित विकास – अनुकूलतम जनसंख्या युक्त क्षेत्र में जलवायु, पर्यावरणीय प्रदूषण की मात्रा बहुत कम पायी जाती है। टेलर ने कहा है कि अनुकूलतम जनसंख्या का अधिकतम वह है जो पर्यावरण अथवा समाज या पोषण की कमी से व्यक्ति के स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाये बिना ही अनिश्चित काल तक कायम रह सके।

14.13 सारांश

जनसंख्या एवं संसाधन अन्तर्सम्बन्ध में प्रकृति मे उपलब्ध संसाधनों की तुलना में जन संख्या अनुकूलतम होना चाहिये। जनसंख्या अधिक होने पर संसाधनों पर दबाव उत्पन्न होता है जिससे संसाधनो का सन्तुलन बिगड जाता है। मानव की अत्यधिक वृद्धि एवं उसकी आवश्यकताएँ संसाधनों के सन्तुलनको बिगाड़ती है। मानव संसाधनों का उपयोग सोच समझ कर करें तो जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य सम्बन्ध सही रहे एवं समस्याएँ भी उत्पन्न न हो यह इकाई अध्ययन से जनसंख्या एवं संसाधनों के अन्तर्सम्बन्ध को समझने में सहायक होगी ।

14.14 पारिभाषिक शब्दावली

अनुकूलतम जनसंख्या (Optimum population) :– शब्द का प्रयोग जनसंख्या के लिए प्रो. एडविन कैनन ने किया था।''किसी क्षेत्र उपलब्ध दशाओ के अन्तर्गत व्यक्तियों की उस संख्या को अनुकूलतम जनसंख्या कहते हैं।

14.15 बोध प्रश्न

14.15.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर–

प्रश्नः 1 जनसंख्या एवं संसाधन अन्तर्सम्बन्ध क्या है समझाइये ?

प्रश्न 2 अनुकूलतम जनसंख्या क्या है समझाइये ?

14.15.2 लघुउत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न–1 अनुकूलतम जनसंख्या निर्धारण के मापदण्ड क्या है ?

प्रश्न–2जनाधिक्य के प्रकार बताइये?

14.15.3 बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्रश्न–1 सबसे बड़ा संसाधन है

(अ) मानवीय वुद्धि (ब) पेट्रोलियम (अ)

(स) कोयला (द) सौर ऊर्जा

प्रश्न–2 जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य अन्तर्सम्बधों का प्रतिपादन सर्वप्रथम किसने किया?

(अ) थामस राबर्ट माल्थस (ब) कार साण्डर्स (अ)

(स) बाल्डिंग (द) फेयर फील्ड औसबर्न

प्रश्न – 3 अनुकूलतम (Optimum) शब्द का प्रयोग किया–

(अ) विक्सैल (ब) कार साण्डर्स (अ)

(स) कैनन (द) बाल्डिंग

प्रश्न – 4 जनसंख्या के लिए अनुकूलतम शब्द का प्रयोग किया

(अ) कैनन (ब) विक्सैल (अ)

(स) रॉबिस (द) पेटरसन

14.16 सन्दर्भ सूचीग्रथं

1. **डॉ बी.सी जाट** ''संसाधन भूगोल'' मलिक बुक कम्पनी जयपुर
2. **प्रो जगदीश सिंह** ''संसाधन भूगोल'' ज्ञानोदय. गोरखपुर

इकाई–15 विश्व में ऊर्जा संकट एवं वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 विश्व मे ऊर्जा संकट

15.4 वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत

15.5 सारांश

15.6 पारिभाषिक शब्दावली

15.7 बोध प्रश्न

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.1 प्रस्तावना

प्रकृति के पारिस्थितिकीय सन्तुलन में ऊर्जा मुख्य भूमिका रहती है जो प्राकृतिक परिवेश के जैविक तथा अजैविक घटकों के मध्य अन्तः क्रिया बनाये रखती है पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग द्वारा पोषण स्तर एक स्वपोशी पादप विकसित होकर भविष्य मे ऊर्जा के विभिन्न रूपों में परिवर्तित होते है। वर्तमान मे पृथ्वी पर हमें ऊर्जा विभिन्न रूपो में मिलती है। कहीं खनिज संसाधनों (कोयला, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस) से तो कही भौतिक क्रियाओं ज्वार भाटा, पवन, सौर ऊर्जा आदि से मिलती है। इसे मनुष्य अपने प्रौद्योगिकी ज्ञान द्वारा विभिन्न रूपो में विकसित कर उत्पादित करता है। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या एवं संसाधनों के उपयोग से विश्व ऊर्जा संकट का सामना कर रहा है। ससाधनो के बढ़ते संकट को देखते हुए वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाये।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन में विश्व के ऊर्जा संकट एवं वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित है।

(अ) विश्व के वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

(ब) शिक्षाार्थी विश्व के वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के विश्व वितरण के विषय मे व्याख्या कर सकेंगे,

(स) विश्व के ऊर्जा संकट के बारे में विद्यार्थियों को अवगत कराना।

15.3 विश्व मे ऊर्जा संकट

तेल संकट तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या एवं आर्थिक विकास हेतु ऊर्जा का अत्यधिक उपयोग हुआ है। उच्चतर जीवन स्तर हेतु ऊर्जा का अधिक उपयोग होने से ऊर्जा की खपत एवं माँग अधिक हुई है। मानव के द्वारा कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस, आणुविक खनिजो का उपयोग अत्यधिक मात्रा हुआ है जिसे विकसित एवं विकासशील देश ऊर्जा संकट का सामने कर रहे है। संसाधन का वितरण विश्व में एक समान न होने के कारण कुछ देशो का खनिज संसाधन पर विशेष अधिकार हो गया है जैसे अरब देशों ने पेट्रोल का राष्ट्रीयकरण कर लिया है। पेट्रोल निर्यातक देशों के संगढन OPEC ने पेट्रोल की कीमतें बढ़ाने का निर्णय किया । अरब देशों पर विश्व की पेट्रोल निर्भरता बढ़ रही है। बढ़ती जनसंख्या एंव देशों की प्रगति के कारण तेल की मांग रिकार्ड तेजी से बढ़ रहा है। ऊर्जा संकट का सबसे अधिक प्रभाव विकासशील देशों पर ही पड़ा है जो पेट्रोल का आयात करते है। विकसित देश भी पेट्रोल के सबसे बडे क्रेता बने हुए है।एक ऐसे समय जब दुनिया एक वैश्विक ऊर्जा संकट का सामना कर रही है अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (IEA) ने कहा है कि शहरीकरण और औघोगीकरण के कारण वर्ष 2030 तक भारत की ऊर्जा माँग प्रतिवर्ष 30% से अधिक तक बढ़ सकती है।यद्यपि भारत नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाओं और दक्षता नीतियों के साथ व्यापक प्रगति भी कर रहा है।

जैविक ऊर्जा संकट–

विकासशील देशो में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो व्यापारिक ऊर्जा की अपेक्षा जैविक ऊर्जा विशेषकर लकड़ी को ही ईधन के रूप में प्रयोग करते है । बढ़ती जनसंख्या एवं अन्य कारणों से लकड़ी की मांग वृद्धि के कारण विकासशील देशों में बड़े पैमाने वना का कटाव हुआ है। विकासशील देशों में इस जैविक ऊर्जा संकट का द्वितीय ऊर्जा संकट कहा जा सकता है। वनों के विनाश से पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ता है एवं लकडी को ईधन के रूप में काम में लेने से उससे निकलने वाली धुंआ पर्यावरण को नुकसान पहुचाती है एवं जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

कार्बन उत्सर्जन संकट– मानव अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए संसाधनों का उपयोग ऊर्जा की प्राप्ति हेतु कर रहा है मानव का यह उपयोग पर्यावरण के अनुकूल नहीं है जिसमे विश्व भर में हरितगृह गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन अंतरर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक दल (IPCC) के चतुर्थ प्रतिवेदन ने विश्वस्तर पर हो रही हरितगृह प्रभाव – कार्बन डाई आक्साइड मिथेन, नाइट्रोजन का उत्सर्जन को कम करने की चिन्ता प्रकट की। मनुष्य के द्वारा परिवहन में प्रयोग पेट्रोल, जीवाश्म ईंधन को जलाने से निकलने वाली धुँआ एवं उद्योगों से निकलने वाली जहरीले पदार्थ वायुमण्डल में निरंतर फैल रहे है जिससे विश्व में ग्लोबल वार्मिंग एक समस्या बन रहा है।ऊर्जा संकट से बचने के लिए ऊर्जा संरक्षण करना एक अनिवार्य विषय बन गया है। ऊर्जा संरक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है कि अनव्यकरणीय संसाधनों के स्थान पर नव्यकरणीय संसाधनों का प्रयोग किया जाए।पेट्रोल एवं कोयले तथा आणविक ऊर्जा की अपेक्षा अधिकाधिक वैकल्पिक नव्यकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करना। ऊर्जा की खेती के द्वारा भी ऊर्जा संकट को कम किया जा सकता है जैसे जेट्रोफा पौधा द्वारा डीजल प्राप्त करके। जोजोबा नामक पौधे में वायुयान ईंधन प्राप्त इसी तरह जिन देशों में पर्याप्त पशुधन उपलब्ध है उनने अवशिष्टि कृषिगत पदार्थ गोवर, कूड़ा करकट आदि में मिथेन गैस प्राप्त करना भारत जैसे देश में ऊर्जा विकल्प की असीम सम्भावनाएँ है।

15.4 गैर–परम्परागत शक्ति के स्रोत

शक्ति के स्रोत ही मानव के प्रथम विकास में सहायक रहे हैं। इनमें सौर उर्जा, पवन ऊर्जा, महासागरीय ऊर्जा, ओटेक ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, बायोमास एवं जैव ईंधन प्रमुख हैं।

वर्तमान में इनका महत्त्व बढ़ता जा रहा है क्योंकि अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का लम्बी अवधि तक उपयोग संभव है। इनका विवरण निम्नलिखित है–

(i) भू–तापीय शक्ति (Geo&Thermal Energy)–

इस प्रकार की विद्युत निर्माण में भूमि से निकले हुए गर्म पानी के स्रोत और उनसे निकला हुआ ताप एकत्रित कर विद्युत का उत्पादन किया जाता है। यही भू–तापीय शक्ति है। आइसलैण्ड में इस प्रकार की शक्ति का उपयोग घरेलू क्षेत्रों में किया जाता है। इसी प्रकार इटली में स्थापित लारडेरेलो (Larderelo) केंद्र भू–तापीय शक्ति बनाने का एक प्रमुख केन्द्र है। कैलीफोर्निया में लगभग 9बड़े प्लांट भू–तापीय शक्ति का निर्माण करते हैं (Geyers स्थान पर)। कैलीफोर्निया में संसार का लगभग 50प्रतिशत भू–तापीय शक्ति का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अब कई स्थानों पर ज्वालामुखी क्षेत्र से निकले हुए गर्म जल स्रोतों, जैसे– जापान, न्यूजीलैण्ड, फिलीपीन्स, तुर्की एवं रूस में कई केन्द्र भू–तापीय शक्ति का निर्माण करते हैं। यह आसानी से प्राप्त होने वाली शक्ति है। जब इससे बिजली बनायी जाती है तो बहुत कम प्रदूषण होता

(ii) ज्वारीय शक्ति (Tidal Power)–

जब समुद्र का जल सूर्य की धूप से गर्म हो है तो दिनभर पानी में गर्म तरंगें उठती हैं। इसलिए उन स्थानों में जहाँ पर्याप्त मात्रा में गर्म क्षेत्र होता है तो इस प्रकार की शक्ति का निर्माण निरन्तर होता है। अपेक्षाकृत यह सस्ती दर पर प्राप्त होती है। इसमें समुद्र में आने वाले ज्वार महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संसार में अधिक ज्वारीय शक्ति का विकास (1) फ्रांस, (2) जर्मनी में है। इसलिए वर्तमान में फ्रांस के तटवर्ती क्षेत्रों में सेंटमालो संसार का सबसे बड़ा ज्वारीय शक्ति केन्द्र (Tidal Plant) भारत में भी चेन्नई के तटवर्ती क्षेत्रों में इसका निर्माण किया जा रहा है। संसार में लगभग 10 बड़े प्लांट इसी शक्ति से जुड़े हुए हैं।

(iii) पवन ऊर्जा (Wind Power)–

प्राचीनकाल से ही हवा शक्ति का एक प्रमुख साधन रही है जिसके द्वारा हम कुएं से पानी निकालने का काम, छोटी मोटर चलाने का काम कर रहे हैं। वर्तमान युग में कई स्थानों पर इसका इस्तेमाल किया जा रहा है, क्योंकि यह टर्बाइन (Power Turbine) इसी से गति प्राप्त करते हैं। संसार में सबसे अधिक इस प्रकार का विवरण समुद्री क्षेत्रों पर है। इसके उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रमुख है। भारत में पवन ऊर्जा के मामले में गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान, तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र अग्रणी हैं।

(iv) सौर्यिक ऊर्जा (Solar Energy)–

सूर्य ऊर्जा का सर्वाधिक व्यापक एवं स्रोत है, जो वातावरण में फोटोन (छोटी–छोटी प्रकाश तरंग पेटिकाएँ) के रूप में विकिरण से ऊर्जा का संचार करता है। भारत में प्रतिवर्ष 5000 ट्रिलियन किलोवाट घंटा के बराबर उर्जा मिलती है। सूर्य शक्ति वर्तमान वैज्ञानिक युग में अधिक उपयोगी है और छोटे स्थानों के इसका इस्तेमाल किया जाता है। अब बहुत से यंत्र शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित द्वारा लघु स्तर पर घरेलू बिजली का उपयोग प्रमुख है। यह वर्षा ऋतु में कार्य नहीं करते है। सर्वप्रथम व्यापारिक स्तर पर सौलर सेल सन् 1954 में बनाया गया। अब लगभग 28 विभिन्न देशों में 60 से अधिक कम्पनियाँ सौर सैल को वाणिज्यिक पैमाने पर निर्मित कर रही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे बड़ा सौर सैल उत्पादक देश है। जापान भी तीव्रता से विकास कर रहा है। अन्य में फ्रांस, इटली, जर्मनी, आस्ट्रेलिया आदि हैं। भारत में सौर ऊर्जा उत्पादन की सर्वाधिक अनुकूल स्थिति

में पश्चिमी राजस्थान में है।

(v) बायोमास ऊर्जा (Biomass Energy)– यह ऊर्जा मुख्यतः पौधों एवं कुड़ा–कचरों से प्राप्त की जाती है। इसमें चीनी मीलों से निकलने वाली खोई का प्रमुख स्थान है।

(vi) अणु शक्ति (Nuclear Power)– वर्तमान गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों में यह सबसे महत्त्वपूर्ण है। अब यह धीरे–धीरे परम्परागत ऊर्जा स्रोतों में सम्मिलित किया जाने लगा है। यह शक्ति घरेलू उपयोग और औद्योगिक उपयोग में लायी जा रही है। संसार में सबसे पहला अणु शक्ति ब्रिटेन के केलडर हाल (Calder hall) स्थान पर 1956 में स्थापित हुआ था अब वर्तमान में ब्रिटेन में लगभग 35 अणु शक्ति केन्द्र (Nuclear Power Station) हैं जो अपनी कुल क्षमता का 15 प्रतिशत उत्पादन प्रदान करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका भी अणु शक्ति का तीव्र गति से विकास कर रहा है। जहाँ 66 केन्द्र निर्माण क्षमता रखते हैं एवं

सारिणी –15.1 अणु शक्ति का उत्पादन 2014

देश	**विश्व का प्रतिशत**
1. संयुक्त राज्य अमेरिका	33.2
2. फ्रांस	17.1
3. रूस	7.0
4. दक्षिण	5.6
5. चीन	4.5
6. कनाडा	4.2
7. जर्मनी	3.9
8. यूक्रेन	3.3
9. ब्रिटेन	2.9
10. स्वीडेन	2.7
शेष विश्व	**15.7**

लगभग 142इकाइयाँ निर्माणाधीन हैं। देश की कुल शक्ति का लगभग 11प्रतिशत इसी से प्राप्त होता है। अन्य देशों में जापान, जर्मनी, रूस, फ्रांस, स्वीडन, कनाडा एवं स्पेन प्रमुख हैं। अब इस प्रकार की

शक्ति का अन्य विकासशील देशों में भी गैर–परम्परागत स्रोतों में प्रथम स्थान होने लगा है। मिस्र, ब्राजील, इराक, ईरान, द. कोरिया, ताइवान, भारत, पाकिस्तान,अर्जेन्टीना आदि देशों में अणु शक्ति के केन्द्र स्थापित हैं। भारत अपनी कुल शक्ति का लगभग 2.23प्रतिशत अणु शक्ति से ही प्राप्त करता है। यह विद्युत के विकास में नया चरण है।

15.5 सारांश

वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन मानव के प्रथम विकास में सहायकरहे हैं। बढ़ती जनसंख्या एवं संसाधनो का अतिदोहन के कारण संसाधनो का अधिक मात्रा मे ह्रास हुआ है। पर्यावरण संतुलन एवं सतत विकास को बनाये रखने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनो का उपयोग महत्वपूर्ण है। वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों में सैर्थिक ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सर्वत्र उपलब्ध संसाधन है जो अपमाय संसाधन है।नवीनीकरणीय योग्य संसाधन ऊर्जा संकट से बचने के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जो पर्यावरण संतुलन को नष्ट किए बिना मानवको उसकी आवश्यकता की पूर्ति करेगे।इस इकाई के अध्ययन में वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनो की महत्ताका अध्ययन को समझ सकेंगे।

15.6 पारिभाषिक शब्दावली

केलंडर हाल :– संसार के सबसे पहला अणुशक्ति ब्रिटेन के केलंडर हाल स्थान पर 1956 में स्थापित हुआ।

लावडेरेलो :– भूतापीय शक्ति का प्रमुख केन्द्र इटली में /

15.7. बोध प्रश्न

15.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. ऊर्जा संकट के बारे में समझाइये 1

प्रश्न 2. बैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के बारे में बताइयें ।

15.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न! –

प्रश्न–सौर्यिक ऊर्जा संसाधन की प्राप्ति के स्थान बनाइये ?

प्रश्न– भारत में पवन ऊर्जा की प्राप्ति के स्थान है।

15.7.3 बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर –

प्रश्न–1 श्वेत कोयला (white Coal) किसे कहते हैं ?

(अ) जलविद्युत (ख) तापविद्युत

(स) परमाणु ऊर्जा (द) सौर ऊर्जा

प्रश्न–2 कौन सा देश आणविक शक्ति के उत्पादन में प्रथम स्थान पर है ?

(अ) फ्रांस (ब) यू.एस.ए

(स) जर्मनी (द) कनाडा

प्रश्न–3 निम्नलिखित में से वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन नहीं है?

(अ) भूतापीय शक्ति (ब) ज्वारीय शक्ति

(स) पवन शक्ति (द) जल विद्युत

प्रश्न 4:–निम्नलिखित में से वैकल्पिक ऊर्जा साधन है ?

(अ) कोयला (ब) पेट्रोल

(स) प्राकृतिक गैस (स) प्राकृतिक गैस

15.8.सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ बी.सी जाट''संसाधन भूगोल'' मालिक बुक कम्पनी जयपुर,
2. प्रो जगदीश सिंह '' संसाधन भूगोल'' ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
3 Dr- Alka Gautam ! Resources Geography

इकाई–16 विश्व के संसाधन प्रदेश

इकाई की रूपरेखा

16.1प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 विश्व के संसाधन प्रदेश

16.3.1.उत्तर के उपध्रुवीय प्रदेश

16.3.2.शीतोष्ण यूरोपीय प्रदेश

16.3.3. ध्रुवीय प्रदेश

16.3.4.आंग्ल अमेरिका प्रदेश

16.3.5.उष्ण अफ्रीकी एशियाई शुष्क प्रदेश

16.3.6 आर्द्र एवं अर्द्ध शुष्क अफ्रीकी प्रदेश

16.3.7 मानसूनी एशियाई प्रदेश

16.3.8.लैटिन अमेरिकी प्रदेश

16.3.9.प्रशान्त महासागरीय प्रदेश

16.4. सारांश

16.5. पारिभाषिक शब्दावलीः–

16.6. बोध प्रश्न

16.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

16.1 प्रस्तावना

विश्व में संसाधनो का वितरण एवं उत्पादन समान रूप से नहीं पाया जाता है। संसाधन मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति करता है।संसाधन प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत भौगोलिक तत्वों

की समानता पाई जाती है। संसाधन प्रदेश स्थलाकृति, जलवायु, प्राकृतिक भूदृश्य भाषा सभ्यता–संस्कृति की समरुपता होती है। संसाधन प्रदेश में जैविक एवं अजैविक संसाधनों में समानता पायी जाती है। भौगोलिक वातावरण के तत्वों की सम्बद्वता जितने क्षेत्र में पायी जाती है। उस क्षेत्र विशेष को संसाधन प्रदेश कहा जाता है । इस इकाई में विश्व के संसाधन प्रदेशों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

16.2 उददेश्य

इस इकाई में विश्व के संसाधन प्रदेश का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित है

(अ) विश्व के संसाधन प्रदेशों को स्पष्ट करना।

(ब) विद्यार्थी विभिन्न संसाधन प्रदेशों के विषय मे व्याख्या कर सकेंगे।

(स) विद्यार्थीयों को विश्व के संसाधन प्रदेशों की विशेषताओं, वितरण के बारे में अवगत कराना

16.3 विश्व के संसाधन प्रदेश(Resources Region of the World)

संसाधन प्रदेश की संकल्पना का विकास विश्व के विभिन्न भागों में स्थित विविध संसाधनों के वितरण एवं उत्पादन की प्रक्रिया के बाद हुआ। संसाधन प्रदेश में उपलब्ध संसाधनों के उत्पादन एवं वितरण तथा उनके उपयोग कीएक समानता एवं समरूपता पायी जाती है।संसाधन के अन्तर्गत उन सभी वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है जो मनुष्य की किसी–न–किसी आवश्यकता की पूर्ति में सहायक होती है। जबकि प्रदेश विशेष से तात्पर्य एक ऐसे क्षेत्र से है जिसके अन्तर्गत विभिन्न भौगोलिक तत्त्वों की समानता हो तथा अपने गुण एवं सम्बद्धता की दृष्टि से अन्य क्षेत्रों से भिन्न हो। इस प्रकार एक ऐसा क्षेत्र, जिसका एक निश्चित विस्तार होता है तथा विभिन्न भौगोलिक तत्वों या किसी एक तत्व विशेष की सारे प्रदेश में समरूपता पायी जाती है, संसाधन प्रदेश कहलाते हैं।प्रदेश में किसी तत्त्व विशेष की समानता क्षेत्रीय सम्बद्धता से उत्पन्न संशक्तता तथा अन्य प्रदेशों से भिन्नता आदि विशेषताएँ होना अनिवार्य है। अतः प्रदेश विशेष में स्थलाकृति, जलवायु, प्राकृतिक भूदृश्य, भाषा, सभ्यता–संस्कृति, आर्थिक विकास का स्तर आदि को समरूपता एवं समानता के साथ–साथ इन कारकों में एक–दूसरे में पारस्परिक सम्बद्धता एवं संशक्तता होना आवश्यक है। अतः प्रदेश विशेष में विभिन्न भौतिक एवं सांस्कृतिक (तत्त्वों) संसाधनों की समरूपता एवं सम्बद्धता होना एक अनिवार्य तत्त्व है। उदाहरणार्थ किसी प्रदेश विशेष की धरातलीय संरचना एवं जलवायु के अनुसार वहाँ अनुकूल वनस्पति का विकास होता है जो एक विशेष प्रकार के भौगोलिक वातावरण को जन्म देते हैं। ये सभी कारक एक–दूसरे से प्रभावित होकर तथा एक–दूसरे पर परस्पर निर्भर रहकर अपना विकास करते हैं।

इस आधार पर संसाधन प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र होता है जहाँ जैविक एवं अजैविक संसाधनों में उस क्षेत्र विशेष में समानता एवं समरूपता पायी जाती है तथा विभिन्न संसाधनों के मध्य क्षेत्रीय सम्बद्धता एवं संशक्तता पायी जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भौगोलिक वातावरण की समानता के साथ विभिन्न भौगोलिक वातावरण के तत्त्वों की सम्बद्धता जितने क्षेत्र में पायी जाती है। उस क्षेत्र विशेष को संसाधन प्रदेश कहा जा सकता हैअतः संसाधन प्रदेश में विभिन्न तत्त्वों की समानता तथा समरूपता के साथ–साथ उन तत्त्वों में एक–दूसरे के प्रति संशक्तता एवं सम्बद्धता होना अति आवश्यक है। विभिन्न तत्त्वों की सम्बद्धता से उत्पन्न विशेषता के कारण ही एक संसाधन प्रदेश दूसरे संसाधन प्रदेश से भिन्न पाया जाता है। अतः संसाधन प्रदेश विभिन्न तत्त्वों की समरूपता एवं

संशक्तता का परिणाम होता है।

विश्व के संसाधन प्रदेश(Resource Regions of the World)–विश्व के विभिन्न संसाधन प्रदेशों का सीमांकन भौतिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों की विभिन्नता एवं समानता के आधार पर किया गया है। भौतिक एवं मानवीय तत्त्वों में जलवायु, वनस्पति, जनसंख्या घनत्व मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति, धरातलीय विविधता आदि तत्वों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।इन कारकों के आधार पर विश्व को निम्नलिखित संसाधन प्रदेशों में विभाजित किया गया है।

1- ध्रुवीय प्रदेश (Polar Region)

ध्रवीय प्रदेश क्षेत्र उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों के समीपवर्ती भाग में फैला हुआ है। इसका विस्तार भूमध्य रेखा की ओर आर्कटिक एवं अण्टार्कटिक वृत्तों तक पाया जाता है। अतः उत्तरी ध्रुव से आर्कटिक वृत्त एवं दक्षिण ध्रुव से अण्टार्कटिक वृत्त के मध्य ध्रुवीय प्रदेश क्षेत्र का विस्तार पाया जाता है। स्थलीय सीमाओं के साथ–साथ जलवायु की दशाओं के द्वारा भी इस मण्डल की स्थिति निर्धारित की गयी है। जहाँ पर औसत वार्षिक तापमान 10°सेल्सियस से कम पाया जाता है उस क्षेत्र को ध्रुवीय प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है।

प्राकृतिक वातावरण (Natural Environment) – धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से इस क्षेत्र में पर्वत, पठार, मैदान, घाटियाँ आदि पाये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में बर्फ के पिघलने के कारण अस्थायी झीलों एवं दलदली क्षेत्रों का भी निर्माण हो जाता है। इस क्षेत्र में जलवायु की विशेष दशाएँ पायी जाती हैं। तापमान अत्यधिक न्यून पाया जाता है। जिसके कारण वर्ष भर धरातल पर बर्फ जमी रहती है। वर्षा सामान्यतया बर्फ कणों (हिम कणों) के रूप में होती है। वर्षा का वार्षिक औसत 25 सेमी. तक पाया जाता है। हवा की गति यहाँ तीव्र पायी जाती है। हवा शुष्क एवं ठण्डी रहती है। तीव्र गति से चलने वाली इन ठण्डी हवाओं को ब्लिजार्ड के नाम से जाना जाता है। जलवायु की दशाओं में ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है।जलवायु विभिन्नता के कारण यहाँ वनस्पति में भी प्रादेशिक भिन्नता पायी जाती है। उत्तरी एवं दक्षिण ध्रुवों के समीप तापमान हमेशा $0^{\circ}C$ से नीचे पाया जाता है। अतः यहाँ वर्ष भर धरातल पर बर्फ जमी रहती है जिसके कारण यहाँ वनस्पति का पूर्णतया अभाव पाया जाता है। इस बर्फयुक्त क्षेत्र को शीत मरूस्थलीय क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। ध्रुवीय क्षेत्र से भूमध्यरेखा की ओर स्थित क्षेत्र जहाँ तापमान $3^{\circ}C$ तक पाया जाता है, ग्रीष्म ऋतु में बर्फ पिघल जाती है। अतः यहाँ छोटी–छोटी घास पायी जाती है। इस क्षेत्र को टुण्ड्रा प्रदेश के नाम से जाना जाता है। ध्रुवीय प्रदेश की भूमध्यरेखा की ओर की अन्तिम सीमा पर तापमान 50 से $10^{\circ}C$ तक पाया जाती है। अतः यहाँ घास के साथ–साथ झाड़ीयुक्त वनस्पति भी पायी जाती है। इसे झाड़ीयुक्त टुण्ड्रा प्रदेश कहा जाता है। टुण्ड्रा प्रदेश में ध्रुवीय क्षेत्रों के समीपवर्ती भाग में मांस, लाइकेन तथा भूमध्यरेखा की ओर वाले भाग में ऑल्डर, बर्च, बिल, क्रोबेरी, बिलबेरी आदि वनस्पति पायी जाती है। ग्रीष्म ऋतु की छोटी अवधि में आर्कटिक वृत्त के समीपवर्ती भाग में विविध रंग के फूल भी उगते हैं।

संसाधन (Resources)– ध्रुवीय प्रदेश क्षेत्र में अधिकतर जलीय जैविक संसाधन पाये जाते हैं। तापमान कम होने के कारण यहाँ ठण्डे समुद्री जल में प्लैकंटन (Plankton) की प्रधानता पायी जाती है। प्लैकंटन के अतिरिक्त विविध प्रकार की मछलियाँ, सील, ध्रुवीय भालू भेड़िये, मस्क ऑक्स, कैरीबू,

रेण्डीयर, लेमिंग, खरगोश, वालरस पशु तथा पेविन जैसे विशिष्ट जैविक जन्तु पाये जाते हैं। अण्टाकटिका में पेंगविन अधिक मिलते हैं।यहाँ जैविक संसाधन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। खनिजों को दृष्टि से धरातल पर बर्फ जमी रहने के कारण अभी तक अन्वेषण कार्य नहीं हो पाया है। अतः खनिजों की वास्तविक मात्रा की जानकारी नहीं है। कई वैज्ञानिकों ने चट्टानों की प्रकृति का अध्ययन करने पर यह पता लगाया है कि यहाँ मौलिक धातुओं की अधिकतर मात्रा पायी जाती है। डेकन स्टुअर्ट नामक अन्वेषक ने अण्टार्कटिका में अन्वेषण द्वारा 174 खनिजों की उपलब्धि का पता लगाया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में ग्रीनलैण्ड से क्रायोलाइट, रूस के पेबानो क्षेत्र से निकल, ग्रेट बीयर झील के समीपवर्ती भाग से यूरेनियम, स्वालवॉड तथा लीना क्षेत्र से कोयला एवं उत्तरी अलास्का से प्राकृतिक गैस का दोहन किया जा रहा है। अतः यहाँ खनिजों का अभी तक पूर्णतया पता नहीं लगाया गया है। जहाँ उपलब्ध है तथा आसानी से दोहन किया जा सकता है। वहाँ कार्य प्रगति पर चल रहा है।

मानवीय वातावरण (Human Environment) वर्ष के अधिकतर समय में स्थल पर बर्फ जमी रहने तथा प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण अधिकतर भाग जनशून्य पाया जाता है। अण्टार्कटिका लगभग जनशून्य पाया जाता है। यहाँ केवल वैज्ञानिक नवीन खोजों के लिए जाते रहते हैं। आर्कटिक वृत्त में दो व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. का जनसंख्या घनत्व पाया जाता है। अधिकांश लोग उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भाग में तथा यूरेशिया में पाये जाते हैं। टुण्ड्रा प्रदेश में एस्किमो निवास करते हैं। इनका प्रमुख भोजन सील मछली का कच्चा माँस तथा कैरीबो का माँस है। यूरेशिया में लैप्स आदि लोग निवास करते हैं जो रेण्डियर पशुओं को पालते हैं। ये अपने पशुओं के साथ चरागाह की तलाश में घूमते रहते हैं। वर्तमान समय में इन लोगों का सम्पर्क सभ्य लोगों से होने के कारण रहन–सहन एवं आर्थिक स्तर में परिवर्तन हो रहा है। धीरे– धीरे ये लोग अपनी पुरानी आदतों को छोड़कर आधुनिक रहन–सहन एवं खान–पान की ओर अग्रसर हो रहे हैं। ध्रुवीय प्रदेशीय प्रदेश में प्राकृतिक वातावरण की समानता के साथ–साथ आर्कटिक एवं अकटिक प्रदेश में काफी अन्तर पाया जाता है।

सारिणी–16.1: आर्कटिक क्षेत्र एवं अण्टार्कटिक क्षेत्र में अन्तर

क्र.सं.	आर्कटिक क्षेत्र	अण्टार्कटिक क्षेत्र
1.	आर्कटिक क्षेत्र का स्थलीय भाग चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ है।	टृण्टार्कटिक क्षेत्र में समुद्रीय भाग स्थल भाग द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है।
2.	उत्तरी भाग में स्थलीय प्रधानता के कारण समुद्री धाराएँ तथा हवाएँ मन्द गति से प्रवाहित होती हैं।	दक्षिणी भाग में समुद्री भाग की प्रधानता के कारण हवाएँ तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं।
3.	उत्तरी भाग में सीमित हिमनद पाये जाते हैं।	दक्षिणी भाग में सर्वत्र हिमनद पाये जाते हैं।
4.	यहाँ टुण्ड्रा वनस्पति पायी जाती है।	यहाँ लाइकेन तथा मॉस की प्रधानता हैं।
5.	इस क्षेत्र में स्थलीय पशु अधिक मात्रा में रहते हैं।	यहाँ अधिकतर जलीय पशु पाये जाते है।

6.	आर्कटिक क्षेत्र में कुछ लोग निवास करते हैं।	यहाँ किसी मानव समुदाय का स्थायी निवास नहीं है।

2. उत्तर के उपध्रुवीय प्रदेश (North Sub Polar Region)

उत्तरी अमेरिका तथा यूरेशिया के उत्तरी भाग में ध्रुवीय प्रदेश के दक्षिण में विस्तृत क्षेत्र को उपोत्तर ध्रुवीय प्रदेश के दक्षिण में विस्तृत क्षेत्र को उपोत्तर ध्रुवीय प्रदेश कहते हैं। इसका विस्तार स्केन्डीनेविया, अलास्का तथा पूर्वी साइबेरिया में पाया जाता है। वनस्पति की विशेषता के कारण इसे टैगा प्रदेश के नाम से जाना जाता है। टैगा वनीय क्षेत्र में अधिकतर कोणधारी वन पाये जाते हैं। अतः इस क्षेत्र में अधिकतर कोणधारी वन पाये जाते हैं। अतः इस क्षेत्र में वनस्पति का विस्तार अधिक पाया जाता है। इस प्रदेश को अमेरिका एवं यूरेशिया दो भागों में बाँटा गया है क्योंकि इसका विस्तार भूमध्य रेखा के केवल उत्तरी भाग में यूरेशिया एवं अमेरिका में ही पाया जाता है।

प्राकृतिक वातावरण (Natural Environment) इस क्षेत्र में टैगा वनस्पति का विस्तार पाया जाता है। यहाँ स्प्रुस, फर, लार्च, पाइन आदि कोणधारी वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है। अमेरिका में स्प्रूस पूर्वी साइबेरिया में फर तथा लार्च एवं पश्चिमी साइबेरिया में स्प्रूस, फर, बर्च, एस्पेन आदि वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है। नदियों एवं समुद्री किनारों पर चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष पाये जाते हैं। जलवायु की दृष्टि से यहाँ ग्रीष्म ऋतु छोटी एवं अल्पावधि की पायी जाती है। इसके विपरीत शीत ऋतु लम्बी, कठोर पायी जाती है। ठण्डे एवं गर्म महीने के तापमान में बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है। जनवरी में साइबेरिया में स्थित बखयास्क का औसत **तापमान** –58.2° सेल्सियस पाया जाता है जो विश्व में अत्यन्त कम तापमान माना जाता है। इसके विपरीत जुलाई में यहां 59.9° फारनेहाइट तापमान पाया जाता है। ग्रीष्म काल में दिन 18 से 24 घण्टे होते हैं जिसके कारण दैनिक तापमान अधिक प्राप्त होता है। शीत ऋतु में दिन की अवधि छोटी होने के कारण निम्न तापमान पाया जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत यहाँ 25 सेमी. पाया जाता है। यहाँ वर्षा ग्रीष्मकाल या अल्पावधि में प्राप्त होती है। इसके विपरीत शीतऋतु शुष्क पायी जाती है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से यहाँ काफी विविधता पायी जाती है। यहां पुरानी चट्टानों से निर्मित पठार पाये जाते हैं इसके विपरीत आन्तरिक भाग में इनकी ऊँचाई कम होती जाती है। इस भाग में झीलों की संख्या अधिक पायी जाती है। झीलों का निर्माण नदियों तथा हिमनदों के द्वारा हुआ है। साइबेरिया के पूर्वी भाग में पर्वत तथा उत्तरी भाग में छोटे–छोटे मैदान पाये जाते हैं।

संसाधन (Resources) – उपोत्तर ध्रुवीय प्रदेश में प्रमुख संसाधन वन है। यहाँ अधिकतर एक ही प्रजाति के कोणधारी वन पाये जाते हैं। एक ही प्रजाति के वन एक भाग में पाये जाने के कारण इनकी कटाई सरलता से हो जाती है। लकड़ी नरम रहती है। अतः इस लकड़ी का उपयोग दियासलाई कागज आदि के निर्माण किया जाता है। वनस्पति के अतिरिक्त जैविक संसाधनों में यहाँ रेण्डीयर मस्क, ऑक्स, कैरी आदि पशुपाये जाते हैं। ये पशु आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त यहाँ बीवर, मुस्क्रात, मिंक मार्टन, एरमाइन, ओल्टर, एरमाइन, लोमडी आदि पशु पर्यटकों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। जलीय क्षेत्रों में विभिन्न किस्म की मछलियाँ पायी जाती हैं। टैगा प्रदेश के अधिकतर भाग में प्राचीन रवेदार चट्टान पायी जाती है।इस प्रदेश में खनिज भी पाये जाते हैं। लौह अयस्क की दृष्टि से स्वीडन के किरूना गैलिवर, कनाडा के लेब्राडोरे क्षेत्र प्रमुख हैं। कनाडा का सडबरी क्षेत्र निकल, ताबा, सोना, चाँदी, में सीसा जस्ता प्लैटिनम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यूराल पर्वत में लोहा, कोबाल्ट, टंगस्टन, क्रोमाइट, टाइटेनियम, वेनेडियम, सीसा, निकल, ताँबा, जस्ता

एल्युमिनियम तथा मैदानी एवं तीय क्षेत्र में कोयला, तेल, ताँबा, चाँदी, जस्ता आदि महत्त्वपूर्ण खनिज पाये जाते हैं। अतः यह प्रदेश खनिजों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

मानवीय वातावरण (Human Environment) – उपोत्तर ध्रुवीय प्रदेश का विस्तार कुल धरातलीय भाग के 10 प्रतिशत भाग पर पाया जाता है। लेकिन यहाँ जनसंख्या घनत्व 2 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से भी कम पाया जाता है। अधिकतर लोग समुद्र तटीय भागों, नदियों के तटों पर तथा जहाँ तक परिवहन के साधनों की सुविधा उपलब्ध है वहाँ निवास करते हैं। निवास करने वाले अधिकतर लोग घुमक्कड होते हैं जो अपने पालतू पशुओं को लेकर चरागाह की ओर स्थानान्तरण करते रहते हैं साइबेरिया में रहने वाले लेप्स जाति के लोग रेण्डीयर के झुण्ड पालते हैं। स्केण्डीनेवेनिया एवं अमेरिका के रेडइंडियन पशुपालन एवं लकड़ी काटने का कार्य करते हैं। अतः यहाँ बहुत कम जनसंख्या पायी जाती है जो अपने जीवन–निर्वाह हेतु पशुओं को पालना एवं लकड़ी काटने के व्यवसाय में लगे हुए हैं।

3.आंग्ल अमेरिका प्रदेश(Anglo American Region) इस प्रदेश का विस्तार उत्तरी अमेरिका में कनाडा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के टुण्ड्रा एवं टैगा प्रदेश को छोड़कर सम्पूर्ण भाग को सम्मिलित किया गया है। यह प्रदेश संसाधन की दृष्टि से एक विकसित प्रदेश माना जाता है। यहाँ यूरोप से आये सभ्य लोग निवास करते हैं जिनका जीवन स्तर बहुत उच्च पाया जाता है। संसाधनों की मात्रा, जलवायु एवं जनसंख्या की दृष्टि से इसे दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(i) पूर्वी आंग्ल अमेरिका (Eastern Anglo America)–उत्तरी अमेरिका में 50 सेमी. वर्षा की रेखा के पूर्वी भाग को पूर्वी आंग्ल अमेरिका कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने 100 डिग्री पश्चिमी देशान्तर रेखा के पूर्वी भाग को पूर्वी आंग्ल अमेरिकी प्रदेश में सम्मिलित किया है। साधारणतया रॉकी पर्वत के पूर्वी छोर को या वृहद मैदानी भाग के पूर्वी छोर को सीमा माना जाता है। इसके पूर्व में स्थित भाग पूर्वी आंग्ल अमेरिका कहलाता है।

(ii) पश्चिमी आंग्ल अमेरिका (Western Anglo America)– इसका विस्तार 100डिग्री पश्चिमी देशान्तर रेखा के पश्चिमी भाग में पाया जाता है। इस प्रदेश में भौगोलिक कारकों में अत्यधिक विभिन्नता पायी जाती है।

प्राकृतिक एवं मानवीय वातावरण तथा संसाधन– इस भाग में अधिकतर धरातल उबड़–खाबड़ पर्वतीय एवं बीहड पाया जाता है। वर्षा की मात्रा प्रशान्त महासागर के तटीय भागको छोड़कर बहुत कम होती है। अतः यहाँ पर्वतों, अन्तपर्वतीय पठारों तथा घाटियों को प्रधानता पायी जाती है। जलवायु वर्षा की कमी एवं पर्वतीय भाग के कारण कुछ मात्रा में प्रतिकूल पायी जाती है। धरातलीय विभिन्नता के कारण फसलों के उत्पादन एवं वनस्पति तथा जनसंख्या के घनत्व में बहुत विविधता पायी जाती है। पश्चिमी भाग का दक्षिणी–पश्चिमी भाग रेगिस्तानी हैं। जबकि उत्तरी–पश्चिमी भाग में मिश्रित वन पाये जाते हैं।

संसाधनों की दृष्टि से यहाँ कोयला, तेल आदि शक्ति के संसाधनों का अभाव है। कोयला बहुत कम मात्रा में रॉकी पर्वतीय क्षेत्र में मिलता है जो घटिया किस्म का है। कैलिफोर्निया में तेल के भण्डार पाये जाते हैं। यहाँ पर्वतीय एवं पठारी भाग होने के कारण ब्रिटिश कोलम्बिया, कास्केद तथा सियरा नेवादा में जल विद्युत के उत्पादन की अधिक सम्भावना है। एरीजोना, उटाह नेवादा में ताँबा, कनाडा के कोलम्बिया राज्य की किम्बरले खान से सीसा, जस्ता, चांदी, ब्रिटिश कोलम्बिया में कोयला पाया जाता है। अतः अलौह खनिजों की दृष्टि से प्रदेश सम्पन्न माना जाता है। संसाधनों की कमी, धरातलीय विषमता एवं जलवायु के कारण जनसंख्या बहुत कम रहती है। जहाँ कहीं समतल

धरातलीय भाग है तथा परिवहन को सुविधा,एवम संसाधनों की उपलब्धि है वहाँ एवं तटीय भाग में ही सघन जनसंख्या निवास करती है।

4. शीतोष्ण यूरोपीय प्रदेश (Temperate Europien Region)–टुण्ड्रा एवं टैगा प्रदेश के दक्षिणी भाग में विस्तृत यूरोपीय क्षेत्र को सम शीतोष्ण प्रदेश कहा जाता है। इसका विस्तार पूर्व में पश्चिमी साइबेरिया तक पाया जाता है। यहाँ वर्ष भर नम वर्षा शीतोष्ण जलवायु पायी जाती है। इस प्रदेश में तापमान वर्ष भर समान रहता है तथा वर्षा पर्याप्त होती है। यहाँ उन्नत कृषि, औद्योगिकरण, तकनीकी विकास, व्यावसायिक गतिविधियों की सधनता पायी जाती है। इस प्रदेश में अधिक यूरोपीयन सभ्यता को पश्चिमी देशों की दूरी माना है। अमेरिका में यूरोपीय लोगों के जाने के बाद ही वर्तमान में जो विकास का स्तर है, उसकी प्राप्ति हुई।इस प्रदेश में जलवायु, रहन–सहन, आर्थिक स्तर आदि में उत्तर से दक्षिण तथा पश्चिम से पूर्व की ओर बहुत अन्तर पाया जाता है। अतः इसे संसाधनों की उपलब्धता तथा उपयोगिता की दृष्टि से चार उपभागों में बाँटा गया है–

(i) उत्तरी–पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेश (North&Western Oceanic Region)– यूरोपीय प्रदेश में पश्चिम समुद्र के तटीय क्षेत्र में स्थित ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, स्वीडन, हालैण्ड, डेनमार्क, नार्वे आदि देश इसके अन्तर्गत आते हैं। इस पूरे प्रदेश में समुद्रीय सम जलवायु पायी जाती है। समुद्री प्रभाव के कारण यहाँ औसत वार्षिक तापमान 15 से 30°Cके मध्य रहता है। इसके कारण वर्ष भर जलवायु मनुष्य के लिए अनुकूल रहती है। वर्ष के अधिकांश समय में वर्षा होती रहती है। अतः फसल उत्पादन के लिए वर्षा के द्वारा वर्ष भर पर्याप्त जल मिलता रहता है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से इस प्रदेश में केवल उत्तरी पर्वत श्रेणियों हैं तथा शेष भाग में समस्त मैदानी भाग को प्रधानता है। मिट्टी कृषि उत्पादनकी दृष्टि उपजाऊ पायी जाती है। पॉडजाल तथा पॉडजोलिक मिट्टी की प्रधानता है। संसाधनों की दृष्टि से यह प्रदेश एक विकसित क्षेत्र है। खनिजों में शक्ति के संसाधन कोयला की प्रधानता है। लेकिन लौह अयस्क सीमित मात्रा में ही पाया जाता है। अनुकूल जलवायु तटीय मैदानी भाग, संसाधनों की प्रचुरता के कारण यूरोपीय प्रदेश के इस भाग में सर्वाधिक एवं सघन जनसंख्या निवास करती है। तकनीकी सुविधाओं के कारण इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास भी अधिक हुआ है। अतः यह प्रदेश एक विकसित प्रदेश है।

(ii) मध्य यूरोप–यूरोपीय प्रदेश के मध्यवर्ती भाग में जर्मनी से मध्य रूस तक फैले हुए भाग को मध्य यूरोपीय प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है। मध्य यूरोप के उत्तर में टुण्ड्रा–टैगा प्रदेश तथा दक्षिण में भूमध्यसागरीय प्रदेश स्थित है।यह एक संक्रमणीय प्रदेश है जहाँ समुद्रीय एवं महाद्वीपीय दोनों प्रकार की जलवायु पायी जाती है। तापमान में गर्मी एवं सर्दी की ऋतु में काफी अन्तर पाया जाता है। औसत वार्षिक तापमान 30°से 45°F रहता है। लेकिन यहाँ ग्रीष्म ऋतु अपेक्षाकृत अधिक गर्मी पायी जाती है। इसके विपरीत शीत ऋतु में सामान्यतया शीतलता कम रहती है। क्योंकि अटलांटिक समुद्र की हवाएँ यहाँ तक आती रहती है, जिसके कारण शीत ऋतु में जलवायु पर समुद्री हवाओं का प्रभाव रहता है। वर्षा अनियमित होती है। पहाड़ी ढालों पर अधिक तथा मैदानी भागों में कम होती है। वर्षा के विपरीत पाला पड़ने की सम्भावना यहाँ अधिक रहती है। अतः कृषि फसलों को हमेशा खतरा बना रहता है। खनिजों की दृष्टि से यहाँ कोयला, पेट्रोलियम, लोहा, तांबा, जस्ता, सीसा, बाक्साइट, पोटाश, ग्रेफाइट, क्योलिन आदि पाये जाते हैं। अतः इसी कारण यहाँ जनसंख्या भी उत्तर–पश्चिमी समुद्रतटीय प्रदेश से कम रहती है। जनसंख्या का घनत्व 100 से 250 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. के मध्य पाया जाता है। राजनीतिक अस्थिरता के कारण यहाँ विभिन्न देशों की सीमाएँ भी परिवर्तित होती रहती है। अतः अन्य प्रदेशों की तुलना में इस प्रदेश का विकास कम हुआ है।

(iii) यूरोपीय रूस–यूरोपीय प्रदेश के पूर्वी भाग में रूसी क्षेत्र में फैले हुए भाग को यूरोपीय रूस प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है। इस सम्पूर्ण प्रदेश में महाद्वीपीय जलवायु पायी जाती है जिसके कारण ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी एवं शीतकाल में कड़ाके की सर्दी पड़ती है। यूरोपीय रूस के मास्को में वार्षिक तापमान में 54°फारेनहाइट का अन्तर पाया जाता है। महाद्वीपीय जलवायु के कारण यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत भी 25 से 50 सेमी. के मध्य रहता है। अतः यहाँ 120 से 180 दिन ही फसलोत्पादन की अवधि है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से यह प्रदेश एक समतल मैदानी भाग है जहाँ चरनोजम (Chernozem) उपजाऊ मिट्टी की प्रधानता पायी जाती है। वनस्पति की दृष्टि से यहाँ मिश्रित वन पाये जाते हैं। खनिजों की दृष्टि से यह प्रदेश एक विकसित प्रदेश है। कोयला, पेट्रोलियम यहाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जल विद्युत का अधिक विकास हुआ है। लेकिन लौह तथा अलौह धातुओं का यहाँ अभाव पाया जाता है। प्रतिकूल जलवायु के कारण यहाँ जनसंख्या घनत्व 50 से 250 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. ही रहता है। तकनीकी सुविधाओं के कारण वर्तमान में रूस एक औद्योगिक प्रदेश के रूप में विकसित क्षेत्र माना जाता है।

(iv) भूमध्य सागरीय यूरोपीय क्षेत्र – इस प्रदेश की स्थिति यूरोपीय प्रदेश के दक्षिणी भाग में है। यह प्रदेश भूमध्य सागर के तटीय भाग में विस्तृत है। जलवायु दशाओं के कारण यह प्रदेश अन्य सभी से अलग ही माना जाता है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु शुष्क रहती है जबकि शीतकाल में वर्षा होती है। विश्व में ऐसी जलवायु केवल भूमध्यसागरीय प्रकार की ही है जहां शीतकाल आर्द्र एवं ग्रीष्मकाल शुष्क रहता है। वार्षिक तापान्तर में अधिक विभिन्नता रहती है। जनवरी में तापमान 0°C से हिमांक तक पहुँच जाता है। इसके विपरीत ग्रीष्मऋतु में समुद्रतटीय भागों को छोड़कर तापमान 30°C सेल्सियस तक पाया जाता है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से यहाँ अधिक विविधता पायी जाती है। ऊँची पर्वत चोटियाँ पठारी भाग मैदान, घाटियाँ यहाँ मिलती है। वार्षिक वर्षा 50 से 150 सेमी. तक होती है जो शीतकाल में पछुआ पवनों की सहायता से होती है। खनिजों की दृष्टि से यहाँ कोयला, पेट्रोलियम आदि शक्ति संसाधनों का अभाव रहता है। इसके विपरीत जल विद्युत का विकास यहाँ अधिक हुआ है। अन्य खनिजों में स्पेन में लोहा, ताँबा, गंधक, पोटाश, इटली में पारा–संगमरमर, यूनान (ग्रीस) में लोहा,सीसा,जस्ता, मैग्नेसाइट, मैगनीज, बॉक्साइट आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। जनसंख्या का औसत घनत्व 25 से 250 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। अधिकतर जनसंख्या समुद्रतटीय मैदानी भागों में रहती है। आन्तरिक प्रदेशों की ओर धीरे–धीरे जनसंख्या घनत्व कम होता जाता है। अतः यूरोपीय प्रदेश में भूमध्यसागरीय प्रदेश अपनी विशिष्ट जलवायु, धरातलीय उच्चावच की विविधता के कारण अपनी अलग पहचान रखता है।

5. उष्ण अफ्रीकी एशियाई शुष्क प्रदेश (Warm African Asiatic Dry Region)–यह प्रदेश अफ्रीका तथा एशिया के अरब–सहारा मरुस्थलीय क्षेत्र में फैला हुआ है। इस प्रदेश के उत्तर में यूरोपीय प्रदेश, दक्षिण में अफ्रीकी नीग्रो प्रजाति के निवास क्षेत्र, पश्चिम में सेनेगल में उत्तरी अटलांटिक तट तथा दक्षिण–पूर्वी भाग में भारत–चीन स्थित है।

प्राकृतिक तथा मानवीय वातावरण एवं संसाधन – इस प्रदेश में सर्वत्र वर्षा की मात्रा बहुत कम प्राप्त होती है। अतः यह शुष्क प्रदेश के नाम से जाना जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत 10 सेमी. से भी कम रहता है हवाएँ वर्ष भर शुष्क रहती हैं। अतः सापेक्षिक आर्द्रता न्यूनाधिक रहती है। स्वच्छ आकाश तथा उच्च तापमान के कारण वाष्पीकरण अधिक होता है। दिन–रात के तापमान में अधिक अन्तर रहता है। वार्षिक तापान्तर में उच्च अनियमितता पायी जाती है। तापमान हिमांक से 100°

फारनेहाइट तक रहता है। वर्षा बहुत कम तथा अनियमित एवं अनिश्चित होती है। कभी–कभी वर्ष भर एक बूँद भी पानी नहीं बरसता जबकि कभी मूसलाधार वर्षा हो जाती है। वर्षा की कमी के कारण यहाँ वनस्पति बहुत कम उगती है। केवल कंटीली झाड़ियाँ, बबूल, खेजड़ी आदि शुष्क वन पाये जाते हैं। वनस्पति की कमी के कारण यहाँ केवल एण्टीलोप, ऊँट, भेड, एडेक्स, याक आदि जानवर ही रहते हैं। रेगिस्तान होने के कारण तथा वर्षा की कमी रहने से कृषि फसलों का उत्पादन नहीं किया जाता है। यहाँ खानाबदोश लोग रहते है जो भेड ऊँट बकरी, गाय आदि जानवर पालते है। इन्हें ये लोग चरागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर स्थानान्तरण करते रहते हैं। इस प्रदेश में अधिकतर नीग्रो, काकेशियन मंगोल प्रजाति के लोग रहते हैं। धार्मिक दृष्टि से यहाँ केवल मुस्लिम एवं बौद्ध धर्म के अनुयायी रहते हैं।

जलवायु सभ्यता एवं धरातलीय विविधता की दृष्टि से इस प्रदेश को दो भागों में विभाजित किया गया है।

(i) अरब बर्बर सभ्यता वाला प्रदेश– इस उपप्रदेश का विस्तार सहारा के पश्चिमी भाग, नील नदी की घाटी एवं दक्षिण–पश्चिमी एशियाई देशों तक है। जल की दृष्टि से यह उपभाग अन्य शुष्क प्रदेश से भिन्न है। यहाँ ग्रीष्मकाल अत्यधिक गर्म रहता है। लेकिन शीतकाल में सर्दी कम पड़ती है। यहाँ अधिकतर मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं।प्राकृतिक वातावरण की दशाओं एवं संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर इसे तीन

उप–विभागों में बाँटा गया है–

पश्चिमी सहारा सहारा– सहारा रेगिस्तान का पश्चिमी भाग इसके अन्तर्गत आता है। यहाँ धरातल चट्टानयुक्त पाया जाता है जिसे हम्मादा के नाम से जाना जाता है। चट्टानी भाग कहीं उच्च पहाड़ियों के रूप में तथा कहीं घाटियों के रूप में है। इस क्षेत्र में झीलों के समीप सवाना घास तथा अन्य भागों में शुष्क रेगिस्तानी कटीली वनस्पति की प्रधानता है। यूरोपीय सभ्यता से आए लोगों ने इस भाग में कृषि की दृष्टि से खजूर की कृषि करना प्रारम्भ किया। वर्तमान में यहाँ एन–सलाह नामक स्थान पर पेट्रोलियम का उत्पादन किया जाता है।

नील घाटी–सहारा के पूर्वी भाग में लीबिया एवं मिश्र के रेगिस्तानी भाग में नील नदी प्रवाहित होती है। यह मरुस्थलीय भाग नदी घाटी के पास रेतीला तथा अन्य भागों में चट्टानी है। नील नदी की घाटी में नदी के जल की सहायता से कृषि फसलों का उत्पादन किया जाता है। यहाँ उपजाऊ मैदानी भाग होने तथा तेल प्राप्ति के कारण जनसंख्या घनत्व भी अधिक है।

दक्षिण–पश्चिम एशिया यह उपभाग एशिया महाद्वीप के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में. स्थित है। यहाँ धरातलीय भाग पठारी है। लेकिन यहाँ पेट्रोलियम खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। विश्व में पेट्रोलियम का सर्वाधिक भण्डार इसी भाग में फारस की खाड़ी की तटीय भाग में स्थित है। अतः इसे पेट्रोलियम की सभ्यता भी कहा जाता है।

(i) तुर्की –मंगोल सभ्यता के क्षेत्र इस प्रदेश का विस्तार ईरान के पश्चिमी भाग एवं तुर्की के पठार से लेकर पूर्वी भाग में मंगोलिया, गोबी तथा तिब्बत के पठार तक पाया जाता है। अतः इस प्रदेश के अन्तर्गत अनातोलिया, ईरान, बलुचिस्तान, अफगानिस्तान, ट्रांस केस्पीयन, तूरान की निचली भूमि, मंगोलिया एवं तिब्बत आदि क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रदेश में अनातोलिया का पठार सबसे शुष्क रहता है, जहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 25 सेमी. से भी कम रहता है। वर्षा की कमी के कारण यहाँ आन्तरिक जल प्रवाह भी नहीं है। शुष्कता के कारण ग्रीष्म एवं शीत ऋतु के तापमान में अधिक अन्तर रहता है। शीतकाल में तापमान हिमांक तक गिर जाता है जबकि गर्मी की ऋतु अत्यधिक गर्म

रहती है। धरातल का अधिकांश भाग इस प्रदेश में पठारी है। कहीं–कहीं उच्च पर्वत श्रेणियाँ भी हैं। खनिजों की दृष्टि से टर्की में क्रोमियम, सीसा, मोलिब्डिनम, जस्ता, ताँबा, सोना, चाँदी, ईरान में तेल, लोहा, तांबा, मैंगनीज आदि पाये जाते हैं।

तुरान में कोयला, पेट्रोलियम, गन्धक, जिप्सम आदि खनिज अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। तिब्बत–मंगोलिया क्षेत्र में निवास करने वाले लोग पशुचारक हैं। ये ऊँट, भेड, घोड़े, याक आदि जानवरों को पालते हैं। जनसंख्या की दृष्टि से तुर्की सघन बसा हुआ है। अफगानिस्तान, बलुचिस्तान में जनसंख्या घनत्व न्यून पाया जाता है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में यूरोपीय सभ्यता का प्रभाव धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। अतः ये लोग खानाबदोशी की आदत को छोड़कर स्थायी निवास बनाकर रहने लगे हैं

6. आर्द्र एवं अर्द्ध शुष्क अफ्रीकी प्रदेश (Wet and Semi Arid African Region)–इस प्रदेश का विस्तार सहारा रेगिस्तान के दक्षिणी भाग में मध्य अफ्रीका, गिनी तट, सुडान प्रदेश, अफ्रीका के पूर्वी भाग एवं दक्षिणवर्ती अफ्रीका तक पाया जाता है। इस प्रदेश में सूडान नीग्रो सभ्यता के लोगों की प्रधानता पायी जाती है। मुख्य रूप से इस प्रदेश का विस्तार अफ्रीका द्वीप में 20° उत्तरी अक्षांश रेखा के दक्षिण भाग में है। विस्तृत भूभाग एवं जलवायु की विभिन्नता के कारण इस प्रदेश में जनसंख्या घनत्व में अधिक अन्तर है। औसत जनसंख्या घनत्व इस प्रदेश में 10 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है लेकिन दक्षिण अफ्रीका एवं गिनी तट के देशों में धनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. तक रहता है। वर्तमान समय में इस प्रदेश की कुल जनसंख्या का 2%भाग यूरोपीय सभ्यता के लोगों का है। इस प्रदेश के लगभग मध्य में होकर भूमध्य रेखा गुजरती है। अतः यहाँ जलवायु दशाएँ भूमध्य रेखा से दूर जाने पर परिवर्तित होती जाती है। जलवायु दशाओं में परिवर्तन का सीधा प्रभाव वनस्पति पर पड़ता है। अतः यहाँ वनस्पति भूमध्य रेखा के दोनों ओर क्रमशः आर्द्र एवं सदाबहार, अर्द्ध शुष्क, शुष्क वनस्पति पायी जाती है। गिनी तट तथा मध्य अफ्रीका में भूमध्यरेखीय जलवायु पायी जाती है। अतः यहाँ सघन एवं वर्ष भर हरी रहने वाली वनस्पति उगती है। यहाँ वर्ष भर वर्षा पर्याप्त होती है। इससे दूर जाने पर अर्द्ध शुष्क जलवायु पायी जाती है। यहाँ वर्षा का औसत 75 से 150 सेमी. तक रहता है। तापमान सर्दी की ऋतु में कम तथा ग्रीष्म ऋतु में 100°फारनेहाइट तक पाया जाता है। यहाँ सवाना वनस्पति का विकास हुआ है। अर्द्ध शुष्क जलवायु में वर्षा का औसत 30 से 50 सेमी. तक रहता है। अतः यहाँ छोटी–छोटी घास एवं झाड़ियाँ उगती हैं। अर्द्ध शुष्क जलवायु के बाद दक्षिण की ओर कालाहारी रेगिस्तानी जलवायु तथा दूर दक्षिणी भाग में भूमध्य सागरीय जलवायु की प्रधानता पायी जाती है। अतः यह प्रदेश भूमध्य रेखा से दूरी के साथ विभिन्न जलवायु प्रदेशों में बंटा हुआ है, जिसके कारण इसे निम्नांकित उपभागों में बाँटा गया है–

(1) गिनी तटीय क्षेत्र–इसका विस्तार अफ्रीका के पश्चिम में केमरून के पश्चिमी भाग मे सियरालियोन एवं अटलांटिक महासागर के तटीय भाग तक है। यहाँ विषुवतरेखीय जलवायु के कारण उच्च तापमान एवं वर्ष भर पर्याप्त वर्षा होती है। अफ्रीका महाद्वीप के इसी भाग में सर्वप्रथम यूरोपियन लोगों का आगमन हुआ था। तट के समीप दलदली भूमि पायी जाती है। पास में ही उच्च पठारी प्रदेश स्थित है। वनस्पति की दृष्टि से यहाँ एवोनी, महोगनी के पेड़ तथा नारियल, कोको एवं केलों के बागान स्थित हैं। खनिजों की दृष्टि से यहाँ पेट्रोल, मैंगनीज, लोहा, सोना, हीरा आदि खनिज उपलब्ध हैं। नाइजीरिया में पेट्रोल, घाना में मैगनीज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। विषुवतरेखीय जलवायु के कारण यहाँ निवास करने वाले लोगों के येलो फीवर, ब्लैक वाटर फीवर, मलेरिया आदि बीमारियाँ होती रहती

हैं।

(ii) मध्य अफ्रीकी क्षेत्र–इसका विस्तार अफ्रीका महाद्वीप के मध्यवर्ती भाग में केमरून, कागो, जायरे, गैबन, गिनी एवं अंगोला में है। विषुवत रेखीय जलवायु के कारण इस भाग में वर्ष भर उच्च तापमान एवं तीव्र वर्षा होती है। अतः यहाँ सघन वन एवं दलदली भूमि पायी जाती है। यहाँ निवास करने वाले लोगों में पिग्मी एवं बांटू जाति के लोग अधिक हैं। खनिज उपलब्धि की दृष्टि से यह प्रदेश धनी है। जायरे के कटांगा में विश्व का 7 प्रतिशत ताँबा, जस्ता एवं कोबाल्ट, कसाई की घाटी में हीरा, चिन्कोलोबाइव की खान से विश्व का 60 प्रतिशत यूरेनियम एवं रेडियम तथा अंगोला से ताँबा, लोहा तथा कोयला खनिजों का खनन किया जाता है। अतः यह प्रदेश ताँबा, हीरा, यूरेनियम, सोना एवं रेडियम की दृष्टि से विश्व में महत्त्वपूर्ण है।

(iii) सूडान प्रदेश–सूदान प्रदेश का विस्तार सहारा रेगिस्तान के मध्यवर्ती भाग में है। यह प्रदेश 3500 मील लम्बी एवं 600 मील चौड़ी एक सकरी पट्टी में विस्तृत है। यहाँ शुष्क जलवायु पायी जाती है। अतः यहाँ लम्बी घास एवं दूर–दूर तक बड़े–बड़े पेड़ पाये जाते हैं जिन्हें सवाना वनस्पति के नाम से जाना जाता है। उच्चावच की दृष्टि से धरातलीय भाग समतल एवं सपाट है लेकिन प्रतिकूल जलवायु दशाओं के कारण जनसंख्या घनत्व कम पाया जाता है। यहाँ अधिकतर घुमक्कड़ जाति के लोग रहते हैं जो अपने पालतू पशुओं को चराने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर स्थानान्तरण करते रहते हैं। खनिजों की दृष्टि से यह एक निर्धन प्रदेश है, जहाँ लगभग सभी खनिजों का अभाव है।

(iv)पूर्वी अफ्रीकी प्रदेश मध्यवर्ती अफ्रीका के पूर्वी भाग में स्थित उच्च पठारी क्षेत्र को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। भूमध्यरेखा के समीप स्थित होते हुए भी यहाँ ऊँचाई के कारण ग्रीष्म ऋतु में तापमान कम रहता है। अतः यहाँ यूरोपीयन सभ्यता के लोग भी निवास करते हैं। कृषि तथा पशुपालन इन लोगों का मुख्य व्यवसाय है। खनिज प्रायः कम मात्रा में पाये जाते हैं। सामान्य जनसंख्या घनत्व पाया जाता है।

(v) दक्षिणवर्ती अफ्रीकी प्रदेश– इस उपभाग में अफ्रीका महाद्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित दक्षिण अफ्रीका संघ, जिम्बावे, बोत्सवाना, नामीबिया आदि देशों को सम्मिलित किया जाता है। उच्चावच की दृष्टि से यहाँ समुद्र तटीय मैदानी क्षेत्र तथा आन्तरिक भाग में पठारी भाग की प्रधानता है। जलवायु भूमध्यरेखा की दूरी के कारण आन्तरिक भाग में शीतोष्ण एवं तटीय भाग में सम जलवायु पायी जाती है। अतः इस भाग में यूरोपीयन लोगों की संख्या अधिकतम है। खनिजों में यहाँ सोना, तांबा, मैंगनीज, हीरा, यूरेनियम, क्रोमियम की प्रधानता है। सोने के उत्पादन में ट्रांसवाल तथा हीरा उत्पादन में प्रोटोरिया की खानें विश्व में प्रसिद्ध हैं।

7.मानसूनी एशियाई प्रदेश(Monsoon Asian Region)–इस प्रदेश का विस्तार एशिया महाद्वीप के दक्षिण, दक्षिण–पूर्व तथा पूर्वी भाग में भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, बर्मा, मलेशिया, जापान, कोरिया तथा चीन आदि देशों में पाया जाता है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में ग्रीष्मकाल में समुद्र से स्थल की ओर चलने वाली मानसूनी हवाओं से वर्षा होती है। अतः इसे मानसून एशिया के नाम से जाना जाता है मानसूनी एशिया में निवास करने वाले लोगों का अपना अलग रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, व्यवसाय आदि है। अतः इसे पूर्वी सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। उपजाऊ भूमि, अनुकूल जलवायु के कारण इस प्रदेश में जनसंख्या का औसत घनत्व 300 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से भी अधिक है। भारत में पश्चिम बंगाल राज्य का घनत्व 904 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। यह भारत में अन्य राज्यों की अपेक्षा सर्वाधिक है। अधिकतर जनसंख्या समुद्र तटीय मैदानी भाग तथा नदियों की घाटियों में निवास करती है। प्रादेशिक विविधता के कारण मानसूनी एशिया को तीन उप–विभागों में बाँटा गया

है–

(1) पूर्वी मानसून एशियाई क्षेत्र–यह उपप्रदेश एशिया के पूर्वी भाग में चीन जापान, उत्तरी एवं दक्षिण कोरिया में विस्तृत है। इस भाग में केवल चीन में ही समतल मैदानी भाग अधिक है। जापान एवं कोरिया में तटीय भाग तथा नदियों की घाटियों के अतिरिक्त सर्वत्र पठारी एवं पर्वतीय स्थल रूपों की प्रधानता है। सर्वत्र मानसूनी पवनों द्वारा वर्षा होती है। सर्दी की ऋतु में तापमान बहुत कम हो जाता है। अतः शीतकाल अधिक ठण्डा रहता है। जनसंख्या का घनत्व मैदान एवं तटीय भागों में अधिक है। खनिजों की दृष्टि से चीन में अधिक खनिज पाये। जाते हैं। कोयला, लोहा, टिन, टंगस्टन, एण्टीमनी आदि चीन में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। जापान में शक्ति के संसाधनों का अभाव है। लेकिन जल विद्युत का अधिक विकास हुआ है। अतः चीन को छोड़कर जापान एवं कोरिया में खनिज बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं।

(ii) दक्षिण मानसून एशियाई क्षेत्र इसका विस्तार भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल आदि देशों में है। इस सम्पूर्ण प्रदेश में ग्रीष्मकाल में हिन्द महासागर से आने वाली दक्षिणी–पश्चिमी मानसूनी हवाओं द्वारा वर्षा होती है। अतः यहाँ मानसूनी जलवायु का प्रभाव अधिक रहता है। वर्षा का वितरण तटीय भागों में अधिक एवं आन्तरिक क्षेत्र की ओर कम होता जाता है। तटीय भागों में 200 सेमी. से अधिक तथा आन्तरिक भागों में कम होती होती 25 सेमी. तक ही रह जाती है। वर्षा यहाँ प्रायः अनियमित, अनिश्चित तथा असमान होती है। अतः कभी बाढ़ एवं कभी सूखे की स्थिति बनी रहती है। वर्ष में गर्मी, सर्दी, वर्षा तीनों ऋतुएँ पायी जाती हैं। ग्रीष्म एवं सर्दी के तापमान में 20 से 40डिग्री फारनेहाइट तक का अन्तर रहता है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से यहाँ समतली मैदानी भाग, पर्वत, पठार, घाटियाँ आदि स्थल रूप पाये जाते हैं। कृषि फसलों का उत्पादन वर्ष भर किया जाता है। वर्ष में रबी एवं खरीफ की दो फसलों का उत्पादन किया जाता है। खनिजों की दृष्टि से भारत में कोयला, लोहा, अभ्रक, मैंगनीज तथा बहुत कम मात्रा में तेल का उत्पादन किया जाता है। अन्य देशों में खनिजों का अभाव पाया जाता है।

(iii) दक्षिण–पूर्वी मानसून एशियाई क्षेत्र– इस उप प्रदेश का विस्तार एशिया के दक्षिण–पूर्वी भाग में स्थित म्यामांर, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, वियतनाम, लाओस, फिलीपाइन आदि देशों में है। दक्षिण–पूर्वी एशिया के इन देशों में समतल मैदानी भाग कम है तथा पर्वत, पठार, घाटियों आदि का विस्तार ज्यादातर भाग में है। वर्षा की मात्रा यहाँ दक्षिण एशिया की अपेक्षा अधिक होती है। यहाँ होने वाली वार्षिक वर्षा का समय एवं मात्रा निश्चित पायी जाती है। इस भाग में दक्षिण–पश्चिम मानसूनी हवाओं के अतिरिक्त उत्तरी–पूर्वी हवाओं से भी वर्षा पर्याप्त होती है। अतः वर्षा का औसत यहाँ अधिक रहता है। समुद्री निकटता के कारण पर्याप्त वर्षा तथा तटीय मैदानों की उपलब्धता के कारण इस भाग में अधिकतर धान एवं बागानी कृषि की जाती है। खनिज प्राप्ति की दृष्टि से म्यामांर में तेल, टंगस्टन, मलेशिया में सीसा, जस्ता, टिन, चाँदी, इण्डोनेशिया में पेट्रोलियम, टिन एवं थाइलैण्ड में टिन, टंगस्टन आदि खनिजों का दोहन किया जाता है।

8. लैटिन अमेरिकी प्रदेश(Latin Amarican Region)–इस प्रदेश का विस्तार मैक्सिको, दोनों अमेरिका के मध्य में स्थित देश, सम्पूर्ण दक्षिण अमेरिका महाद्वीप के देश एवं पश्चिमी द्वीप समूह तक पाया जाता है। यह सम्पूर्ण प्रदेश यूरोपियनों के आगमन के बाद विकसित हुआ है। पहले यहाँ रेड इण्डियन रहते थे जो अपनी आवश्यकता की फसलों का उत्पादन करते थे। कोलम्बस द्वारा इस भाग की खोज करने के बाद स्पेनी एवं पुर्तगाली सर्वप्रथम यहाँ आये थे। ये अन्य देशों के नागिरकों को यहाँ आने नहीं देते थे। अतः यहाँ अभी भी स्पेनी एवं पुर्तगाली भाषा बोली जाती है जिसके कारण ही इसे लैटिन अमेरिका कहा जाता है।लैटिन अमेरिका के विभिन्न भागों में प्रादेशिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं

सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक विविधता पायी जाती है। अतः इसे निम्नांकित उप विभागों में बाँटा गया है–

(1) उत्तरी लैटिन अमेरिकी क्षेत्र– इस उपविभाग में केवल मध्य अमेरिका, मैक्सिको तथा पश्चिमी द्वीप समूह को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के अन्तर्गत आते हैं। लेकिन यहाँ लैटिन अमेरिकी संस्कृति का प्रभाव अधिक पाया जाता है। अतः यहाँ तापमान वर्ष भर उच्च एवं अधिक वर्षा होती है। धरातलीय उच्चावच की अधिक विभिन्नता के कारण पठारी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में वर्षा एवं तापमान में बहुत अन्तर पाया जाता है। तटीय भागों में समुद्री नम जलवायु का प्रभाव रहता है। पूर्वी तटीय भाग में पश्चिमी तट की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। यहाँ वर्ष भर समुद्री हवाओं द्वारा वर्षा होती है जबकि पश्चिमी तटीय भाग शीतकाल में शुष्क रहता है। जनसंख्या का वितरण सम्पूर्ण भाग में असमान पाया जाता है। केवल नदी घाटियों एवं तटीय भागों में जनसंख्या का अधिक संकेन्द्रण है। बागानी कृषि का यहाँ अधिक महत्त्व है। जलवायु, उच्च तापमान एवं पर्याप्त वर्षा के कारण यहाँ केला, कोको, कहवा आदि के बागान हैं। औद्योगिक दृष्टि से यह क्षेत्र अभी तक अविकसित है। अतः यहाँ कच्चे माल का निर्यात एवं निर्मित माल का आयात अधिक किया जाता है। खनिजों की दृष्टि से मैक्सिको में विश्व से सर्वाधिक चाँदी का भण्डार है। इसके अतिरिक्त ताँबा, सीसा, जस्ता, क्यूबा में मैंगनीज, ट्रीनीटाड एवं जमैका में बॉक्साइट आदि खनिजों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन हो रहा है।

(ii) कैरेबियन दक्षिणी अमेरिका–इस क्षेत्र के अन्तर्गत दक्षिण अमेरिका के उत्तरी भाग में स्थित कोलम्बिया, वेनेजुएला एवं गुयना देशों को सम्मिलित किया जाता है। इन तीनों देशों में भौगोलिक कारकों की लगभग समानता पायी जाती है। कोलम्बिया के केवल दक्षिणी भाग को छोड़कर यह सम्पूर्ण प्रदेश भूमध्यरेखा के उत्तर में स्थित है। यहाँ विषुवत रेखीय जलवायु पायी जाती है। लेकिन धरातल का अधिकांश भाग पठारी एवं पहाड़ियों के रूप में होने के कारण ऊँचाई के साथ तापमान में कमी आ जाती है। अतः तापमान मनुष्य के अनुकूल रहता है। अतः जनसंख्या का संकेन्द्रण उच्च भागों में अधिक है। खनिजों की दृष्टि से यहाँ पेट्रोलियम का अधिक उत्पादन किया जाता है। माराकाइबो बेसिन, मेग्डालीना एवं ओरोनिको घाटी पेट्रोल उत्पादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है सूरीनाम एवं गुयाना में बॉक्साइट लोहा के भण्डार स्थित हैं।

(iii) मध्य एण्डिज पर्वतीय प्रदेश–दक्षिण अमेरिका के पश्चिम में उत्तर से दक्षिण विस्तृत एण्डिज पर्वत श्रृंखला के मध्यवर्ती भाग में स्थित इक्बेडोर पीक तथा बोलिविया देश इस क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। यूरोपीयनों के आगमन के पूर्व यहाँ पर रेड इण्डियन लोग रहते थे। अतः : यूरोपीय लोगों के आने के बाद ही इस क्षेत्र का विकास हुआ है। समुद्र तट के समीप स्थित होने तथा समुद्र तल से ऊँचाई पर स्थित के कारण यहाँ मनुष्य के निवास के लिए अनुकूल जलवायु रहती है। क्योटो का तापमान सर्दियों में 56.6 फारनेहाइट तथा गर्मियों में 58 फारनेहाइट रहता है। अतः यहाँ धरातलीय भाग पठारी एवं पहाड़ी होने के कारण यहाँ तापमान अधिक नहीं रहता है। वर्षा केवल ग्रीष्मकाल में होती है। शीतकाल शुष्क रहता है। जनसंख्या का संकेन्द्रण उच्च पठारी भागों तथा समुद्र तटीय मैदानों में है। खनिजों की दृष्टि से यह क्षेत्र सम्पन्न है। इक्वेडोर में तेल, सोना, चाँदी, जस्ता, ताँबा, पीरू में वेनेडियम बोलिविया में टिन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इस भाग में सोना, चाँदी, सीसा, जस्ता, एण्टीमनी, टंगस्टन आदि खनिज भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

(iv) दक्षिण एण्डीज इस प्रदेश के अन्तर्गत सम्पूर्ण चिली देश को सम्मिलित किया जाता है। चिली एक लम्बाकार देश है जो उत्तर से दक्षिण की ओर एक लम्बी रेखा के रूप में फैला हुआ हुआ है। पूर्व–पश्चिम में इसका विस्तार बहुत कम है। उत्तर–दक्षिण में लम्बाकार स्थिति के कारण इसका

विस्तार एक से अधिक जलवायु कटिबन्धों में है। अतः यहाँ जलवायु की विभिन्नताएँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बहुत अधिक पायी जाती है। चिली में उत्तर से दक्षिण की ओर गर्म रेगिस्तानी, भूमध्यसागरीय समुद्र तटीय जलवायु पायी जाती है। जनसंख्या मध्यवर्ती मैदानी भाग एवं तटीय क्षेत्र में संकेन्द्रित है। बाकि क्षेत्र पर्वतीय एवं उबड़–खाबड़ होने के कारण केवल न्यूनतम जनसंख्या को ही आश्रय देते हैं।खनिज में चिली में चीक्वीकामाटा में ताँबे की विश्व में प्रसिद्ध खान है। अटाकामा के मरुस्थलीय क्षेत्र से सोडयम नाइट्रेट, लोहा आदि खनिजों का उत्खनन हो रहा है।

(v) दक्षिण अमेरिका का दक्षिणी–पूर्वी भाग–इस प्रदेश के अन्तर्गत दक्षिण अमेरिका महाद्वीप के अर्जेन्टाइना, यूरुग्वे तथा पराग्वे देशों को सम्मिलित किया गया है। दक्षिण अमेरिका के अन्य देशों की तुलना में यूरोपीयन यहाँ सबके अन्त में आए। लेकिन वर्तमान में इस क्षेत्र में सर्वाधिक यूरोपीयन लोग निवास करते हैं। जलवायु की दृष्टि से यहाँ आर्द्र उपोष्णीय तथा मध्य अक्षांशीय मरुस्थलीय जलवायु पायी जाती है। इस क्षेत्र में मिश्रित वन तथा छोटी घास के मैदान अधिक है। अतः यहाँ पालतू पशुओं का सर्वाधिक महत्त्व है, जिन्हें निजी चरागाहों में चराया जाता है। अतः यहाँ पालतू पशुओं का सर्वाधिक महत्त्व है। कृषि की दृष्टि से केवल पम्पास शीतोष्ण घास क्षेत्र में गेहूँ की कृषि मशीनों की सहायता से की जाती है। जनसंख्या का अधिकांश भाग उत्तरी–पूर्वी भाग में पम्पास के मैदान में तथा पूर्वी समुद्र तटीय मैदानी भाग में एवं नदी घाटियों में रहता है। सर्वाधिक कम लोग पैटागोनिया के रेगिस्तानी भाग में रहते हैं। खनिजों की दृष्टि से यह क्षेत्र निर्धन है। केवल पैटागोनिया के चाको क्षेत्र पेट्रोल का उत्पादन होता है। अतः यह प्रमुख संसाधन कृषि उत्पादन एवं पालतू जानवर ही है।

(vi) ब्राजील– दक्षिण अमेरिका के उत्तरी.. पूर्वी भाग में स्थित ब्राजील इस महाद्वीप का क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा देश है, जहाँ सम्पूर्ण महाद्वीप की 50प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ब्राजील विषुवत रेखा के समीप स्थित होने के कारण उत्तरी भाग में विषुवत रेखीय एवं दक्षिण में आर्द्र शुष्क जलवायु पायी जाती है। विषुवत रेखीय जलवायु का विस्तार अमेजन नदी बेसिन में तथा आर्द्र शुष्क जलवायु का विस्तार ब्राजील के पठार में है। धरातलीय भाग अमेजन बेसिन, पठारी तथा समुद्रतटीय मैदान से विभक्त है। वर्षा अमेजन घाटी में 200 से 400 सेमी. तक एवं पठारी भाग में 75 से 125 सेमी. तक होती है। अतः यहाँ कोको, गन्ना, कहवा आदि के बड़े–बड़े कृषि बागान में सर्वाधिक सम्पन्न देश है। ब्राजील का भी मिनास, गेरास क्षेत्र लोहे के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त सोना, मैगनीज खनिजों का उत्खनन भी होता है। अतः ब्राजील दक्षिण अमेरिका को संसाधनों की दृष्टि सर्वाधिक विकसित देश माना जाता है।

9. प्रशान्त महासागरीय प्रदेश (Pacific Ocean Region)–इस प्रदेश का विस्तार प्रशान्त महासागर में स्थित विभिन्न द्वीपीय क्षेत्रों में है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, न्यूगिनी, फिलीपींस तथा फिजी, इस्टर, हवाई, सोलोमन, न्यू हेब्रीड्स एवं विस्मार्क आदि द्वीप समूहों में इस प्रदेश का विस्तार है। आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग में स्थित न्यूगिनी तथा अन्य छोटे–छोटे द्वीपों के क्षेत्र को मेलानेशिया, मेलानेशिया के उत्तर में तथा फिलीपींस के पूर्वी भाग में स्थित द्वीपीय क्षेत्र को माइक्रोनेशिया एवं हवाई द्वीप, न्यूजीलैण्ड एवं ईस्ट द्वीपों के मध्यवर्ती भाग में स्थित द्वीपीय क्षेत्र को पोलीनेशिया के नाम से जाना जाता है। प्रशान्त महासागरीय प्रदेश को निम्नांकित उपविभागों में बाँटा गया है–

(i) आस्ट्रेलिया–न्यूजीलैण्ड क्षेत्र– इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण आस्ट्रेलिया तथा आस्ट्रेलिया के पूर्व में स्थित न्यूजीलैण्ड देश को सम्मिलित किया गया है। इस प्रदेश का सम्पूर्ण धरातलीय भाग समुद्र तट से औसतन 30 मीटर ऊंचाई पर स्थित है। अतः ऊँचाई कम होने के कारण यहाँ वायुदाब अधिक रहता है। जलवायु शुष्क तथा आर्द्र दोनों प्रकार की पायी जाती है। तटीय भाग में आर्द्र तथा आन्तरिक क्षेत्र में शुष्क जलवायु की प्रधानता है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से यहाँ पहाड़, पठार तथा मैदान पाये

जाते हैं। पश्चिमी भाग पठारी है जिसकी औसत ऊँचाई 400. मीटर है। मध्यवर्ती भाग में नदी बेसिन है। पूर्वी भाग पहाड़ी है। आस्ट्रेलिया में तटीय भाग को छोड़कर तापमान वर्ष भर ऊँचा रहता है। जलवायु विभिन्नता के कारण यहाँ आर्द्र, अर्द्ध शुष्क, शुष्क एवं भूमध्यसागरीय वनस्पति पायी जाती है। जनसंख्या का अधिकांश भाग तटीय क्षेत्र में स्थित नगरों में है। आन्तरिक शुष्क क्षेत्र में न्यून जनसंख्या घनत्व पाया जाता है। न्यूजीलैण्ड में जलवायु आस्ट्रेलिया के विपरीत आर्द्र शीतोष्ण जलवायु पायी जाती है। न्यूजीलैण्ड का अधिकतर क्षेत्र पहाड़ी एवं पठारी है। यहाँ पशुपालन उद्योग की प्रधानता है। अतः धरातल के ज्यादातर भाग पर चरागाह पाये जाते हैं। खनिजों की दृष्टि से आस्ट्रेलिया में कुलगार्डी एवं कालगुर्ली से सोना प्राप्त होता है। लोहा तथा कोयला भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

(ii) मेलानेशिया क्षेत्र– मेलानेशिया के अर्न्तगत आस्ट्रेलिया के उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित न्यूगिनी, बिस्मार्क द्वीप, सोलोमन एवं न्यू हेविडस तथा फिजी द्वीप समूह को सम्मिलित किया जाता है। इन द्वीपों का निर्माण ज्वालामुखी क्रिया एवं प्रवाल भित्ति से हुआ है। इस क्षेत्र में अधिकतर पिग्मी एवं पापुआन जाति के लोग निवास करते हैं। तटीय क्षेत्र की अधिकता के कारण इन लोगों का मुख्य व्यवसाय शिकार करना एवं मछली पकड़ना है। इन द्वीपीय क्षेत्रों में अधिकतर एशिया एवं यूरोप से आये हुए लोग निवास करते हैं। निकिल, क्रोमोइट, लोहा, मैंगनीज, ताँबा, चाँदी, जस्ता आदि खनिजों का उत्खनन इस क्षेत्र में किया जाता है। वर्तमान समय में तटीय भागों में उच्च तापमान तथा पर्याप्त वर्षा के कारण बागानी कृषि की जाती है।

(iii) माइक्रोनेशिया क्षेत्र–न्यूगिनी के उत्तरी भाग एवं फिलिपींस के पूर्व में स्थित छोटे–छोटे द्वीपीय क्षेत्र को माइक्रोनेशिया कहा जाता है। माइक्रोनेशिया लगभग 1200 वर्ग मील क्षेत्र में विस्तृत है। इन द्वीपों का निर्माण प्रवाल भित्तियों से हुआ है। यहाँ यूरोपीयन तथा एशियाई लोग निवास करते हैं। यहाँ निवास करने वाले लोगों का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना एवं बागानी कृषि है। इस क्षेत्र में सुपारी का उत्पादन सर्वाधिक होता है। खनिज उत्पादन की दृष्टि से यहाँ केवल फास्फेट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

(iv) पोलेनेशिया इसके अन्तर्गत हवाई द्वीप, टुआमोटू द्वीप समूह, सोसाइटी द्वीप को सम्मिलित किया जाता है। इसका विस्तार लगभग 10,000 वर्गमील क्षेत्र में है। समूह पोलेनेशिया में अधिकतर आदिवासी लोग निवास करते हैं। अतः यहाँ विश्व के अन्य भागों की तुलना में प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव अधिक है। इस क्षेत्र में नारियल के पेड़ असीमित पाये जाते हैं। अतः यहाँ से नारियल का निर्यात अन्य भागों में किया जाता है। खनिजों की दृष्टि से टुआमोटू द्वीप समूह से मोती तथा सोसाइटी द्वीप समूह से फास्फेट का खनन किया जाता है।

16.4 सारांश

विश्व के संसाधन प्रदेशों का सीमांकन भौतिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों की विभिन्नता एवं समानता के आधार पर किया जाता है। संसाधान प्रदेशो के प्राकृतिक वातावरण,संसाधन, मानवीय वातावरण की विशेषताओ का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न तत्वों की सम्पनता के कारण एक संसाधन प्रदेश दूसरे संसाधन प्रदेश में भिन्न पाया जाता है। इस इकाई का अध्ययन विश्व के संसाधन प्रदेशों को समझने मे सहायक होगा

16.5 पारिभाषिक शब्दावली

पोलेनेशिया :इसके अंतर्गत हवाई द्वीप, टुआमोटू द्वीप समूह, सोसाइटी दीप ही समूह है।

लाइकेन, मॉसः– अण्टार्कटिक क्षेत्र की वनस्पति

16.6 बोध प्रश्न

16.6.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर :–

प्रश्न–1 विश्व के संसाधान प्रदेशों को विभाजित करते हुए वर्णन करो।

16.6.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 संसाधन प्रदेश किसे कहते हैं बताइये।

प्रश्न–सूडान प्रदेश के बारे में बताइये ।

16.6.3 बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न–1संमाधन प्रदेशों के विभाजन में किस विद्वान द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक प्रदेश का उपयोग किया जाता है ?

(अ) हरिगटन (ब) हर्बर्टसन

(स) कैनन (द) डिमीनिया

प्रश्न–2अण्टार्कटिका मे अन्वेषण कर खनिजों का पता लगाय

(अ) डेकन स्टुअर्ट (ब) डिमांजिया (अ)

(स) कैनन (द) हम्बोल्ट

प्रश्न–3गिनी तट कौन से महाद्वीप में है?

(अ) अफ्रीका (ब) यूरोप (अ)

(स) द0 अमेरिका (द) मेडागास्कर

प्रश्न –4 निम्नलिखित में से कौन में प्रदेश में शीतकाल मे वर्षा होती है एवं गीष्मकाल शुष्क रहता है।

(अ) भूमध्य सागरीय क्षेत्र (ब) एशियाई प्रदेश (अ)

(स) धुवीय प्रदेश (द)शीत उपध्रवीय प्रदेश

16.7संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ बी.सी जाट मंसाधन भूगोल'' मलिक बुक कम्पनी, जयपुर संस्करण 2021

2. प्रों जगदीश सिंह '' संसाधन भूगोल'' ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर